PG HN S4-03 (DSC)

TWO YEAR POSTGRADUATE PROGRAMME

(CBCS in Accordance with NEP 2020)

SEMESTER-IV

हिंदी का कहानी साहित्य

हिंदी

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

विषय विशेषज्ञ

प्रोफ़ेसर दिलीप कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

प्रोफ़ेसर अमूल्य बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत विभागाध्यक्ष)

प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष, बी. एस. कॉलेज, हाउली, बरपेटा

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. उज्जवल डेका बरुवा, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

एसएलएम् तैयारी टीम

इकाइयाँ	**योगदानकर्ताओं के नाम**
1–2	डॉ. रुबीमणि दास, हिन्दी अनुवादक
3–4, 5, 7, 9,	बी आकाश राव, सहायक प्राध्यापक, सूर्य सेन महाविद्यालय, पश्चिम बंगाल
10, 11, 12	डॉ. दिनेश साहू, सहायक अध्यापक, सिक्किम विश्वविद्यालय
6–8	डॉ. सुरभि चुतिया, सहायक अध्यापिका, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय
13–14	डॉ. उज्जवल डेका बरुवा, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

Editorial Team

Content: विकास कुमार, सहायक प्राध्यापक, पीजीडीएवी महाविद्यालय सांध्य, दिल्ली सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

Language: डॉ. सुरभि चुतिया, सहायक प्राध्यापिका, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

डॉ. टिंकू छेत्री, सहायक प्राध्यापिका, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

Structure & Format: डॉ. उज्जवल डेका बरुआ, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

April, 2026

Copyright © Krishna Kanta Handiqui State Open University.

This Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta Handiqui State Open University is made available under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-Share Alike 4.0 License (international): http://creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/4.0/

Printed and published by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

Headquarter : Patgaon, Rani Gate, Guwahati - 781017

City Office : Resham Nagar, Khanapara, Guwahati-781022; Web: www.kkhsou.in

CONTENTS

		Pages
इकाई-1:	**हिंदी कहानी** अर्थ, स्वरूप, परिभाषाएँ	**7-16**
इकाई-2:	**कहानी का वर्गीकरण (वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ)** वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ	**17-25**
इकाई-3:	**कहानी के सिद्धांत** भाषिक संरचना, कहानी के तत्व, वस्तु एवं शिल्प	**26-43**
इकाई-4:	**कहानी का वर्गीकरण** वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ	**44-57**
इकाई-5:	**'चीफ की दावत' (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**58-69**
इकाई-6:	**उसने कहा था** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**70-78**
इकाई-7:	**अपना-अपना भाग्य (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**79-92**
इकाई-8:	**परिंदे** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**93-99**
इकाई-9:	**एक टोकरी भर मिट्टी** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**100-108**
इकाई-10:	**जहाँ लक्ष्मी कैद है (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**109-125**
इकाई-11:	**'लाल पान की बेगम' (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**126-139**
इकाई-12:	**ठाकुर का कुआ** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**140-149**
इकाई-13:	**कानों में कंगना** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**150-160**
इकाई-14:	**भेड़िया** कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा	**161-169**

विषय प्रवेश

'हिंदी का कहानी साहित्य' नाम से प्रस्तुत यह पाठ्यसामग्री कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय के एम. ए. हिंदी के द्विवर्षीय पाठ्यक्रम के चतुर्थ सेमेस्टर के एक महत्वपूर्ण मूल पत्र के रूप में सुव्यवस्थित रूप में विन्यस्त की गई है। अपने नाम के अनुरूप यह पत्र हिंदी कहानी साहित्य की मूल अवधारणाओं, उसके ऐतिहासिक विकास, संरचनात्मक विशेषताओं तथा प्रमुख कहानियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर केंद्रित है। इसमें कुल चौदह इकाइयाँ निर्धारित की गई हैं, जिनके माध्यम से विद्यार्थियों को कहानी साहित्य का क्रमबद्ध, व्यापक और गहन ज्ञान प्राप्त होता है। यह पाठ्यसामग्री इस प्रकार तैयार की गई है कि विद्यार्थी न केवल सैद्धांतिक पक्ष को समझ सकें, बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी कहानी के विश्लेषण, व्याख्या और मूल्यांकन की क्षमता विकसित कर सकें। इस प्रकार यह ग्रंथ शिक्षण और अधिगम की आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक संतुलित एवं उपयोगी अध्ययन सामग्री के रूप में सामने आता है।

हिंदी कहानी साहित्य गद्य साहित्य की एक अत्यंत सशक्त, लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा के रूप में प्रतिष्ठित है, जो मानव जीवन के विविध आयामों—सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक—का अत्यंत जीवंत और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी की परंपरा मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरणों से ही जुड़ी रही है, जहाँ यह मौखिक रूप में लोकजीवन का अभिन्न अंग थी; किंतु समय के साथ यह विकसित होकर आधुनिक युग में लिखित, कलात्मक और संरचित रूप में स्थापित हुई। विशेषत: बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हिंदी कहानी ने तीव्र गति से विकास किया, जिसमें यथार्थवाद, मनोविश्लेषण, सामाजिक चेतना तथा आधुनिक जीवन की जटिलताओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कहानी ने केवल मनोरंजन का माध्यम होने की सीमाओं को पार करते हुए समाज के विविध वर्गों, समस्याओं और मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने का महत्वपूर्ण दायित्व भी निभाया है, जिससे यह साहित्य की एक जीवंत और गतिशील विधा के रूप में विकसित हुई है। इस पुस्तक में कहानी के अर्थ, स्वरूप, तत्व, वर्गीकरण तथा सिद्धांतों की सैद्धांतिक चर्चा के साथ-साथ हिंदी की प्रतिनिधि कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है, जिससे विद्यार्थी कहानी की गहराई को समझने में सक्षम बनते हैं। 'उसने कहा था', 'परिंदे', 'ठाकुर का कुआँ', 'लाल पान की बेगम', 'कानों में कंगना' आदि कहानियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे समाज के यथार्थ, मानवीय संबंधों और संवेदनाओं का सशक्त चित्रण भी करती हैं। इस ग्रंथ का उद्देश्य केवल तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों में साहित्यिक संवेदनशीलता, विश्लेषणात्मक दृष्टि और आलोचनात्मक सोच का विकास करना भी है। प्रत्येक इकाई में महत्वपूर्ण बिंदु, प्रगति जाँच, प्रगति विवरण, अतिरिक्त पठन सामग्री तथा अभ्यास प्रश्नों का समावेश इस उद्देश्य को और अधिक सुदृढ़ बनाता है, जिससे शिक्षार्थी आत्म मूल्यांकन करते हुए विषय की गहराई तक पहुँच सकें। इस प्रकार यह पाठ्यसामग्री हिंदी कहानी साहित्य को एक सजीव, बहुआयामी और चिंतन-उत्प्रेरक अध्ययन क्षेत्र के रूप में स्थापित करती है।

इकाई-1: हिंदी कहानी: अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषाएँ

इस इकाई में कहानी की मूल अवधारणा को व्यवस्थित रूप में स्पष्ट किया गया है, जहाँ 'कहानी' शब्द के अर्थ, उसके स्वरूप तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का विश्लेषण किया गया है। यहाँ कहानी को केवल कथन या घटना-प्रस्तुति के रूप में नहीं, बल्कि एक सघन और प्रभावपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में देखा गया है, जिसमें जीवन के किसी एक पक्ष को केंद्र में रखकर उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति की जाती है। इकाई में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के मतों के माध्यम से कहानी की व्यापकता और गहराई को समझाया गया है, जिससे शिक्षार्थी कहानी की संरचना, उद्देश्य और साहित्यिक महत्व को समग्र रूप में ग्रहण कर सकें तथा उसके अध्ययन के लिए एक सुदृढ़ आधार निर्मित हो सके।

इकाई-2: कहानी का वर्गीकरण: औचित्य और सीमाएँ

कथात्मक विधा की विविधता को रेखांकित करते हुए कहानी के प्रकारों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है, जिसमें विषय, संरचना और उद्देश्य के आधार पर विभाजन को विस्तार मिला है। सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और अन्य रूपों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कथा-साहित्य किस प्रकार बहुआयामी स्वरूप ग्रहण करता है। वर्गीकरण की उपयोगिता को स्वीकारते हुए उसकी सीमाओं पर भी विचार किया गया है, जिससे अध्ययन अधिक संतुलित और विश्लेषणपरक बन सके।

इकाई-3: कहानी के सिद्धांत

कहानी की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए आवश्यक तत्त्वों—जैसे कथानक, पात्र, संवाद, वातावरण और भाषा—की भूमिका को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि इन सभी घटकों के समन्वित प्रयोग से ही एक प्रभावपूर्ण कथा का निर्माण संभव होता है। कथा-संरचना की सूक्ष्मताओं को समझाते हुए यह भी बताया गया है कि कलात्मक संतुलन और अभिव्यक्ति की सघनता कहानी को विशिष्ट बनाती है।

इकाई-4: कहानी का वर्गीकरण

पूर्व में प्रस्तुत वर्गीकरण संबंधी विचारों को और अधिक सुस्पष्ट करते हुए यहाँ पुन: उनका विश्लेषण किया गया है, जिससे अवधारणाएँ स्थायी रूप से आत्मसात हो सकें। विभिन्न दृष्टियों से पुनर्विचार के माध्यम से यह समझ विकसित की गई है कि कहानी की प्रकृति को अलग-अलग कोणों से देखने पर उसके अर्थ और प्रभाव की नई संभावनाएँ उद्घाटित होती हैं।

इकाई-5: 'चीफ की दावत'

कथा के माध्यम से जीवन की साधारण घटनाओं में निहित गहन अर्थों को उद्घाटित करने का प्रयास यहाँ किया गया है। कहानीकार के व्यक्तित्व और रचना-परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कथानक, पात्र और अंतर्निहित संकेतों का विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि साधारण परिवेश में भी गहरी सामाजिक चेतना और संवेदनशीलता अभिव्यक्त हो सकती है।

इकाई-6: उसने कहा था

मानवीय भावनाओं की सूक्ष्मता को केंद्र में रखकर प्रस्तुत कथा प्रेम, स्मृति और कर्तव्य के त्रिकोण को उजागर करती है। चरित्र-चित्रण और घटनाक्रम के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत अनुभूति किस प्रकार सार्वभौमिक संवेदना का रूप ले सकती है। कथा की संरचना में निहित मार्मिकता पाठक को भावनात्मक स्तर पर गहराई से प्रभावित करती है।

इकाई-7: अपना-अपना भाग्य

जीवन की अनिश्चितताओं और परिस्थितियों की भूमिका को उजागर करती यह कथा मनुष्य के संघर्ष और नियति के संबंध को समझने का अवसर प्रदान करती है। पात्रों के अनुभवों के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि परिवेश और परिस्थितियाँ व्यक्ति के निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, जिससे जीवन के प्रति एक गंभीर दृष्टिकोण विकसित होता है।

इकाई-8: परिंदे

आधुनिक जीवन की जटिलताओं और संबंधों की बदलती प्रकृति को केंद्र में रखते हुए प्रस्तुत कथा में अकेलेपन और संवेदनात्मक दूरी का चित्रण किया गया है। प्रतीकात्मकता और शैलीगत प्रयोगों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि बाहरी परिवेश के साथ-साथ आंतरिक संसार भी कहानी के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इकाई-9: एक टोकरी भर मिट्टी

सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का संतुलित चित्रण करते हुए यह कथा साधारण जीवन की घटनाओं में छिपे गहरे अर्थों को सामने लाती है। पात्रों के व्यवहार और परिस्थितियों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि नैतिकता और मानवीय संबंध समाज की संरचना में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इकाई-10: जहाँ लक्ष्मी कैद है

आर्थिक असमानता और सामाजिक विषमता के प्रभाव को केंद्र में रखते हुए यह कथा मानवीय संबंधों पर धन के प्रभाव को उजागर करती है। परिस्थितियों के विश्लेषण के माध्यम से यह समझ विकसित होती है कि आर्थिक स्थिति व्यक्ति के व्यवहार और सामाजिक दृष्टिकोण को किस प्रकार प्रभावित करती है।

इकाई-11: 'लाल पान की बेगम'

सामाजिक परिवेश और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को उभारती यह कथा व्यक्ति की मानसिकता और सामाजिक स्थिति के अंतर्संबंधों को प्रस्तुत करती है। पात्रों के माध्यम से जीवन की विडंबनाओं और सामाजिक यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण सामने

आता है।

इकाई-12: ठाकुर का कुआ

जातिगत भेदभाव और सामाजिक अन्याय की तीव्र अनुभूति को व्यक्त करती यह कथा समाज के यथार्थ को प्रत्यक्ष रूप में सामने लाती है। घटनाओं के माध्यम से उत्पन्न संवेदनात्मक प्रभाव पाठक को सामाजिक संरचना की विसंगतियों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

इकाई-13: कानों में कंगना

स्त्री जीवन के अनुभवों, इच्छाओं और बंधनों को केंद्र में रखते हुए यह कथा सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करती है। पात्रों की मन:स्थितियों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक मान्यताएँ व्यक्तिगत जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

इकाई-14: भेड़िया

भय, असुरक्षा और अस्तित्व संघर्ष की अनुभूति को व्यक्त करती यह कथा मनुष्य की मनोवैज्ञानिक अवस्था को गहराई से उद्घाटित करती है। प्रतीकात्मकता के माध्यम से प्रस्तुत घटनाएँ यह संकेत देती हैं कि कठिन परिस्थितियों में मनुष्य का व्यवहार किस प्रकार परिवर्तित होता है और उसके भीतर छिपे संघर्ष किस रूप में सामने आते हैं।

इकाई-1 हिंदी कहानी

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 कहानी का अर्थ और स्वरूप
1.4 कहानी का स्वरूप
1.5 कहानी की परिभाषाएँ
1.6 सारांश
1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
1.8 अधिक जानने के लिए पढ़े
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- कहानी के विषय में जान पायेंगे।
- कहानी का अर्थ जान सकेंगे।
- कहानी का स्वरूप जान सकेंगे।
- कहानी की परिभाषाओं से अवगत होंगे।
- पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिए गए कहानी के विविध परिभाषाओं को जान पायेंगे।
- हिंदीविद्वानों द्वारा दिए गए कहानी के विविध परिभाषाओं को जान पायेंगे।

1.2 प्रस्तावना

साहित्य की सभी विधाओं में कहानी सबसे प्राचीन और लोकप्रिय विधा है। यह साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसका प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भिक विकास के साथ ही माना जाता है। मानव समाज में कहानी कहने और सुनने की परम्परा बहुत प्राचीन है। कहानी कथन से सम्बंधित है, अत: मानव ने जब कुछ कहना या बोलना आरम्भ किया होगा, तभी से कहानी का प्रारम्भ माना जा सकता है। वर्तमान की कहानी और प्राचीन काल की कहानी में थोड़ा अंतर है। वर्तमान कहानी साहित्य का एक लिखित रूप है, जबकि प्राचीन काल में कहानी मौखिक थी। लिखित रूप में होने के कारण आज कहानी अधिक कलात्मक है, लेकिन प्राचीन कहानी घटना प्रधान और कौतूहलपूर्ण थी। प्राचीन कहानी की विशेषता थी कथा और चरित्र का वैचित्र्य, जबकि आज कहानी की विशेषता है स्वाभाविक सूक्ष्म कला।

1.3 कहानी का अर्थ और स्वरूप

'कहानी' शब्द हिंदी साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली गद्य विधा को व्यक्त करता है, जिसका मूल संबंध 'कहना' या 'कथन' से जुड़ा हुआ है। सामान्य रूप से इसे अंग्रेज़ी के 'शॉर्ट स्टोरी' का पर्याय माना जाता है, किंतु इसका वास्तविक अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक और गहन है। कहानी केवल किसी घटना को बताने का माध्यम नहीं होती, बल्कि यह जीवन के किसी विशेष अनुभव, स्थिति या भाव को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि वह पाठक के मन में एक सजीव और प्रभावशाली छवि निर्मित कर सके। संस्कृत साहित्य में

इसके लिए 'आख्यायिका', 'कथानिका', 'कथा', 'गल्प' और 'वृतांत' जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो यह दर्शाते हैं कि कथा परंपरा भारतीय साहित्य में अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। प्रारंभिक कथाओं में जहाँ नैतिक शिक्षा और लोकजीवन के अनुभवों का समावेश होता था, वहीं आधुनिक कहानी में जीवन की जटिलताओं, संवेदनाओं और मनोवैज्ञानिक पक्षों को अधिक महत्व दिया गया है। इस प्रकार कहानी का विकास केवल साहित्यिक रूपांतरण नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन और समाज के बदलते स्वरूप का भी दर्पण है।

कहानी का स्वरूप संक्षिप्त होते हुए भी अत्यंत सघन और सुगठित होता है, जिसमें कथानक, पात्र, संवाद, वातावरण और उद्देश्य जैसे सभी तत्व एक-दूसरे से गहराई से जुड़े रहते हैं। यह एक ऐसी पूर्ण रचना होती है, जिसमें आरंभ, मध्य और अंत का स्पष्ट क्रम होता है और प्रत्येक भाग कथा को एक विशेष दिशा प्रदान करता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन के किसी एक पक्ष या क्षण को केंद्र में रखकर उसे इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि उसमें संपूर्ण जीवन का प्रतिबिंब दिखाई देने लगता है। इसमें रोचकता और कौतूहल का विशेष महत्व होता है, क्योंकि यही तत्व पाठक को आरंभ से अंत तक बाँधे रखते हैं। साथ ही इसमें भावनात्मक गहराई भी होती है, जो पाठक को केवल घटनाओं से परिचित नहीं कराती, बल्कि उसे उन भावनाओं को महसूस करने के लिए प्रेरित करती है, जिनसे पात्र गुजर रहे होते हैं। इस दृष्टि से कहानी केवल बाहरी घटनाओं का वर्णन नहीं करती, बल्कि वह मानव मन के सूक्ष्मतम स्तरों को भी उद्घाटित करती है।

कहानी का संबंध जीवन और समाज दोनों से गहराई से जुड़ा होता है, क्योंकि यह लेखक के अनुभवों, उसके परिवेश और उसकी सामाजिक दृष्टि का परिणाम होती है। इसमें कल्पना का उपयोग अवश्य होता है, लेकिन उसका आधार जीवन की वास्तविकता ही होती है, जिसके कारण कहानी पाठक को अपने अनुभवों के निकट प्रतीत होती है। भाषा और शैली की दृष्टि से कहानी सामान्यतः सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण होती है, ताकि वह सीधे पाठक के मन तक पहुँच सके और उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता न हो। एक प्रभावी कहानी वही होती है जो अपने सीमित आकार में भी व्यापक अर्थ और गहरी संवेदना को अभिव्यक्त कर सके तथा पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ सके। इसी कारण कहानी को गद्य साहित्य की एक सशक्त और जीवंत विधा माना जाता है, जो न केवल मनोरंजन प्रदान करती है, बल्कि जीवन की वास्तविकताओं को समझने और उन पर विचार करने की प्रेरणा भी देती है।

1.4. कहानी का स्वरूप

आधुनिक युग में कहानी सबसे लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। कहानी में निहित रोचकता ने इसका अधिक प्रचार किया है। कहानी की विविध शैलियाँ हैं। कोई भी विषय इस विधा से अछूता नहीं। कहानी बहुत प्राचीन विधा है, लेकिन समय के साथ उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा। कहानी की रचना सिर्फ कल्पना पर आधारित नहीं होती, बल्कि उसके पात्र जीवन के यथार्थ से जुड़े होते हैं। कहानी जीवन के प्रत्येक क्षण को समेटने का प्रयत्न करती है। प्राचीन कहानी का विषय इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व हुआ करता था, लेकिन वर्तमान कहानी का विषय है साधारण और उपेक्षित जन। कहानी का उद्देश्य मनोरंजन, शिक्षा, सामाजिक संदेश देना एवं पाठक-श्रोताओं को जीवन की विविध स्थितियों और भावनाओं से अवगत कराना होता है। कहानी की रचना के लिए मुख्य रूप से कुछ तत्वों का होना अनिवार्य है, जैसे- कथानक, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, भाषा-शैली, उद्देश्य आदि। कहानी का विस्तार आख्यानात्मक शैली में होता है।

निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से कहानी का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

- **कहानी एक छोटी रचना है** - कहानी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक उसका आकार है, जिसके कारण इसे एक संक्षिप्त और सघन गद्य रचना के रूप में समझा जाता है। यह आकार केवल शब्दों की संख्या तक सीमित नहीं होता, बल्कि इसका संबंध उस कलात्मक संरचना से होता है,

जिसमें सीमित विस्तार के भीतर किसी एक घटना, अनुभव या भाव को पूर्णता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। कहानी में अनावश्यक विस्तार, प्रसंगों की अधिकता या विवरण की लंबी श्रृंखला के लिए स्थान नहीं होता, क्योंकि इसका उद्देश्य जीवन के किसी एक पक्ष को केंद्र में रखकर उसे प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना होता है। यही कारण है कि कहानी में हर वाक्य, हर घटना और हर पात्र का एक निश्चित उद्देश्य होता है, जो कथा को आगे बढ़ाने और उसके प्रभाव को गहरा करने में सहायक होता है। संक्षिप्तता के कारण कहानी में कथानक का चयन अत्यंत सावधानी से किया जाता है, जहाँ लेखक केवल उन्हीं घटनाओं और प्रसंगों को शामिल करता है जो मुख्य विचार को स्पष्ट करने में आवश्यक होते हैं। इसमें विस्तार के स्थान पर सघनता को अधिक महत्व दिया जाता है, जिससे कम शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त किया जा सके। इस प्रकार कहानी एक ऐसी विधा बन जाती है, जिसमें भाषा का प्रयोग अत्यंत संयम और कुशलता के साथ किया जाता है, ताकि वह सीधे पाठक के मन पर प्रभाव डाल सके। यहाँ विवरण की लंबाई के बजाय उसकी प्रभावशीलता महत्वपूर्ण होती है, और यही कारण है कि एक छोटी-सी कहानी भी पाठक के मन में गहरी छाप छोड़ने में सक्षम होती है। कहानी की यह संक्षिप्तता उसके प्रभाव को कम नहीं करती, बल्कि कई बार उसे और अधिक तीव्र बना देती है, क्योंकि इसमें अनावश्यक विवरणों के अभाव में कथा सीधे अपने मूल भाव पर केंद्रित रहती है। पाठक को बिना भटकाए कथा अपने उद्देश्य तक पहुँचती है और उसमें एक प्रकार की कसावट बनी रहती है, जो उसे रोचक और प्रभावशाली बनाती है। यही कारण है कि कहानी पढ़ते समय पाठक को ऐसा अनुभव होता है कि वह एक सीमित दायरे में रहते हुए भी जीवन के किसी व्यापक सत्य से परिचित हो रहा है। इस प्रकार कहानी की लघुता उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी सबसे बड़ी शक्ति होती है, जो उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग और विशिष्ट बनाती है।

- **कहानी में प्रभावांविति का होना आवश्यक है** - कहानी की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार उसकी प्रभावांविति में निहित होता है, क्योंकि यही वह तत्व है जो उसे साधारण कथन से अलग कर एक सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति का रूप प्रदान करता है। कहानी जीवन के किसी एक क्षण, घटना या संवेदना को केंद्र में रखकर रची जाती है, लेकिन उसका उद्देश्य केवल उस घटना का वर्णन करना नहीं होता, बल्कि उसे इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है कि वह पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ सके। यदि कहानी में प्रभावांविति का अभाव हो, तो वह केवल घटनाओं का क्रम बनकर रह जाती है, जिसमें न तो भावनात्मक गहराई होती है और न ही वह पाठक को सोचने या अनुभव करने के लिए प्रेरित कर पाती है। इसलिए एक सशक्त कहानी वही मानी जाती है, जो अपने सीमित आकार में भी पाठक के मन, बुद्धि और संवेदना—तीनों को प्रभावित करने की क्षमता रखती हो। कहानी की प्रभावांविति उसके विभिन्न तत्वों—जैसे कथानक, पात्र-चित्रण, भाषा-शैली और वातावरण—के संतुलित और सार्थक संयोजन से उत्पन्न होती है। जब कहानी का कथानक सुसंगठित होता है, पात्र जीवंत और यथार्थ प्रतीत होते हैं, तथा भाषा सहज और प्रभावपूर्ण होती है, तब कहानी अपने आप ही पाठक के भीतर एक गहरी अनुभूति उत्पन्न करने लगती है। इसके साथ ही कहानी में भावनात्मक तत्वों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि यही तत्व पाठक को कथा के साथ जोड़ते हैं और उसे पात्रों के सुख-दुख, संघर्ष और संवेदनाओं को महसूस करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रभावांविति केवल बाहरी प्रस्तुति का परिणाम नहीं होती, बल्कि यह उस आंतरिक संवेदनशीलता से जुड़ी होती है, जिसके माध्यम से लेखक अपने अनुभवों को पाठक तक पहुँचाता है। कहानी की प्रभावांविति का एक और महत्वपूर्ण पक्ष उसकी स्मरणीयता है, क्योंकि एक प्रभावशाली कहानी पढ़ने के बाद भी पाठक के मन में लंबे समय तक बनी रहती है। वह केवल पढ़कर भूल जाने वाली रचना नहीं होती, बल्कि वह पाठक के भीतर विचारों की एक प्रक्रिया को जन्म देती है, जिससे वह जीवन

और समाज को नए दृष्टिकोण से देखने लगता है। यही कारण है कि कहानी में प्रभावांविति को अनिवार्य माना गया है, क्योंकि इसके बिना कहानी अपनी सार्थकता खो देती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कहानी की वास्तविक शक्ति उसकी प्रभावशीलता में ही निहित होती है, जो उसे केवल मनोरंजन का साधन न बनाकर एक गहन और अर्थपूर्ण साहित्यिक अनुभव में परिवर्तित करती है।

- **यह जीवन के किसी एक पक्ष पर आधारित होती है** - कहानी की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह जीवन के किसी एक विशिष्ट पक्ष, घटना, अनुभूति या परिस्थिति को केंद्र में रखकर आगे बढ़ती है। इसका उद्देश्य जीवन के संपूर्ण विस्तार को प्रस्तुत करना नहीं होता, बल्कि वह किसी एक अनुभव या स्थिति को इस प्रकार उभारती है कि उसके माध्यम से जीवन के व्यापक सत्य की झलक प्राप्त हो सके। यही कारण है कि कहानी में चयन की प्रक्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, जहाँ लेखक यह तय करता है कि जीवन के किस पक्ष को प्रस्तुत किया जाए और उसे किस प्रकार रूपायित किया जाए ताकि वह सीमित दायरे में भी पूर्णता और प्रभावशीलता प्राप्त कर सके। इस दृष्टि से कहानी एक केंद्रित विधा है, जिसमें कथानक और भाव का एकाग्र रूप दिखाई देता है। उपन्यास की तुलना में कहानी का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित होता है, क्योंकि उपन्यास में जीवन के अनेक पक्षों—सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक—का विस्तृत चित्रण किया जाता है, जबकि कहानी इन सबमें से किसी एक पहलू को लेकर चलती है। उदाहरण के लिए कोई कहानी केवल एक व्यक्ति की मन:स्थिति, किसी विशेष घटना के प्रभाव, किसी संबंध की जटिलता या किसी सामाजिक समस्या के एक पहलू को केंद्र में रख सकती है। इस प्रकार कहानी का स्वरूप संक्षिप्त होते हुए भी अत्यंत सघन और गहन होता है, क्योंकि वह सीमित विषय को गहराई से प्रस्तुत करने पर अधिक ध्यान देती है। इस एकाग्रता के कारण कहानी में अनावश्यक विस्तार या बहुविषयक प्रसंगों के लिए स्थान नहीं होता, जिससे कथा में कसावट बनी रहती है और उसका प्रभाव अधिक तीव्र हो जाता है। पाठक का ध्यान किसी एक ही भाव, विचार या स्थिति पर केंद्रित रहता है, जिससे वह उसे अधिक गहराई से अनुभव कर पाता है। यही कारण है कि कहानी, भले ही आकार में छोटी होती है, लेकिन वह जीवन के किसी एक पक्ष को इतनी सघनता और प्रभावशीलता के साथ प्रस्तुत करती है कि उसके माध्यम से पाठक को जीवन की व्यापक समझ प्राप्त होती है, और यही विशेषता उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग और विशिष्ट बनाती है।
- **कहानी जीवन की वास्तविकता की कलात्मक अभिव्यक्ति है**- कहानी का मूल स्वभाव जीवन की वास्तविकताओं को अभिव्यक्त करना है, किंतु यह अभिव्यक्ति केवल साधारण या यथार्थवादी विवरण के रूप में नहीं होती, बल्कि इसमें एक कलात्मक रूपांतरण भी शामिल होता है। कहानीकार अपने अनुभवों, परिवेश और समाज से प्राप्त जीवन-सत्य को सीधे प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसे कल्पना, संवेदना और शैली के माध्यम से इस प्रकार रूपायित करता है कि वह पाठक के लिए अधिक प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बन जाए। इस प्रकार कहानी जीवन के यथार्थ और कला के सौंदर्य का एक संतुलित समन्वय प्रस्तुत करती है, जहाँ वास्तविकता को न तो पूरी तरह बदला जाता है और न ही उसे यथावत् छोड़ दिया जाता है, बल्कि उसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि वह अधिक गहराई से समझ में आ सके।
- **कहानी में जीवन की वास्तविकता विभिन्न रूपों में प्रकट होती है—**कभी सामाजिक परिस्थितियों के रूप में, कभी मानवीय संबंधों की जटिलताओं के रूप में, तो कभी व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष और मानसिक द्वंद्व के रूप में। लेखक इन सभी अनुभवों को अपने दृष्टिकोण से देखता है और उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वे सामान्य होते हुए भी विशेष बन जाते हैं। यही कलात्मकता कहानी को केवल तथ्यात्मक विवरण से अलग करती है और उसे साहित्यिक रचना का रूप प्रदान करती है।

जब पाठक किसी कहानी को पढ़ता है, तो वह केवल घटनाओं को नहीं देखता, बल्कि उन घटनाओं के पीछे छिपे अर्थ, भाव और संकेतों को भी अनुभव करता है, जिससे उसे जीवन की गहरी समझ प्राप्त होती है। कहानी की यह कलात्मक अभिव्यक्ति उसकी भाषा, शैली और संरचना में भी दिखाई देती है, जहाँ शब्दों का चयन, संवादों का प्रयोग और वातावरण का चित्रण सब मिलकर एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं, जो पाठक को कथा के भीतर ले जाता है। यह प्रभाव केवल बौद्धिक नहीं होता, बल्कि भावनात्मक भी होता है, जिससे पाठक कहानी के पात्रों और उनकी परिस्थितियों से जुड़ने लगता है। यही कारण है कि कहानी, जीवन की वास्तविकताओं को प्रस्तुत करते हुए भी केवल एक प्रतिबिंब नहीं रहती, बल्कि वह उन वास्तविकताओं को एक नए दृष्टिकोण से देखने और समझने का माध्यम बन जाती है, और इसी विशेषता के कारण कहानी को जीवन की वास्तविकता की एक सशक्त और कलात्मक अभिव्यक्ति कहा जाता है।

- **कहानी में किसी एक प्रेरणा बिंदु का विस्तार होता है** - कहानी का निर्माण प्राय: किसी एक प्रेरणा बिंदु से आरंभ होता है, जो लेखक के मन में किसी घटना, अनुभव, विचार या संवेदना के रूप में उत्पन्न होता है। यही प्रेरणा बिंदु कहानी का मूल आधार बनता है और उसी के इर्द-गिर्द पूरी कथा का विकास होता है। यह प्रेरणा कभी किसी वास्तविक घटना से उत्पन्न हो सकती है, कभी किसी सामाजिक स्थिति से, तो कभी किसी व्यक्तिगत अनुभूति या मानसिक द्वंद्व से। लेखक इस प्रेरणा को अपनी कल्पना और संवेदनशीलता के माध्यम से विस्तार देता है और उसे इस प्रकार रूपायित करता है कि वह एक सुसंगठित और प्रभावपूर्ण कहानी का रूप ले सके। इस दृष्टि से कहानी केवल घटनाओं का संयोग नहीं होती, बल्कि वह एक निश्चित विचार या भाव से प्रेरित होकर विकसित होती है। कहानी की यह विशेषता उसे उद्देश्यपूर्ण बनाती है, क्योंकि हर कहानी के पीछे कोई न कोई विचार, संदेश या जीवन-दृष्टि अवश्य होती है, जिसे लेखक पाठक तक पहुँचाना चाहता है। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी, लेकिन वह कथा के भीतर निरंतर कार्य करता रहता है और उसकी दिशा को निर्धारित करता है।
- **कहानी के पात्र, घटनाएँ और संवाद**—उसी प्रेरणा बिंदु को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं, जिससे कथा में एकता और कसावट बनी रहती है। यदि कहानी में यह केंद्रीय प्रेरणा स्पष्ट न हो, तो वह बिखरी हुई और प्रभावहीन प्रतीत होती है, क्योंकि उसमें कोई एकाग्रता या दिशा नहीं रह जाती। इस प्रेरणा बिंदु का विस्तार ही कहानी को गहराई और अर्थ प्रदान करता है, क्योंकि इसके माध्यम से लेखक अपने अनुभवों और विचारों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। पाठक जब कहानी को पढ़ता है, तो वह केवल घटनाओं का क्रम नहीं देखता, बल्कि उस मूल भाव या विचार को भी समझने का प्रयास करता है, जो पूरी कथा के केंद्र में होता है। यही कारण है कि एक अच्छी कहानी पढ़ने के बाद पाठक के मन में कोई न कोई विचार, प्रश्न या अनुभूति अवश्य उत्पन्न होती है, जो उसे सोचने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार कहानी का प्रेरणा बिंदु उसकी आत्मा के समान होता है, जो उसे दिशा, उद्देश्य और प्रभाव प्रदान करता है।
- **कहानी में तीव्रता और गति आवश्यक है** - कहानी के स्वरूप की एक प्रमुख विशेषता उसकी गति और तीव्रता में निहित होती है, क्योंकि यह एक संक्षिप्त गद्य विधा होने के कारण सीमित शब्दों में प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास करती है। इसमें घटनाओं का क्रम इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि कथा अनावश्यक ठहराव या विस्तार से बची रहे और निरंतर आगे बढ़ती हुई पाठक को अपने साथ जोड़े रखे। यदि कहानी में गति का अभाव हो जाए और घटनाएँ अनावश्यक रूप से धीमी या विस्तृत हो जाएँ, तो पाठक की रुचि कम होने लगती है और कथा का प्रभाव भी कमजोर पड़ जाता है। इसलिए कहानी में ऐसी प्रवाहमयी गति का होना आवश्यक होता है, जो आरंभ से अंत तक पाठक

की जिज्ञासा और उत्सुकता को बनाए रखे। तीव्रता का संबंध केवल गति से ही नहीं, बल्कि कथा के भावात्मक और मानसिक प्रभाव से भी होता है। जब कहानी में घटनाएँ सघन और सारगर्भित होती हैं, पात्रों की प्रतिक्रियाएँ सजीव होती हैं और कथानक में कसावट होती है, तब उसमें एक प्रकार की तीव्रता उत्पन्न होती है, जो पाठक को गहराई से प्रभावित करती है। यह तीव्रता ही कहानी को प्रभावपूर्ण बनाती है, क्योंकि इसके माध्यम से कम शब्दों में अधिक भाव और अर्थ संप्रेषित किए जाते हैं। यदि यह तीव्रता न हो, तो कहानी केवल साधारण वर्णन बनकर रह जाती है, जिसमें न तो आकर्षण होता है और न ही कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न हो पाता है। कहानी की गति और तीव्रता के संतुलन से ही उसकी प्रभावशीलता निर्धारित होती है, क्योंकि एक ओर अत्यधिक तेजी कथा को अधूरा या असंतुलित बना सकती है, वहीं दूसरी ओर अत्यधिक धीमापन उसे बोझिल और निरस बना देता है। एक कुशल कहानीकार इस संतुलन को बनाए रखते हुए कथा को इस प्रकार आगे बढ़ाता है कि उसमें न तो अनावश्यक विस्तार हो और न ही आवश्यक घटनाओं की उपेक्षा हो। यही संतुलित गति और सघनता कहानी को जीवंत, रोचक और प्रभावशाली बनाती है, जिससे पाठक अंत तक उससे जुड़ा रहता है और कथा का अनुभव उसके मन में गहराई तक अंकित हो जाता है।

- **कहानी अंत तक पाठक के हृदय में कौतूहल बनाए रखती है** – कहानी की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह आरंभ से अंत तक पाठक के मन में जिज्ञासा और कौतूहल बनाए रखती है, जिसके कारण पाठक लगातार कथा से जुड़ा रहता है। कहानी का प्रारंभ ही इस प्रकार किया जाता है कि वह पाठक का ध्यान आकर्षित करे और उसके भीतर यह जानने की उत्सुकता उत्पन्न करे कि आगे क्या होने वाला है। यही उत्सुकता धीरे-धीरे बढ़ती हुई कथा के मध्य भाग में और अधिक गहराई प्राप्त करती है, जहाँ घटनाएँ, पात्र और परिस्थितियाँ इस प्रकार विकसित होती हैं कि पाठक का ध्यान पूरी तरह कथा में केंद्रित हो जाता है। यदि कहानी में यह कौतूहल न हो, तो वह केवल घटनाओं का साधारण विवरण बनकर रह जाती है और पाठक उसमें रुचि नहीं ले पाता। कहानी में कौतूहल उत्पन्न करने के लिए कथानक का सुसंगठित और रोचक होना आवश्यक होता है। घटनाओं का क्रम इस प्रकार रखा जाता है कि हर नई घटना पाठक की जिज्ञासा को और अधिक बढ़ा दे और उसे आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करे। साथ ही पात्रों के व्यवहार, उनके निर्णय और उनके बीच होने वाले संवाद भी इस जिज्ञासा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई बार लेखक कुछ बातों को सीधे न बताकर संकेतों या परिस्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक स्वयं अनुमान लगाने का प्रयास करता है और उसकी रुचि कथा में बनी रहती है। इस प्रकार कौतूहल केवल कथानक का परिणाम नहीं होता, बल्कि यह कहानी की पूरी संरचना और प्रस्तुति से उत्पन्न होता है।कहानी के अंत तक यह कौतूहल पाठक को बाँधे रखता है और जब कथा अपने चरम बिंदु पर पहुँचती है, तब यह जिज्ञासा एक संतोषजनक समाधान में परिवर्तित हो जाती है। यही प्रक्रिया कहानी को रोचक और प्रभावशाली बनाती है, क्योंकि पाठक केवल पढ़ता ही नहीं, बल्कि वह कहानी के साथ मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कौतूहल कहानी की आत्मा के समान होता है, जो उसे जीवंत बनाए रखता है और पाठक को आरंभ से अंत तक उससे जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **कहानी में थोड़े समय में ही महत्वपूर्ण बात कहनी होती है** – कहानी की संरचना का एक प्रमुख गुण उसका संकुचित रूप है, जिसमें समय और स्थान दोनों सीमित होते हैं, इसलिए लेखक को बहुत कम विस्तार में ही अपने विचार, भाव और कथ्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना होता है। यह संक्षिप्तता केवल आकार की दृष्टि से नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इसमें हर शब्द, हर वाक्य और हर घटना का चयन सोच-समझकर किया जाता है। कहानी

में अनावश्यक विवरण, लंबी व्याख्याएँ या अप्रासंगिक प्रसंगों के लिए स्थान नहीं होता, इसलिए लेखक को अपनी बात को इस प्रकार संक्षेप में कहना होता है कि वह स्पष्ट भी हो और प्रभावशाली भी। यही कारण है कि कहानी में कम शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की कला का विशेष महत्व होता है। समय और स्थान के इस संकुचन के कारण कहानी में घटनाओं का चयन अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाता है, जहाँ केवल वही प्रसंग शामिल किए जाते हैं जो कथा के मुख्य उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक हों। कहानीकार किसी विस्तृत जीवन-चित्र के बजाय जीवन के किसी एक क्षण या अनुभव को लेकर उसे इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उसके माध्यम से व्यापक अर्थ प्रकट हो सके। इस प्रक्रिया में लेखक को अपने कथ्य को अत्यंत सघन और केंद्रित रखना होता है, जिससे कहानी में कसावट बनी रहती है और उसका प्रभाव अधिक तीव्र हो जाता है। यदि कहानी में अनावश्यक विस्तार हो, तो उसका प्रभाव कमजोर पड़ जाता है और पाठक की रुचि भी कम होने लगती है। कहानी की यही विशेषता उसे प्रभावशाली और स्मरणीय बनाती है, क्योंकि वह थोड़े समय में ही पाठक तक एक महत्वपूर्ण विचार या अनुभव पहुँचा देती है। पाठक सीमित समय में ही कहानी को पढ़कर उससे जुड़ जाता है और उसके भीतर निहित अर्थ को समझने लगता है। इस प्रकार कहानी एक ऐसी विधा के रूप में सामने आती है, जो अपने छोटे आकार के बावजूद गहरी और व्यापक बात को सहजता से व्यक्त करने की क्षमता रखती है, और यही गुण उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग और विशिष्ट बनाता है।

- **एकान्विति** - कहानी की संरचना में एकान्विति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है, जिसका अर्थ है कि पूरी कथा किसी एक मुख्य भाव, विचार या घटना के इर्द-गिर्द केंद्रित रहती है। यह एकता कहानी को बिखरने से बचाती है और उसे एक सुसंगठित तथा प्रभावपूर्ण रूप प्रदान करती है। कहानी में अनेक प्रसंग, पात्र या घटनाएँ हो सकती हैं, किंतु वे सभी अंततः उसी केंद्रीय भाव या उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं, जो कथा की मूल आत्मा होता है। यदि यह एकान्विति न हो, तो कहानी में एकरूपता समाप्त हो जाती है और वह असंगठित तथा प्रभावहीन प्रतीत होने लगती है। एकान्विति के कारण कहानी में कसावट और सघनता बनी रहती है, क्योंकि हर तत्व—चाहे वह कथानक हो, पात्र-चित्रण हो या संवाद—उसी मुख्य विचार को स्पष्ट करने में सहायक होता है। इसमें अनावश्यक विस्तार या भटकाव के लिए स्थान नहीं होता, जिससे कथा सीधे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। यह विशेषता कहानी को उपन्यास जैसी विस्तृत विधाओं से अलग करती है, जहाँ अनेक विषयों और घटनाओं का समावेश किया जा सकता है। कहानी में इस प्रकार की एकाग्रता पाठक को भी केंद्रित अनुभव प्रदान करती है, जिससे वह कथा के मूल भाव को अधिक गहराई से समझ पाता है। एकान्विति का प्रभाव कहानी के समग्र प्रभाव पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, क्योंकि यही तत्व कथा को एक निश्चित दिशा और उद्देश्य प्रदान करता है। जब कहानी का अंत होता है, तो पाठक के मन में वही मुख्य भाव या विचार सबसे अधिक प्रभाव छोड़ता है, जिसके इर्द-गिर्द पूरी कथा विकसित हुई होती है। यही कारण है कि एक अच्छी कहानी पढ़ने के बाद पाठक के मन में कोई एक विशेष अनुभूति या विचार गहराई से स्थापित हो जाता है। इस प्रकार एकान्विति कहानी की आत्मा के समान होती है, जो उसे सुसंगठित, प्रभावशाली और स्मरणीय बनाती है।

K प्रगति विवरण

प्रश्न संख्या 1. कहानी से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न संख्या 2. कहानी की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

प्रश्न संख्या 3. कहानी को जीवन की वास्तविकता की कलात्मक अभिव्यक्ति क्यों कहा जाता है?

1.5 कहानी की परिभाषाएँ

पाश्चात्य और भारतीय साहित्य के विविध विद्वानों ने कहानी को अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है। कहानी की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है-

प्रसिद्ध कहानीकार और समालोचक फ्रैंक ओ कैनर ने कहानी को परिभाषित करते हुए कहा है कि - कहानी एक आधुनिक कला है, जो कविता और नाटक की तुलना में जीवन में हमारे अपने दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व बेहतर रूप से करती है। उनका कहना है कि प्रारम्भिक अवस्था में कविता और नाटक की तरह कहानी सुनना एक प्लास्टिक कला थी। इसमें तकनीक की कमी होने के कारण महत्वहीन थी। लेकिन कहानी उपन्यास की तरह एक आधुनिक कला रूप है, जिसका अर्थ यह है कि यह जीवन के प्रति हमारे अपने दृष्टिकोण काव्य और नाटक से बेहतर रूप में प्रतिनिधित्व करता है।

सेन ओ. फाओलेन ने कहा है - कहानी में रचनाकार की आत्मजिज्ञासा प्रतिफलित होती है। दूसरे शब्दों में कहानी एक सशक्त रूप से व्यक्तिगत प्रदर्शनी है, जिसे कोई खोजता है और जो उसका आनंद लेता है। कहानी एक विशेष आसवन, एक अनूठी संवेदनशीलता है जो एक ऐसे विषय को पहचानती और चुनती है जो अन्य सभी विषयों से ऊपर है, जो विषय लेखक के लिए महत्वपूर्ण है, उनके स्वभाव के अनुसार है और अपने में पूर्ण है जिसके माध्यम से खुद को प्रस्तुत करने का सही अवसरलेखक को मिलता है।

अमरीकी साहित्यिक एडगर एलन पो के अनुसार - कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समंवित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।

गोपाल राय ने अपने 'हिंदी कहानी का इतिहास' के प्रथम भाग में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटिनिका में दी गई कहानी की परिभाषा के संबंध में कहा है -इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटिनिका के अनुसार 'शार्ट स्टोरी' (छोटी कहानी) एक प्रकार की गद्य कथा है, जो सामान्यतः 'नॉवेल' (उपन्यास) और लघु उपन्यास की तुलना में अधिक सुसंबद्ध और सकेंद्रित या घनीभूत होती है ।

हिंदी साहित्य कोश (भाग-1) में कहानी के विषय में कहा गया है -कथा साहित्य के उपर्युक्त बड़े रूपों (उपन्यास और उपन्यासिका) से कहानी की भिन्नता इतनी ही नहीं है कि उसका कथानक बहुत छोटा होता है, उसमें घटना-प्रसंग और दृश्य तथा पात्र और उनका चरित्र-चित्रण, अत्यंत न्यून, सूक्ष्म और संक्षिप्त होता है, वरन् कहानी प्रस्तुत करने में लेखक के दृष्टिकोण से तथा कहानी का वातावरण अर्थात् समस्त कहानी में परिव्याप्त सामान्य मनोदशा से उसके शिल्प-विधान में ऐसी एकता और प्रभावांविति आ जाती है, जो कहानी की निजी विशेषता है और उसके रूपात्मक व्यक्तित्व की पृथकता प्रकट करती है ।

रवींद्रनाथ टैगोर ने कहानी के विषय में कहा है - नदी जैसे जलस्त्रोत की धारा है, वैसे ही कहानी गद्य का प्रवाह है ।

मुंशी प्रेमचंद्र की कहानी विषयक दो-तीन परिभाषाएँ मिलती है। प्रेमचंद के अनुसार- कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।

प्रेमचंद्र ने अपनी दूसरी परिभाषा में कहा है - कहानी वह रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटेसजे हुए

हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार के अनुसार - घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है। साहित्य के सभी अंगों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।

पाश्चात्य समीक्षक हद्सन के अनुसार - कहानी में चरित्र व्यक्त होता है।

जैनेंद्र ने कहानी की परिभाषा देते हुए कहा है कि - कहानी मानव मन की भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करता है ।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के अनुसार- कहानी एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र है, जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के दृश्य खुलते हैं ।

बाबू गुलाब राय के अनुसार- छोटी कहानी एक स्वत: पूर्ण रचना है ।

K प्रगति विवरण

प्रश्न संख्या 4. कहानी में गति, तीव्रता और कौतूहल का क्या महत्व है?

प्रश्न संख्या 5. कहानी में प्रेरणा बिंदु और एकान्विति का क्या महत्व है?

1.6 सारांश

साहित्य की सभी विधाओं में कहानी सबसे प्राचीन और लोकप्रिय विधा है। यह साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसका प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भिक विकास के साथ ही माना जाता है। अनादि काल से ही मानव किसी न किसी रूप में कहानी सुनता और कहता आया है। कहानी वह रचना है जिसमें जीवन के किसी भी महत्वपूर्ण घटना या अंग और किसी भी संदर्भ को बेहद रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी काल्पनिक कथा भी कहानी का विषय होता है। हिंदी के प्रसिद्ध विद्वानों ने कहानी को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। हिंदी विद्वानों के अलावा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भी कहानी को परिभाषित किया गया है।

K 1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: कहानी एक संक्षिप्त गद्य रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक पक्ष, घटना या अनुभव को सघन और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अनावश्यक विस्तार के लिए स्थान नहीं होता और प्रत्येक तत्व कथा के उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक होता है।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: कहानी की प्रमुख विशेषताओं में संक्षिप्तता, एकान्विति, प्रभावांविति, गति और कौतूहल प्रमुख हैं। यह जीवन के किसी एक पक्ष को केंद्र में रखकर चलती है और अपने सीमित आकार में भी गहरी संवेदना और अर्थ को व्यक्त करने की क्षमता रखती है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: कहानी जीवन की वास्तविकता की कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें लेखक अपने अनुभवों और समाज से प्राप्त यथार्थ को कल्पना और शैली के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिससे वह अधिक प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बन जाता है।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: कहानी में कौतूहल, गति और तीव्रता का विशेष महत्व होता है, जो पाठक को आरंभ से अंत तक कथा से जोड़े रखते हैं और उसकी रुचि को बनाए रखते हैं। इन तत्वों के अभाव में कहानी निरस और प्रभावहीन हो जाती है।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: कहानी में किसी एक प्रेरणा बिंदु या मुख्य भाव का विस्तार होता है, जो पूरी कथा को दिशा प्रदान करता है और उसे उद्देश्यपूर्ण बनाता है। यही प्रेरणा बिंदु कहानी की एकान्विति और प्रभाव को निर्धारित करता है।

5 1.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-1)- गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।
- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-2)-गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।
- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-3)- गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास-डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017।
- हिंदी साहित्य कोश (भाग-1)-डॉ. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1958।
- काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
- हरदयाल और नगेंद्र. संपा. हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2012।
- हिन्दी का गद्यसाहित्य, रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2020।
- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013।

M1.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

1 कहानी से क्या अभिप्राय है?

2 कहानी की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

3 कहानी में एकान्विति का क्या महत्व है?

4 कहानी में कथानक से क्या आशय है?

5 कहानी में पात्र-चित्रण की भूमिका क्या होती है?

6 कहानी में कौतूहल और रोचकता क्यों आवश्यक है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

1 कहानी की संकल्पना का विस्तार से वर्णन कीजिए तथा उसके स्वरूप और महत्व को स्पष्ट कीजिए।

2 कहानी की प्रमुख विशेषताओं का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए और उदाहरण सहित उनके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

3 कहानी में कथानक, पात्र और परिवेश के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण कीजिए तथा उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।

4 कहानी को जीवन की वास्तविकता की कलात्मक अभिव्यक्ति मानते हुए उसके विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालिए।

5 कहानी में भाषा-शैली और शिल्प के महत्व का विस्तार से विवेचन कीजिए तथा यह बताइए कि वे कहानी को किस प्रकार प्रभावशाली बनाते हैं।

6 कहानी में गति, तीव्रता, कौतूहल और प्रभावांविति के महत्व का विश्लेषण कीजिए।

****

इकाई-2 कहानी का वर्गीकरण (वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 कहानी का वर्गीकरण
2.4 हिन्दी कहानी का औचित्य
2.5 हिंदी कहानी की सीमाएँ
2.6 सारांश
2.7 प्रगति विवरण
2.8 अधिक जानने के लिए पढ़े
2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- कहानी के बारे में जान सकेंगे।
- कहानी के वर्गीकरण के विषय में जान सकेंगे।
- किन आधारों पर कहानी का वर्गीकरण किया जाता है, उन आधारों को जान सकेंगे।
- प्रारम्भिक हिन्दी कहानी की स्थिति समझ सकेंगे।
- हिन्दी कहानी का विकास क्रम समझ सकेंगे।
- कहानी के वर्तमान परिदृश्य को समझ सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

मानव अपनी अनुभूतियों को साहित्य के विविध रूपों द्वारा अभिव्यक्त करता है। साहित्य के उन रूपों में कहानी भी शामिल है। कहानी का विकास उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। कहानी आधुनिक गद्य साहित्य की एक अत्यंत लोकप्रिय विधा है। भले ही हिंदी कहानी का विकास आधुनिक युग में हुआ, लेकिन कहानी कहने और सुनने की प्रथा प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान है। प्राचीन कहानियों के अंतर्गत उपनिषद की कहानी आती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक और पुरानी कहानी के विषय में कहा है - आधुनिक ढंग के उपन्यासों और कहानियों के स्वरूप का विकास इसी भेद के आधार पर क्रमशः हुआ है। इस स्वरूप के विकास के लिए कुछ बातें नाटकों की ली गयीं, जैसे- कथोपकथन, घटनाओं का विन्यास वैचित्र्य, बाह्य और आभ्यंतर परिस्थिति का चित्रण तथा उसके अनुरूप भावव्यंजना। इतिवृत्त का प्रवाह तो उसका मूल रूप था ही; वह तो बना ही रहेगा। उनमें अंतर इतना ही पड़ा कि पुराने ढंग की कथा-कहानियों में कथा का प्रवाह अखंड गति से एक ओर चला चलता था, जिसमें घटनाएँ पूर्वापर क्रम से जुड़ती सीधी चली जाती थी। पर यूरोप में जो कथानक नॉवेल के नाम से चले और बंगभाषा में आकर उपन्यास कहलाये (मराठी में वे कादंबरी कहलाने लगे) वे कथा के भीतर की कोई भी परिस्थिति आरम्भ में रखकर चल सकते हैं और उसमें घटनाओं की श्रृंखला लगातार सीधी न जाकर इधर-उधर और श्रृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है और अंत में जाकर सबका समाहार हो जाता है। घटनाओं के विन्यास कि यह वक्रता या वैचित्र्य उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता है जो उन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से अलग करती है। हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास में भारत की प्राचीन

कथाओं, भारतीय कथा साहित्य, पाश्चाऔत्य कथा साहित्य और लोक कथा साहित्य का सम्मिलित प्रभाव है। हिन्दी कहानी इन सबसे कुछ न कुछ तत्व ग्रहण करते हुए अपना रूप ले सकी है। कहानी कहने और सुनने की चीज है। इस रूप में भारतीय समाज में कहानी का अस्तित्व काफी पुराना है। हिन्दी साहित्य में कहानी लिखने की परम्परा आधुनिक काल में शुरू हुई। भारतेन्दु युग में कुछ अनूदित कहानियों का प्रकाशन हुआ। भारतेन्दु युगीन साहित्यकार गदाधर सिंह ने बाणभट्ट की संस्कृत रचना 'कादम्बरी' का लम्बी कहानी के रूप में हिन्दी अनुवाद किया था। उस काल में ऐसी ही अनेक संस्कृत रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ। आधुनिक युग की कहानियों पर संस्कृत और अन्य भाषाओं से अनूदित कहानियों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जिन कहानियों का विकास हुआ, वे कहानियाँ कहानी कला की दृष्टि से अनूदित कहानियों से सर्वथा भिन्न है। हिन्दी कहानी मुख्य रूप से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ शुरू हुई। यद्यपि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी अनेक ऐसी रचनाएँ लिखी गईं, जिनमें कहानी का तत्व मिलता है, पर तात्त्विक आधार पर सही रूप में हम उन्हें कहानी नहीं कह सकते। 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'देवरानी जेठानी की कहानी' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रकाशन वर्ष के अनुसार हिन्दी की प्रारम्भिक मौलिक कहानी की सूची दी है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

- कहानी आधुनिक गद्य साहित्य की एक अत्यंत लोकप्रिय विधा है। भले ही हिंदी कहानी का विकास आधुनिक युग में हुआ, लेकिन कहानी कहने और सुनने की प्रथा प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान है।
- पाशात्य कथा साहित्य और लोक कथा साहित्य का सम्मिलित प्रभाव है। हिन्दी कहानी इन सबसे कुछ न कुछ तत्व ग्रहण करते हुए अपना रूप ले सकी है ।
- कहानी का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है, जैसे विषय, तत्व, उद्देश्य आदि।

2.3 कहानी का वर्गीकरण

कहानी का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है, जैसे विषय, तत्व, उद्देश्य आदि।

कहानी को विषय के आधार पर बहुत से भागों में विभाजित किया जा सकता है। उनमें प्रमुख है-

जासूसी कहानी- जासूसी कहानी में जादू-टोना, तिलस्मी, भूत-प्रेत आदि का वर्णन किया जाता है। यह कहानी मनोरंजन के लिए लिखी जाती है। जैसे- 'इंशा अल्ला खाँ' की 'रानी केतकी की कहानी'।

ऐतिहासिक कहानी- ऐतिहासिक कहानी में किसी ऐतिहासिक घटना, पात्र, वातावरण को प्रस्तुत किया जाता है। जैसे- 'जयशंकर प्रसाद' की 'छाया', 'प्रतिध्वनि' आदि।

राजनैतिक कहानी- राजनैतिक कहानी राजनीति से संबंधित विषय, परिस्थिति, पात्र आदि पर लिखी जाती है। जैसे- 'जैनेंद्र' की 'फाँसी'।

धार्मिक कहानी- इस प्रकार की कहानियों में धर्म से जुड़ी बातें, घटनाएँ, धार्मिक समस्याओं, धार्मिक आडम्बरों और परिस्थितिओं का चित्रण किया जाता है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'हिंसा परमो धर्म'।

सामाजिक कहानी- समाज में घटित विभिन्न घटना, रीति-रिवाज, परम्परा, संस्कृति, सामाजिक समस्याओं पर सामाजिक कहानी लिखी जाती है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'पूस की रात'।

मनोवैज्ञानिक कहानी- इस प्रकार की कहानियों में मानव मन की विविध ग्रंथियों, दमित वासनाओं, अतृप्त इच्छाओं, मानव मन की विविध क्रियाओं का चित्रण किया जाता है। जैसे- 'जैनेंद्र' की 'पाजेब'।

तत्वों के आधार पर कहानी का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

घटनाप्रधान कहानी- किसी भी घटना को केंद्र में रखकर जो कहानी रची जाती है, उसे घटनाप्रधान कहानी कहा जाता है। इस प्रकार की कहानी में घटना को स्पष्ट करने के लिए चरित्र का सहारा लिया जाता है। जैसे- 'कमलेश्वर' की 'दिल्ली में एक मौत'।

वातावरण प्रधान कहानी- इस प्रकार की कहानी में वातावरण को प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया जाता है और वातावरण का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। जैसे- 'अज्ञेय' की 'रोज'।

चरित्र प्रधान कहानी- इस प्रकार की कहानी में किसी एक चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। एक प्रमुख पात्र को केंद्र में रखकर पूरी कहानी रची जाती है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'आत्माराम'।

उद्देश्य के आधार पर कहानियों का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

आदर्शवादी कहानी- इस प्रकार की कहानियों में आदर्शवाद प्रमुख विषय होता है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'ईदगाह'।

यथार्थवादी कहानी- इस प्रकार की कहानियों में वास्तविकता के प्रति एक नया दृष्टिकोण कहानीकार प्रस्तुत करता है। समाज की समस्याओं, परिस्थितिओं का यथार्थ चित्रण यथार्थवादी कहानियों में किया जाता है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'कफन'।

समंवयवादी कहानी- इस प्रकार की कहानियों में आदर्श और यथार्थ दोनों का समंवय किया जाता है। जैसे- 'जयशंकर प्रसाद' की 'आकाशदीप'।

विषय, तत्व और शैली के अलावा भी आधुनिक हिंदी कहानी को नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समानांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी, स्त्रीवादी कहानी आदि भागों में विभाजित किया जाता है।

नयी कहानी- नई कहानी का समय सन् 1954 के आसपास से शुरू होता है। इसमें जटिल जीवन यथार्थ की व्यापक स्वीकृति दिखाई देती है। जटिल जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति आसान नहीं है। नई कहानी में व्यक्ति की प्रतिष्ठा निर्विवाद रुप से हुई। साथ ही मध्यवर्गीय चेतना और आधुनिकता बोध भी नई कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बनी। इसमें छिछली भावुकता के स्थान पर जीवन की अनुभूतियाँ और समस्याओं से संशृतियष्ट रूप में प्रेम को अभिव्यक्ति मिली। नई कहानी की एक प्रमुख विशेषता सांकेतिकता है। यह सांकेतिकता वस्तु और शिल्प दोनों में आयी है। अज्ञेय की कहानी 'साँप', कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया', राजेन्द्र यादव की 'खैल-खिलोने', ठाकुर प्रसाद सिंह की 'सर्पदंश', शिवप्रसाद सिंह की 'अन्धकूप' कहानियों में प्रतीकात्मक संकेत मिलते हैं। हिन्दी की पहली नई कहानी कौन सी है, इस पर भी आलोचक एकमत नहीं हैं। नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' को हिन्दी की पहली नई कहानी कहा। अनेक आलोचकों ने शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'दादी माँ' को हिन्दी की पहली नई कहानी माना है।

नई कहानीकारों में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, अमरकांत, अजित कुमार, शेखर जोशी, फणीश्वर नाथ रेणु, मार्केण्डेय, अमृत राय, रघुवीर सहाय, मन्नू भंडारी, श्रीकांत वर्मा, राजकम्ल चौधरी, गंगा प्रसाद विमल, कृष्णा सोबती, रांगेय राघव, शिवप्रसाद सिंह, उषा प्रियंवदा, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, महेंद्र भल्ला, काशीनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, रमेश बख्शी, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला आदि उल्लेखनीय है।

अकहानी- नयी कहानी के विरोध में अकहानी आंदोलन उभरने लगा। गंगाप्रसाद 'विमल' और नामवर सिंह को नयी कहानी आंदोलन के प्रवर्तक माना जाता है। सन् 1960 के बाद नयी कहानी खुद व खुद

अपनी रूढ़ियों में फंसती चली गयी, फलस्वरूप अकहानी आंदोलन का जन्म हुआ। इसमें मनुष्य की पीड़ा, कुंठा, व्यर्थताबोध, नगण्यताबोध का यथार्थ चित्रण किया गया है। यद्यपि यह आंदोलन एक छोटे समय तक सीमित रहा, पर अकहानी के शिल्प में कुछ नये प्रयोग किये गये, जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता।

सचेतन कहानी- इस कहानी आंदोलन के प्रवर्तक डॉ. महीप सिंह को माना जाता है। नई कहानी की आत्मपरकता और रूपवादी प्रवृति के विरोध में सचेतन कहानी का आंदोलन आरम्भ हुआ। इस कहानी आंदोलन की विशेषता यह है कि इसने सचेत रूप से जीवन में सक्रियता, आशा, आस्था और संघर्ष का भाव संचालित किया। सचेतन कहानी आंदोलन में हिंदी कहानी को मूल्यहीनता और व्यक्ति केंद्रित होने से मुक्त करने का प्रयास किया गया। महीप सिंह, मनहर चौहान, राजीव सक्सेना, हिंमाशु जोशी आदि सचेतन कहानीकार है।

समानांतर कहानी- सचेतन और नई कहानी के बाद हिंदी साहित्य में समानांतर कहानी आंदोलन चला। यह आंदोलन जनवादी ताकतों को कुचलनेवाली कटिबद्धता के विरोध में उभरा था। सारिका पत्रिका के संपादक कमलेश्वर ने सन् 1972 में समानांतर कहानी आंदोलन का प्रारम्भ किया था। इस आंदोलन ने आम आदमी को केंद्र में रखा। सतीश जायसवाल, अकुलेश परिहार, कमलेश्वर आदि समानांतर कहानीकार है।

जनवादी कहानी- जनवादी कहानी आंदोलन ने मूल रूप से जनवाद को अपना प्रमुख आधार बनाते हुए किसान, मजदूर, दलित आदि शोषित वर्ग के लोगों को अपना केंद्र बनाया। सन् 1977 में दिल्ली विश्वविद्यालय में एक जनवादी विचार मंच की स्थापना के माध्यम से इसका प्रारम्भ हुआ। सन् 1982 में जनवादी लेखक संघ की स्थापना के उपरांत ही इस आंदोलन ने एक संगठित रूप लिया। रमेश उपाध्याय, रमेश बत्रा, स्वंय प्रकाश, नमिता सिंह, हेतु भारद्वाज आदि प्रमुख जनवादी कहानीकार है।

समकालीन कहानी- समकालीन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक डॉ. गंगाप्रसाद 'विमल' को माना जाता है। सन् 1960 के बाद रचित हिंदी कहानियाँ समकालीन दौर की कहानियाँ है। समकालीन कहानियों में समकालीन समस्याओं को चित्रित किया जाता है। कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, अमृतलाल नागर समकालीन कहानीकार है।

दलित कहानी- दलितों के जीवन के यथार्थ, संघर्ष, अनुभूतियों को दलित कहानी में चित्रित किया जाता है। मोहनदास नैमिशराय, मधुकर सिंह, भदंत आनंद, सुमन प्रभा आदि दलित कहानीकार है।

स्त्रीवादी कहानी- स्त्रियों की समस्याओं और उनकी संवेदनाओं को लेकर जो कहानी लिखी जाती है उसे स्त्रीवादी कहानी कहा जाता है। कृष्णा सोबती, मैत्रयी पुष्पा, सारा राय, मृदुला गर्ग आदि स्त्रीवादी कहानिकार है।

गद्य कथा-साहित्य के अन्यतम भेद कहानी लिखने की प्रवृत्ति खड़ीबोली गद्य के विकास के साथ-साथ दिखायी पड़ती है। लेकिन प्रारम्भिक अवस्था की कहानियाँ पुराणों या संस्कृत ग्रंथों का भावानुवाद मात्र है। हिंदी कहानी में प्रेमचंद का आर्विभाव अति उल्लेखनीय है। स्वतंत्रतापूर्व हिंदी कहानी के काल विभाजन के आधार के रूप में प्रेमचंद को रखा गया था। हिंदी कहानी के विकास यात्रा को निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

स्वतंत्रतापूर्व हिंदी कहानी- प्रेमचंद पूर्व हिंदी कहानी, प्रेमचंदयुगीन कहानी, प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी।

स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानी- सचेतन, अकहानी, समांतर, साठोत्तरी कहानी के रूप में विकसित होती रही।

प्रेमचंद पूर्व हिंदी कहानी- उन्नीसवीं शताब्दी के युग को प्रेमचंद पूर्व युग कहा जा सकता है। भारतेन्दु के

आर्विभाव के पूर्व लिखे गए इंशा अल्ला खा की 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल की 'सिंहासन बत्तसी', 'बेताल पचिसी' तथा 'प्रेमसागर', सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान' आदि रचनाएँ मिलती है। सन् 1900 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसमें अनेक कहानीकारों का लेखन प्रकाशित हुआ। सन् 1900 ई. में ही किशोरीलाल गोस्वामी (1865 ई.-1932 ई.) की कहानी 'इंदुमती' प्रकाशित हुई। इस कहानी को कुछ लोग हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। इस युग में जासूसी कहानीकारों में गोपालराम गहमरी (1866 ई.-1946 ई.) का नाम उल्लेखनीय है। उनके द्वारा लिखित कहानी- 'त्रिवेणी', 'सुभद्रा', 'चतुर चंचला' तथा 'डाकू की पहुनाई' आदि है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित कहानी- 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का काँटा', 'उसने कहा था' भी इस युग की उल्लेखनीय कहानी है।

इसी युग में रामचंद्र शुक्ल ने 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई.), गिरिजादत्त वाजपेयी ने 'पंडित और पंडितानी' (1903 ई.), बंग महिला ने 'दुलाई वाली' (1907 ई.), वृन्दावन लाल वर्मा ने 'राखीवंद भाई' (1909 ई.), मैथिली शरण गुप्त ने 'नकली किला' (1909 ई.), जयशंकर प्रसाद ने 'ग्राम' (1911 ई.), राधिकारमण सिंह ने 'कानों में कंगना' (1912 ई.), विश्वम्भर नाथ कौशिक ने 'रक्षावंधन' (1913 ई.) आदि कहानियों की रचना की।

Kप्रगति विवरण

प्रश्न संख्या 1. जनवादी कहानी आंदोलन क्या है?

प्रश्न संख्या 2. अकहानी आंदोलन से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न संख्या 3. कहानी के प्रकार किन-किन आधारों पर विभाजित किए जा सकते हैं?

प्रेमचंदयुगीन हिंदी कहानी- इस युग में कहानी का विकास अत्यंत तीव्र गति से हुआ। इस तीव्र गति का कारण है पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन। भाषा-शैली, विषय की प्रौढ़ता आदि के कारण इस काल को हिंदी कहानी का 'स्वर्णकाल' कहा जाता है। सर्वप्रथम मुंशी प्रेमचंद ने ही कहानी को सामान्य धरातल पर लाकर खड़ा किया था। 'मानसरोवर' इनकी कहानियों का संग्रह है। प्रेमचंद ने लगभग तीन सो कहानियां लिखी। इनकी कहानियाँ घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार की है। 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'दो बेलों की कथा', 'ईदगाह', 'कफन' आदि उनके द्वारा लिखित श्रेष्ठ कहानियाँ है। इस युग में जयशंकर प्रसाद की 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'इंद्रजाल', बद्री नाथ भट्ट सुदर्शन की 'परिवर्तन', 'सुदर्शन सुद्धा', 'तीर्थयात्रा', 'सुदर्शन सुमन', 'पनघट', 'नगीना', विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की 'टाई', 'अशिक्षित का हृदय', 'डुबेजी की चिट्ठियाँ', चतुरसेन शास्त्री की 'रजकण', 'अक्षत', 'ककड़ी की कीमत', 'भिक्षुराज', 'सजनी' आदि श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी गई।

प्रेमचंदोत्तर युग- इस युग में यशपाल उच्च कोटी के प्रगतिवादी कहानीकार है। इनकी कहानियों में पीड़ा, सहानुभूति, मनोविश्लेषण, चुटीला व्यंग्य मिलता हैं। 'अभिशप्त', 'ज्ञानदान', 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'फूलों का कुर्ता', 'उत्तराधिकारी', 'चित्र का शीर्षक' आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इस काल के प्रमुख कहानीकार हैं - रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, अमृत राय, अमृतलाल नागर, रामविलास शर्मा, नेमिचन्द जैन, भगवती शरण वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, जैनेन्द्र, अज्ञेय, सुभद्रा कुमारी चौहान, शिवरानी देवी, उषादेवी मित्रा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, राधिका रमन प्रसाद सिंह आदि हैं। इसी युग में छायावाद के प्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तथा सुमित्रानंदन पंत ने भी कहानियाँ लिखी। हिन्दी कहानी के विकास में इस काल का महत्व बहुत अधिक हैं। इस काल में हिन्दी कहानी अपनी प्रारम्भिक अवस्था को पार करती हुई श्रेष्ठता की ओर लगातार बढ़ रही थी।

2.4 हिन्दी कहानी का औचित्य

हिन्दी कहानी का औचित्य समाज, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में निहित है। अर्थात कहानी का औचित्य उसके मूल अर्थ और प्रभाव में निहित है। आचार्य क्षेमेंद्र के अनुसार जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है उसे उचित कहा जाता है और यही भाव औचित्य है। 19 वीं सदी के अंत में साहित्य के जगत में उभरने वाली यह विधा मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक समस्याओं का चित्रण करती है। हिन्दी कहानी का औचित्य मुख्य रूप से सत्य के उपस्थापन में निहित है। हिन्दी कहानी का औचित्य इस प्रकार है-

भावों और विचारों की अभिव्यक्ति- लेखक कहानी के माध्यम से समाज के समक्ष अपनी संवेदनाओं और विचारों को संक्षेप में और प्रभावशाली तरीके से रखने में सफल होता है।

यथार्थता का चित्रण- कहानी केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है, हिन्दी कहानिकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से अपने अपने समय के समाज की वास्तविक परिस्थितियों और युगीन समस्याओं का चित्रण किया।

समाज और संस्कृति का चित्रण- प्रारंभ में लोककथाओं और पुराणों से प्रेरित हिन्दी कहानी अपने समाज और संस्कृति का भी चित्रण करती है। कहानी समाज की जटिलताओं, सामाजिक सुधार और राजनीतिक चेतना को भी उजागर करती है।

मनोविज्ञान का चित्रण- यह मानव मन के भिन्न-भिन्न द्वन्द्व, आत्मीयता और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को गहराई से चित्रित करती है। कहानियाँ हमें दूसरों के संघर्षों को समझने और उनके प्रति सहानुभूति रखने में मदद करती हैं, जो सामाजिक कौशल के लिए अनिवार्य होता है।

विविध विमर्श- नई कहानी, अकहनी, सचेतन कहानी, समकालीन कहानी, स्त्री विमर्श दलित विमर्श आदि हिन्दी कहानियों में देखी जाती है।

भावनात्मक जुड़ाव- पात्रों का चित्रण गहरा होता है, जिससे पाठक स्वंय को कहानी के साथ जुड़ा हुआ मान्यता है। सभ्यता के विकास में कहानियों का योगदान महत्वपूर्ण है, एक पीढ़ी का ज्ञान कहानियों के जरिए ही अगली पीढ़ी तक पहुँचता है।

उद्देश्यपूर्णता- कहानी में कोई न कोई उद्येश्य निहित होता है, जिसके द्वारा पाठक सचेत होते हैं। कहानियाँ अक्सर नैतिक मूल्यों और जीवन की सच्चाइयों को उजागर करती है, जिससे पाठक के चरित्र निर्माण और समस्या समाधान की क्षमता में वृद्धि होती है।

2.5 हिंदी कहानी की सीमाएँ

कहानी अपनी संरचना और आकार के कारण कुछ सीमाओं से बंधी होती है। कहानी की कुछ मुख्य सीमाएँ इस प्रकार है-

विस्तार का अभाव- कहानी उपन्यास की तरह जीवन का संपूर्ण चित्रण नहीं कर सकती। इसमें किसी एक घटना या भाव का ही चित्रण किया जाता है। यह उपन्यास की तुलना में कम विस्तारित होती है।

सीमित पात्र- शब्द सीमा के कारण कहानी में बहुत अधिक पात्र नहीं रखे जा सकते। कहानी में एक या दो ही मुख्य पात्र होते हैं।

जटिल कथानक की कमी- कहानी में उपन्यास की भाँति जटिल और दीर्घ कथानक का अभाव होता है। कहानी का कथानक सीधा एवं सरल होता है तथा संक्षिप्त होता है।

एकल प्रभाव- कहानी की सबसे बड़ी शर्त यह होती है कि वह पाठक पर एकल प्रभाव छोड़े। अलग-

अलग दिशाओं में भटकने से कहानी का प्रभाव बिखर सकता है। इसका उद्देश्य पाठक पर तत्काल और तीव्र प्रभाव छोड़ना होता है।

समय और स्थान का संकुचन- कहानी अक्सर एक सीमित समय सीमा और विशिष्ट परिवेश के भीतर सिमटी होती है। इसमें एक लम्बी यात्रा दिखाना कठिन होता है। कहानी जीवन की एक झलक मात्र है।

अत: कहा जा सकता है कि कहानी की सीमा उसकी संक्षिप्तता है, जो उसे गहरा तो बनाती है लेकिन विस्तार नहीं देती।

2.6 सारांश

विषय, तत्व, उद्देश्य आदि आधारों पर साहित्य की अन्यतम प्रमुख विधा कहानी को विभिन्न भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे- जासूसी कहानी, धार्मिक कहानी, राजनीतिक कहानी, सामाजिक कहानी, ऐतिहासिक कहानी, घटना प्रधान कहानी, वातावरण प्रधान कहानी, चरित्र प्रधान कहानी, अकहानी, स्त्रीवादी कहानी, दलित कहानी, समकालीन कहानी, जनवादी कहानी आदि। हिंदी कहानी के विकास यात्रा में विविध कालों में विविध नामों से नामांकित कहानियों की भूमिका उल्लेखनीय है। हिंदी कहानी का इतिहास विविध कहानिकारों की रचनाओं से समृद्ध है। हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद का युग महत्वपूर्ण रहा। आधुनिक काल के प्रारम्भ से चलकर आज तक हिन्दी कहानी ने विकास के अनेक सोपान पार किए हैं। प्रारम्भिक हिन्दी कहानी में युगानुरूप अनेक नए तत्वों का सम्मिश्रण होता रहा और कहानी का ढाँचा बदलता रहा। हिन्दी कहानी को जनजीवन की समस्याओं से जोड़ने का सराहनीय प्रयास प्रेमचन्द ने किया। इसीलिए उन्हें कथा सम्राट कहा गया। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी के विकास में अनेक नए मोड़ आए हैं। नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समकालीन कहानी आदि अनेक कथा आन्दोलनों से गुजरते हुए आज की कहानी नई-नई विकास क्रम को पार कर रही है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि निसन्देह हिन्दी कहानी अन्य अनेक नई मंजिलें तय करेंगी।

K 2.7 प्रगति विवरण

प्रश्न 1 का उत्तर- जनवादी कहानी आंदोलन ने मूल रूप से जनवाद को अपना प्रमुख आधार बनाते हुए किसान, मजदूर, दलित आदि शोषित वर्ग के लोगों को अपना केंद्र बनाया। यह हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण आंदोलन है। यह आंदोलन 1977 के आसपास 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना के साथ और अधिक संगठित हुआ। इसे मुंशी प्रेमचंद की उस परंपरा का विस्तार माना जाता है जहाँ उन्होंने साहित्य को ''राजनीति के आगे चलने वाली मशाल'' कहा था। जनवादी कहानी में समाज में व्याप्त वर्ग भेद, सामंतवाद और पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष देखा जाता है। इसने दलित विमर्श, स्त्री मुक्ति और आदिवासी अस्मिताओं के विस्थापन जैसे मुद्दों को अपना विषय बनाया।

प्रश्न 2 का उत्तर- यह हिंदी साहित्य का एक कथा आंदोलन है जो सन 1960 के बाद उभरा। नयी कहानी के विरोध में अकहानी आंदोलन उभरने लगा। गंगाप्रसाद 'विमल' और नामवर सिंह को नयी कहानी आंदोलन के प्रवर्तक माना जाता है। सन् 1960 के बाद नयी कहानी खुद व खुद अपनी रूढ़ियों में फंसती चली गयी, फलस्वरूप अकहानी आंदोलन का जन्म हुआ। इसमें मनुष्य की पीड़ा, कुंठा, व्यर्थताबोध, नगण्यताबोध का यथार्थ चित्रण किया गया है। यद्यपि यह आंदोलन एक छोटे समय तक सीमित रहा, पर अकहानी के शिल्प में कुछ नये प्रयोग किये गये, जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता।

प्रश्न 3 का उत्तर- तत्वों के आधार पर कहानी को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

घटना प्रधान कहानी- किसी भी घटना को केंद्र में रखकर जो कहानी रची जाती है, उसे घटनाप्रधान कहानी कहा जाता है। इस प्रकार की कहानी में घटना को स्पष्ट करने के लिए चरित्र का सहारा लिया जाता है। जैसे- 'कमलेश्वर' की 'दिल्ली में एक मौत'।

वातावरण प्रधान कहानी- इस प्रकार की कहानी में वातावरण को प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया जाता है और वातावरण का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। जैसे- 'अज्ञेय' की 'रोज'।

चरित्र प्रधान कहानी- इस प्रकार की कहानी में किसी एक चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। एक प्रमुख पात्र को केंद्र में रखकर पूरी कहानी रची जाती है। जैसे- 'प्रेमचंद्र' की 'आत्माराम'।

5 2.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

- हिंदी साहित्य का इतिहास- रामचंद्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- हरदयाल और डॉ. नगेंद्र, मयुर पब्लिकेशनस, नयी दिल्ली, 2012।
- हिंदी साहित्य की युग और प्रवृत्तियाँ- शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, 2008।
- भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन- सत्यदेव चौधुरी और शांतिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, 2008।
- हिन्दी का गद्यसाहित्य रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2020।
- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-1)- गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।
- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-2)-गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।
- हिंदी कहानी का इतिहास (भाग-3)- गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017।
- हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृतियाँ- शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2008।

M2.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

1. जनवादी कहानी आंदोलन से क्या अभिप्राय है?
2. अकहानी आंदोलन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ?
3. कहानी का वर्गीकरण किन-किन आधारों पर किया जाता है?
4. घटना प्रधान कहानी की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
5. वातावरण प्रधान कहानी से क्या आशय है?
6. चरित्र प्रधान कहानी की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

1. जनवादी कहानी आंदोलन का विस्तार से वर्णन कीजिए तथा उसके उद्देश्य, विकास और प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।
2. अकहानी आंदोलन के उद्भव, पृष्ठभूमि और उसकी प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. कहानी के वर्गीकरण को विभिन्न आधारों—विषय, तत्व और उद्देश्य—के संदर्भ में विस्तारपूर्वक

स्पष्ट कीजिए।

4. घटना प्रधान, वातावरण प्रधान और चरित्र प्रधान कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए तथा उदाहरणों के माध्यम से उनके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
5. हिंदी कहानी के विभिन्न आंदोलनों—नई कहानी, अकहानी, जनवादी कहानी आदि—का विश्लेषण करते हुए उनके साहित्यिक योगदान को स्पष्ट कीजिए।
6. हिंदी कहानी के विकास क्रम का वर्णन कीजिए तथा यह बताइए कि विभिन्न युगों में कहानी के स्वरूप में किस प्रकार परिवर्तन हुआ।

****

इकाई-3 कहानी के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 भाषा और साहित्य का परस्पर सम्बन्ध: एक विश्लेषण
3.4 कहानी की भाषिक संरचना
3.5 कहानी वस्तु और शिल्प
3.6 कहानी के तत्व
3.7 सारांश
3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
3.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- कहानी की संकल्पना, स्वरूप तथा उसके मूल तत्वों को समझते हुए कहानी की प्रकृति और महत्व के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- कहानी के प्रमुख सिद्धांतों तथा उनके विकास से संबंधित विचारों को जानकर कहानी की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि सेपरिचित होंगे।
- कहानी की संरचना में कथावस्तु, पात्र, परिवेश, संवाद और उद्देश्य की भूमिका को समझकर उनके आपसी संबंधों को जान सकेंगे।
- कहानी की भाषिक संरचना, शैली और अभिव्यक्ति की विशेषताओं का अध्ययन करके कहानी की कलात्मकता को समझ सकेंगे।
- विभिन्न साहित्यकारों द्वारा प्रतिपादित कहानी संबंधी विचारों और दृष्टियों का अध्ययन कर कहानी के विकासक्रम को जान सकेंगे।
- कहानी के सिद्धांतों के आधार पर किसी भी कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में कहानी एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली गद्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। यह विधा जीवन के विविध अनुभवों, भावनाओं, संघर्षों तथा सामाजिक यथार्थ को संक्षिप्त किन्तु सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। कहानी के माध्यम से लेखक मानव जीवन की जटिलताओं, सामाजिक परिस्थितियों और मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। इसी कारण आधुनिक साहित्य में कहानी को एक सशक्त अभिव्यक्ति माध्यम माना जाता है।

कहानी का विकास एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्रारंभिक काल में कथाएँ लोकपरम्परा और मौखिक परम्परा के माध्यम से प्रचलित थीं। समय के साथ-साथ इन कथाओं का स्वरूप विकसित होता गया और आधुनिक काल में कहानी एक स्वतंत्र तथा सुसंगठित साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हुई।

आधुनिक कहानी में जीवन के यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं तथा सामाजिक परिवर्तनों का व्यापक चित्रण मिलता है।

कहानी के स्वरूप और संरचना को समझने के लिए उसके सिद्धांतों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक होता है। कहानी के सिद्धांत हमें यह समझने में सहायता करते हैं कि एक सफल कहानी किन तत्त्वों से निर्मित होती है, उसकी रचना प्रक्रिया किस प्रकार होती है और उसकी प्रभावशीलता किन आधारों पर निर्धारित होती है। कथावस्तु, पात्र, संवाद, परिवेश, उद्देश्य तथा भाषा-शैली जैसे तत्व कहानी की संरचना को निर्धारित करते हैं। इन तत्वों के संतुलित और कलात्मक प्रयोग से ही कहानी प्रभावपूर्ण बनती है।

प्रस्तुत इकाई में कहानी के सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। इसके अंतर्गत कहानी की प्रकृति, उसके प्रमुख तत्वों तथा कहानी के विकास से संबंधित विभिन्न विचारों और दृष्टियों पर विचार किया जाएगा। साथ ही कहानी की रचना प्रक्रिया, उसकी भाषिक संरचना तथा कलात्मक विशेषताओं को भी समझने का प्रयास किया जाएगा। इस प्रकार यह इकाई कहानी की सैद्धांतिक समझ को विकसित करने में सहायक सिद्ध होगी।

3.3 भाषा और साहित्य का परस्पर सम्बन्ध: एक विश्लेषण

मानव सभ्यता के विकास की यात्रा में भाषा और साहित्य दोनों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मनुष्य अन्य जीवों से इसलिए भिन्न है क्योंकि उसके पास विचार करने, अनुभव करने और उन अनुभवों को व्यक्त करने की क्षमता होती है। इस अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा के माध्यम से मनुष्य न केवल अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है बल्कि अपनी भावनाओं, अनुभूतियों और कल्पनाओं को भी अभिव्यक्त करता है। यही भाषा जब संवेदनशीलता, कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता के साथ व्यक्त होती है तब वह साहित्य का रूप धारण कर लेती है।

प्रथम दृष्टि में ऐसा लगता है कि भाषा और साहित्य दो अलग-अलग क्षेत्र हैं। भाषा को सामान्यत: संवाद और सूचना के साधन के रूप में देखा जाता है, जबकि साहित्य को कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम माना जाता है किंतु गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य का अस्तित्व भाषा पर ही आधारित है। साहित्य की रचना भाषा के बिना संभव नहीं है। भाषा ही वह आधार है जिस पर साहित्य की पूरी संरचना खड़ी होती है।

मनुष्य के जीवन में बाहरी गतिविधियों के साथ-साथ आंतरिक अनुभवों की भी एक समृद्ध दुनिया होती है। इन अनुभवों को व्यक्त करने के लिए सामान्य भाषा कई बार पर्याप्त नहीं होती। साहित्यकार अपनी संवेदना, कल्पना और अभिव्यक्ति की क्षमता के माध्यम से भाषा को नया रूप देता है। इस प्रकार साहित्यिक भाषा केवल सूचना देने का साधन नहीं रहती बल्कि वह भावनाओं और विचारों की गहराई को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है। भाषा और साहित्य के इसी परस्पर संबंध को विभिन्न दृष्टियों से समझने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से यह देखा जाएगा कि सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में क्या अंतर है भाषा किस प्रकार मानव अनुभवों को व्यक्त करती है तथा साहित्यिक रचनाओं में भाषा की भूमिका किस प्रकार रचनात्मक रूप ग्रहण करती है।

सामान्य भाषा का स्वरूप और उपयोग

मानव समाज में दैनिक जीवन के व्यवहार को संचालित करने के लिए जिस भाषा का उपयोग किया जाता है उसे सामान्य या व्यवहारिक भाषा कहा जा सकता है। इस भाषा का उद्देश्य मुख्य रूप से स्पष्ट संप्रेषण और सूचना प्रदान करना होता है। सामान्य भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ अपेक्षाकृत निश्चित और स्थिर होते हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिक, तकनीकी तथा शास्त्रीय विषयों में इसी प्रकार की भाषा का उपयोग किया जाता है। विज्ञान और विभिन्न ज्ञान-विषयों में शब्दों के अर्थ का स्पष्ट और निश्चित होना अत्यंत आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए चिकित्सा विज्ञान में दवाइयों की मात्रा, प्रयोगशाला में किसी प्रयोग की अवधि, या गणित में किसी माप का

निर्धारण-इन सभी स्थितियों में भाषा की स्पष्टता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। यदि इन शब्दों के अर्थ में थोड़ी भी अस्पष्टता हो जाए तो परिणाम गलत हो सकते हैं या गंभीर त्रुटियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इसी प्रकार समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान जैसे विषयों में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग किया जाता है। इन विषयों में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ निश्चित होता है और उन्हें उसी अर्थ में समझा जाता है। ऐसी पारिभाषिक शब्दावली के बिना इन विषयों का अध्ययन और अनुसंधान संभव नहीं हो सकता। दैनिक जीवन में भी हम इसी प्रकार की निश्चित अर्थ वाली भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए बाजार में वस्तुओं की खरीद-फरोख्त करते समय हम किलो, लीटर या मीटर जैसी माप इकाइयों का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार किसी स्थान तक पहुँचने के लिए रास्ता बताना, किसी कार्यक्रम का समय निर्धारित करना या किसी कार्य को करने के लिए निर्देश देना-इन सभी परिस्थितियों में भाषा का प्रयोग स्पष्ट और निश्चित अर्थों में किया जाता है। इस प्रकार की भाषा का मुख्य उद्देश्य सूचना देना और संकेत करना होता है। उदाहरण के लिए यदि कहा जाए कि चौराहे पर लाल बत्ती जल रही हैतो इसका अर्थ है कि वाहन को रुकना चाहिए। इसी प्रकार यदि आसमान में घने बादल छा गए हैं तो सामान्यत: यह संकेत होता है कि वर्षा या आँधी आने की संभावना है। ऐसे वाक्यों में शब्दों का अर्थ निश्चित होता है और समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसे समान रूप से समझ सकता है।

भावनात्मक और लचीली भाषा का स्वरूप

मानव जीवन का एक बड़ा हिस्सा ऐसा भी है जिसे केवल निश्चित अर्थों वाली भाषा के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार की भावनाएँ होती हैं, जैसे प्रेम, करुणा, क्रोध, भय, आश्चर्य और उत्साह। इन भावनाओं की तीव्रता और गहराई को किसी निश्चित माप में व्यक्त करना संभव नहीं है। जब मनुष्य अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास करता है तो वह भाषा में कल्पना और प्रतीकों का सहारा लेता है। यही वह स्थिति है जहाँ साहित्यिक भाषा का जन्म होता है। साहित्य में भाषा केवल तथ्य प्रस्तुत करने के लिए नहीं होती, बल्कि वह अनुभवों को जीवंत और प्रभावशाली बनाने का कार्य करती है।

उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति अत्यधिक दु:ख व्यक्त करते हुए कहता है कि उसकी आँखों में समंदर भर आया हैतो उसका अर्थ यह नहीं होता कि वास्तव में उसकी आँखों में समुद्र का पानी है। यह केवल उसके दु:ख की गहराई को व्यक्त करने का एक भावात्मक तरीका है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्न होता है तो कहा जाता है कि उसका दिल बाग-बाग हो गया। यह भी एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य में ऐसे अनेक मुहावरे और रूपक मिलते हैं जो शब्दों के शाब्दिक अर्थ से अलग होते हुए भी गहरे भाव व्यक्त करते हैं। समय के साथ ये अभिव्यक्तियाँ समाज में प्रचलित हो जाती हैं और मुहावरों तथा कहावतों का रूप ले लेती हैं। उदाहरण के लिए ''थोथा चना बाजे घना'' जैसी कहावत किसी व्यक्ति के अहंकार और दिखावे पर व्यंग्य करती है।

भाषा, विचार और मानव चेतना

भाषा का संबंध केवल संवाद से ही नहीं बल्कि मानव चेतना और विचार प्रक्रिया से भी होता है। मनुष्य को अक्सर सामाजिक प्राणी कहा जाता है परंतु यह भी सत्य है कि वह एक भाषिक प्राणी है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य सोचता है, अनुभव करता है और अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है। मनुष्य के जीवन में दो प्रकार की दुनिया होती है — बाहरी और आंतरिक। बाहरी दुनिया में वे वस्तुएँ होती हैं जिन्हें हम देख सकते हैं और जिनका भौतिक अस्तित्व होता है, जैसे पेड़, नदी, पर्वत या घर। भाषा इन वस्तुओं को नाम देकर उन्हें पहचानने योग्य बनाती है।

दूसरी ओर, मनुष्य के भीतर विचारों और भावनाओं की एक दुनिया होती है। इनका कोई भौतिक आकार नहीं होता, फिर भी मनुष्य उन्हें अनुभव करता है। भाषा इन भावनाओं को भी नाम देती है, जैसे प्रेम, घृणा, आनंद

और पीड़ा। इस प्रकार भाषा बाहरी और भीतरी दोनों संसारों को जोड़ने का कार्य करती है। भाषा की इसी विशेषता के कारण मनुष्य अपने अनुभवों को दूसरों के साथ साझा कर सकता है। भाषा के माध्यम से ही वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है और दूसरों के अनुभवों को समझता है।

साहित्यिक भाषा की रचनात्मक विशेषता

साहित्य में प्रयुक्त भाषा सामान्य भाषा से अलग होती है। साहित्यकार सामान्य शब्दों को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि वे पाठक के मन में गहरी संवेदना उत्पन्न कर सकें। साहित्यिक भाषा में कल्पना, प्रतीक, रूपक और व्यंजना का प्रयोग अधिक होता है। साहित्यिक भाषा की विशेषता यह है कि उसमें शब्दों के अनेक स्तरों पर अर्थ छिपे होते हैं। पाठक जब किसी साहित्यिक रचना को पढ़ता है तो वह केवल शब्दों के शाब्दिक अर्थ को ही नहीं समझता, बल्कि उनके भीतर छिपे भाव और संकेतों को भी अनुभव करता है। यही कारण है कि साहित्यिक भाषा पाठक को केवल जानकारी नहीं देती, बल्कि उसे एक भावनात्मक अनुभव भी प्रदान करती है।

गद्य और पद्य का स्वरूप

साहित्य में भाषा दो प्रमुख रूपों में प्रयुक्त होती है- गद्य और पद्य। सामान्यत: कविता को पद्य के रूप में समझा जाता है क्योंकि उसमें छंद और लय का प्रयोग होता है। प्राचीन काल में अनेक वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथ भी पद्य में लिखे जाते थे। आधुनिक युग में ज्ञान के अधिकांश क्षेत्रों में गद्य का उपयोग अधिक होने लगा है। इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति जैसे विषय मुख्यत: गद्य में लिखे जाते हैं। फिर भी साहित्य में गद्य और पद्य दोनों का अपना-अपना महत्व है। गद्य को अक्सर कवियों की कसौटी कहा गया है, क्योंकि इसमें भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना अधिक चुनौतीपूर्ण माना जाता है। यदि कोई लेखक गद्य को भी कलात्मक बना देता हैतो उसकी रचनात्मक क्षमता सिद्ध हो जाती है।

कहानी और उसकी भाषिक संरचना

आधुनिक साहित्य में कहानी एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में विकसित हुई है। कहानी का आधार गद्य होता है और इसमें जीवन की किसी घटना या अनुभव को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता, बल्कि जीवन के किसी गहरे सत्य को उजागर करना भी होता है। कहानी में कथानक, पात्र, वातावरण और उद्देश्य जैसे अनेक तत्व होते हैं। ये सभी तत्व भाषा के माध्यम से ही निर्मित होते हैं। लेखक अपनी कल्पना और अनुभव के आधार पर एक ऐसा संसार रचता है जिसमें पाठक स्वयं को सम्मिलित महसूस करता है। जब पाठक किसी कहानी को पढ़ता है तो वह केवल घटनाओं को नहीं जानता बल्कि पात्रों के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है। यही साहित्यिक भाषा की शक्ति है कि वह पाठक को उस संसार का हिस्सा बना देती है जिसे लेखक ने अपने शब्दों के माध्यम से निर्मित किया है।

भाषा और साहित्य का संबंध अत्यंत गहरा और अविभाज्य है। भाषा के बिना साहित्य का अस्तित्व संभव नहीं है और साहित्य के बिना भाषा की रचनात्मक संभावनाएँ सीमित रह जाती हैं। सामान्य भाषा जहाँ सूचना और संप्रेषण का साधन है वहीं साहित्यिक भाषा भावनाओं, विचारों और अनुभवों की गहराई को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है।

साहित्यकार अपनी कल्पना और संवेदना के माध्यम से सामान्य भाषा को कलात्मक रूप प्रदान करता है। साहित्य मानव जीवन के अनुभवों, संघर्षों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन जाता है। भाषा और साहित्य का यह परस्पर संबंध मानव संस्कृति और सभ्यता को समृद्ध बनाने में निरंतर योगदान देता रहा है।

3.4 कहानी की भाषिक संरचना

कहानी साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है जिसका संबंध केवल घटनाओं के वर्णन से नहीं बल्कि

मानवीय अनुभवों की अभिव्यक्ति से भी होता है। किसी भी कहानी का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि लेखक जीवन के अनुभवों, परिस्थितियों और संवेदनाओं को किस प्रकार भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। कहानी का कथ्य जितना महत्वपूर्ण होता है, उतना ही महत्वपूर्ण उसका भाषिक रूप भी होता है। भाषा के माध्यम से ही कथा की संवेदना पाठक तक पहुँचती है और वही कहानी को प्रभावपूर्ण बनाती है।

भारतीय साहित्यिक परम्परा में कथा का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। प्रारम्भिक समय में कथाएँ मुख्यत: मौखिक परम्परा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहीं। उस समय कथा और काव्य के बीच स्पष्ट भेद नहीं था। कथाएँ प्राय: काव्यात्मक शैली में रची जाती थीं और प्रबन्ध काव्य के रूप में प्रस्तुत होती थीं। जब आधुनिक काल में कहानी एक स्वतंत्र गद्य विधा के रूप में विकसित हुई, तब धीरे-धीरे काव्यात्मक तत्व और कथात्मक तत्व अलग-अलग रूपों में विकसित होने लगे।

मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य की तुलना करने पर यह स्पष्ट दिखाई देता है कि समय के साथ साहित्य की दृष्टि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पहले साहित्य में आदर्शवाद, अध्यात्म और आस्था की प्रधानता थी जबकि आधुनिक युग में सत्य की खोज अनुभव और यथार्थ के आधार पर की जाने लगी। तर्कशीलता, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक यथार्थ की समझ ने साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। इसी परिवर्तन के साथ कहानी की संरचना और भाषा में भी परिवर्तन आया। पहले जब कथा कविता के माध्यम से कही जाती थी, तब उसकी भाषा में काव्यात्मक लय और अलंकारिकता का प्रभाव रहता था। लेकिन जब कहानी गद्य के रूप में विकसित हुई, तब उसकी भाषा अधिक स्वतंत्र और बहुआयामी हो गई।

कहानी की संवेदना के आयाम

कहानी की संवेदना को समझने के लिए आलोचकों ने अनेक प्रकार के वर्गीकरण किए हैं। सामान्यत: कहानी की संवेदना को दो मुख्य धाराओं में विभाजित करके देखा जाता है-

1. यथार्थवादी कहानी

2. काव्यात्मक संवेदना की कहानी

इन्हें कभी-कभी यथार्थवादी और कलावादी कहानी, अथवा सामाजिक और व्यक्तिवादी कहानी के नाम से भी संबोधित किया जाता है किन्तु यह वर्गीकरण पूरी तरह सटीक नहीं माना जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है मानो यथार्थवादी कहानी में कला का अभाव हो और कलात्मक कहानी का वास्तविक जीवन से कोई संबंध न हो। वस्तुत: ऐसा नहीं है। मनुष्य स्वयं वह माध्यम है जिसके द्वारा जीवन की वास्तविकता और संवेदना दोनों अभिव्यक्त होती हैं।

मनुष्य का अस्तित्व समाज से जुड़ा हुआ है। उसकी अनुभूतियाँ, अनुभव और विचार उसी सामाजिक परिवेश से निर्मित होते हैं जिसमें वह जीता है। इसलिए कहानी में व्यक्त संवेदना और यथार्थ एक दूसरे से अलग नहीं बल्कि परस्पर सम्बद्ध होते हैं।

यथार्थवाद साहित्य में जीवन को देखने और प्रस्तुत करने की एक विशेष दृष्टि है। लेकिन जीवन का यथार्थ केवल एक ही रूप में सीमित नहीं होता। वह अनेक स्तरों पर प्रकट होता है।

यथार्थ के स्तर: सतह और गहराई

जीवन के यथार्थ को सामान्यत: दो स्तरों पर समझा जा सकता है-

1. सतही यथार्थ

2. गहन यथार्थ

सतही यथार्थ वह है जो बाहरी घटनाओं और परिस्थितियों में दिखाई देता है। इसमें सामाजिक जीवन, परिवेश, घटनाएँ और व्यवहार प्रमुख होते हैं। इस प्रकार की कहानियों में कथानक, घटनाएँ और परिस्थितियाँ

महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दूसरी ओर गहन यथार्थ का संबंध मनुष्य के आंतरिक संसार से होता है। इसमें व्यक्ति के मनोभाव, मानसिक संघर्ष, संवेदनाएँ और अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं। ऐसी कहानियाँ बाहरी घटनाओं की अपेक्षा आंतरिक अनुभवों की गहराई को अधिक महत्व देती हैं।

गहराई की संवेदना को व्यक्त करने के लिए भाषा का विशेष महत्व होता है। क्योंकि यहाँ कथ्य पहले से तैयार कोई वस्तु नहीं होता जिसे केवल संकेत करके बताया जा सके। लेखक को उसे भाषा के माध्यम से ही निर्मित करना पड़ता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में शब्दों का चयन, वाक्य विन्यास और प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। भाषा के भीतर एक प्रकार का तनाव और नाटकीयता उत्पन्न होती है जो संवेदना को प्रभावशाली बनाती है।

सतह और गहराई का अनुभव

सतही संसार हमारे अनुभव का परिचित संसार होता है। जब कहानी इसी संसार का चित्रण करती है तो पाठक को ऐसा लगता है कि लेखक वही बातें कह रहा है जिन्हें वह स्वयं भी अनुभव करता है। इसके विपरीत जब कहानी गहरे मनोवैज्ञानिक या भावनात्मक अनुभवों को प्रस्तुत करती हैतब वह पाठक को एक नए अनुभव से परिचित कराती है। ऐसी कहानियाँ अक्सर पाठक को उसके अपने ही मन की उन परतों से परिचित कराती हैं जिनसे वह पहले अनजान था। यही कारण है कि प्रभावशाली कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं होतीं, बल्कि वे पाठक के अनुभव संसार को भी विस्तार देती हैं।

काव्यात्मक संवेदना और कहानी

हिन्दी साहित्य में अनेक ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने कविता और कहानी दोनों विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके लेखन में स्वाभाविक रूप से काव्यात्मक संवेदना का प्रभाव दिखाई देता है। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसे कवि-कहानीकारों ने कहानी को एक विशेष काव्यात्मक स्वर प्रदान किया। आगे चलकर अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कुँवर नारायण जैसे लेखकों ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लेखक भी हैं जो मुख्यत: कवि नहीं थे, फिर भी उनकी कहानियों में भाषा का एक विशिष्ट काव्यात्मक रूप दिखाई देता है। निर्मल वर्मा, रामकुमार और उदय प्रकाश जैसे लेखकों की कहानियों में यह विशेषता स्पष्ट दिखाई देती है।

भाषा की कार्यप्रणालियाँ

कहानी की भाषा को समझने के लिए भाषा की दो प्रमुख कार्यप्रणालियों को समझना आवश्यक है-

1. अभिधात्मक भाषा
2. व्यंजना प्रधान भाषा

अभिधात्मक भाषा वह है जिसमें शब्द अपने सीधे और निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार की भाषा में कथन स्पष्ट और सूचनात्मक होता है। इसके विपरीत व्यंजना प्रधान भाषा में शब्द अपने प्रत्यक्ष अर्थ से आगे बढ़कर संकेतात्मक अर्थ व्यक्त करते हैं। इस भाषा के माध्यम से लेखक भावनाओं, मनोभावों और सूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करता है।

सामान्यत: सतही यथार्थ पर आधारित कहानियाँ अभिधात्मक भाषा का अधिक प्रयोग करती हैं जबकि गहन संवेदनात्मक कहानियों में व्यंजना प्रधान भाषा का प्रयोग अधिक दिखाई देता है।

सर्जनात्मक भाषा के गुण

साहित्यिक भाषा के दो प्रमुख गुण माने जाते हैं-

1. काव्यात्मकता
2. नाटकीयता

जब कहानी में भाषा भावात्मक और लयात्मक रूप ग्रहण करती है तो उसमें काव्यात्मकता दिखाई देती है। इसके विपरीत जब घटनाएँ और संवाद कथा को आगे बढ़ाते हैं, तब भाषा में नाटकीयता उत्पन्न होती है। यथार्थवादी कहानियों में सामान्यत: नाटकीयता का प्रभाव अधिक होता है, जबकि गहन संवेदना वाली कहानियों में काव्यात्मकता प्रमुख रहती है किन्तु आधुनिक कहानी में इन दोनों तत्वों का समन्वय देखने को मिलता है।

wअपनी प्रगति जांचे

प्रश्न 1. हिंदी साहित्य में कहानी को महत्वपूर्ण गद्य विधा क्यों माना जाता है?

प्रश्न 2. सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में क्या अंतर है?

प्रश्न 3. कहानी की संरचना किन प्रमुख तत्त्वों से निर्मित होती है?

प्रश्न 4. यथार्थ के दो स्तर कौन-से माने जाते हैं?

प्रश्न 5. अभिधात्मक भाषा और व्यंजना प्रधान भाषा में क्या अंतर है?

प्रश्न 6. साहित्यिक भाषा के दो प्रमुख गुण कौन-से हैं?

कहानी की भाषिक विधियाँ

भाषा का सामाजिक और व्यक्तिगत स्वरूप

मनुष्य भाषा को समाज से प्राप्त करता है, लेकिन उसे रचनात्मक रूप देना उसकी व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर करता है। एक रचनाकार अपने अनुभव, कल्पना और संवेदनशीलता के आधार पर भाषा को नया रूप प्रदान करता है। जब यह भाषा साहित्य के रूप में व्यक्त होती है तो वह समय और स्थान की सीमाओं से ऊपर उठकर स्थायी महत्व प्राप्त कर लेती है। वाचिक परम्परा में भाषा स्मृति के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती रही, जबकि लिखित परम्परा में वह लिखित और मुद्रित रूप में संरक्षित होती रही। इस प्रकार साहित्य में भाषा का एक विशाल भंडार निर्मित होता रहा है। प्रत्येक नया लेखक इस परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करता है और अपनी सृजनात्मकता के द्वारा उसमें नया योगदान जोड़ता है।

कहानी की प्रमुख भाषिक विधियाँ

1. इतिवृत्त

इतिवृत्त का अर्थ है घटनाओं का सीधा और स्पष्ट विवरण। इसमें भाषा सरल और सूचनात्मक होती है। यह कहानी का आधारभूत ढाँचा तैयार करती है। इस प्रकार की भाषा में कथन और कथ्य के बीच दूरी बहुत कम होती है। पाठक को घटनाओं की जानकारी सीधे-सीधे मिलती है। इसी के माध्यम से कहानी में घटनाओं का क्रम, पात्रों का परिचय और परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है।

2. विवरण और विस्तार

कहानी में वातावरण और अनुभव को जीवंत बनाने के लिए लेखक अनेक छोटे-बड़े विवरणों का सहारा लेता है। ये विवरण कहानी के संसार को मूर्त रूप देते हैं। इनके माध्यम से पाठक कहानी के वातावरण, पात्रों और परिस्थितियों को अनुभव कर पाता है। कहानी का कथानक केवल घटनाओं का ढाँचा होता है जबकि विवरण और विस्तार उसे जीवंत अनुभव में बदल देते हैं।

3. विहंगम और केन्द्रिक संयोजन

कहानी में विवरणों के संयोजन की दो महत्वपूर्ण विधियाँ मानी जाती हैं-

(क) विहंगम दृष्टि

इसमें लेखक पूरे दृश्य को व्यापक रूप में प्रस्तुत करता है। जैसे उड़ते हुए पक्षी की दृष्टि से देखा गया

दृश्य। इसमें घटनाएँ और वातावरण एक साथ तेजी से प्रस्तुत होते हैं।

(ख) केन्द्रिक दृष्टि

इस विधि में लेखक किसी विशेष पात्र, घटना या स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करता है। पूरी कथा धीरे-धीरे एक केन्द्र की ओर सिमट जाती है और उस विशेष क्षण या पात्र को प्रमुखता मिलती है।

4. रूपकीय संक्षेपण

कई बार कहानी में ऐसे क्षण आते हैं जहाँ विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ लेखक रूपक, बिम्ब या प्रतीक के माध्यम से गहरी अनुभूति व्यक्त करता है। इसे रूपकीय संक्षेपण कहा जाता है। इसमें थोड़े शब्दों में गहरे अर्थ व्यक्त किए जाते हैं। कभी-कभी पूरी कहानी ही किसी बड़े यथार्थ का प्रतीक बन जाती है। ऐसी कहानियाँ अपने छोटे कथानक के माध्यम से व्यापक जीवन सत्य को व्यक्त करती हैं।

कहानी की संवेदनात्मक संरचना और भाषिक संरचना एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी होती हैं। कहानी का प्रभाव केवल उसके कथानक पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि लेखक अपनी संवेदना को किस प्रकार भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। भाषा के विविध रूप—अभिधा, व्यंजना, विवरण, रूपक, विहंगम और केन्द्रिक संयोजन-कहानी की संरचना को समृद्ध बनाते हैं। इन्हीं के माध्यम से कहानी केवल घटनाओं का विवरण नहीं रह जाती, बल्कि जीवन के गहरे अनुभवों की अभिव्यक्ति बन जाती है। इसी कारण कहानी की भाषा का अध्ययन साहित्यिक आलोचना का एक महत्वपूर्ण विषय माना जाता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

कहानी और उपन्यास में अंतर

1. आकार और विस्तार

कहानी आकार में छोटी होती है और इसमें जीवन की किसी एक घटना, स्थिति या भाव का संक्षिप्त रूप में चित्रण किया जाता है। इसके विपरीत उपन्यास का आकार बड़ा होता है और उसमें जीवन के व्यापक पक्षों तथा अनेक घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है।

2. कथावस्तु

कहानी की कथावस्तु सामान्यत: एक ही घटना या प्रसंग के इर्द-गिर्द केंद्रित रहती है। उपन्यास में कथावस्तु विस्तृत होती है और उसमें कई घटनाएँ तथा उपकथाएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं।

3. पात्रों की संख्या

कहानी में पात्रों की संख्या सीमित होती है और उनका चित्रण भी संक्षिप्त रूप में किया जाता है। जबकि उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है और उनके व्यक्तित्व तथा मनोवृत्तियों का विस्तृत विकास किया जाता है।

4. समय और स्थान का विस्तार

कहानी में समय और स्थान का दायरा सीमित रहता है। इसके विपरीत उपन्यास में समय और स्थान का विस्तार अधिक होता है, जिससे सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का व्यापक चित्रण संभव हो पाता है।

5. उद्देश्य और प्रभाव

कहानी का उद्देश्य किसी एक प्रभाव या अनुभूति को तीव्रता से प्रस्तुत करना होता है। इसलिए उसमें संक्षिप्तता और एकता का विशेष महत्व होता है। उपन्यास में उद्देश्य व्यापक होता है और उसमें

जीवन के अनेक पहलुओं का क्रमिक और विस्तृत चित्रण किया जाता है।

6. **शैली और प्रस्तुति**

कहानी की भाषा और शैली प्राय: सघन तथा प्रभावपूर्ण होती है, क्योंकि सीमित शब्दों में गहरा प्रभाव उत्पन्न करना होता है। उपन्यास की भाषा अपेक्षाकृत विस्तृत और वर्णनात्मक होती है, जिसमें घटनाओं और पात्रों का विस्तारपूर्वक चित्रण किया जाता है।

3.5 कहानी वस्तु और शिल्प

कहानी साहित्य की अत्यंत प्राचीन और लोकप्रिय विधाओं में से एक है। मानव समाज के विकास के साथ-साथ कथा परंपरा भी निरंतर विकसित होती रही है। मनुष्य स्वभाव से अनुभवों को साझा करने वाला प्राणी है। वह अपने जीवन में घटित घटनाओं, अनुभूतियों और कल्पनाओं को दूसरों तक पहुँचाने की इच्छा रखता है। यही प्रवृत्ति आगे चलकर कथा और कहानी के रूप में विकसित हुई। यदि हम मानव सभ्यता के इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि कहानी की परंपरा बहुत पुरानी है। जब मनुष्य ने भाषा का विकास किया, तब से ही उसने अपने अनुभवों और घटनाओं को कथा के रूप में व्यक्त करना आरंभ कर दिया। इस दृष्टि से कहानी मानव स्मृति और सांस्कृतिक परंपरा का अभिन्न अंग रही है।

भारतीय साहित्य में कहानी की समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है। प्राचीन ग्रंथों, लोककथाओं और धार्मिक आख्यानों में अनेक ऐसी कथाएँ मिलती हैं जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं था, बल्कि शिक्षा, नीति और जीवन-दर्शन का प्रसार भी था। उपनिषदों की शिक्षाप्रद कथाएँ, पंचतंत्र और हितोपदेश की नीति-कथाएँ तथा जातक कथाएँ इस परंपरा के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इन कथाओं के माध्यम से समाज में नैतिक मूल्यों, व्यवहारिक ज्ञान और जीवन की समझ विकसित करने का प्रयास किया जाता था।

समय के साथ-साथ कहानी का स्वरूप भी बदलता गया। आधुनिक युग में कहानी एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में विकसित हुई, जिसमें जीवन की जटिलताओं, सामाजिक समस्याओं और मानवीय संबंधों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक कहानी में लेखक केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह समाज और जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने का प्रयास करता है। किसी भी कहानी के निर्माण में दो तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं-वस्तु और शिल्प। वस्तु कहानी की विषयवस्तु या कथ्य को व्यक्त करती है, जबकि शिल्प उस कलात्मक संरचना को दर्शाता है जिसके माध्यम से कहानी प्रस्तुत की जाती है। इन दोनों तत्वों के समुचित संतुलन से ही एक प्रभावशाली और सार्थक कहानी का निर्माण संभव होता है।

कहानी का स्वरूप और उसकी विशेषताएँ

कहानी साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी घटना, अनुभव या स्थिति को संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कहानी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी घटनात्मकता है। अर्थात् कहानी का आधार किसी न किसी घटना या अनुभव पर आधारित होता है। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन में घटित किसी घटना का वर्णन इस प्रकार करता है कि उसमें क्रमबद्धता और रोचकता बनी रहती है, तब वह एक कहानी का रूप ले लेता है। सामान्यत: कहानी में एक आरंभ होता है जहाँ परिस्थिति या घटना का परिचय दिया जाता है। इसके बाद घटनाओं का विकास होता है और अंत में कहानी किसी परिणाम या निष्कर्ष तक पहुँचती है।

कहानी की संरचना को सामान्यत: तीन भागों में समझा जा सकता है-

1. प्रारंभिक स्थिति-जहाँ पात्रों, वातावरण और परिस्थिति का परिचय दिया जाता है।
2. संघर्ष या विकास-जहाँ घटनाएँ आगे बढ़ती हैं और किसी समस्या या टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है।

3. परिणाम या समाधान–जहाँ कहानी का निष्कर्ष सामने आता है।

इस प्रकार कहानी का स्वरूप घटनाओं के क्रमिक विकास पर आधारित होता है।

कहानी में रोचकता का महत्व

कहानी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण गुण उसकी रोचकता है। रोचकता वह तत्व है जो पाठक या श्रोता को कहानी के साथ जोड़े रखता है। यदि कहानी में रोचकता का अभाव हो तो पाठक उसमें रुचि नहीं ले पाता।

रोचकता कई प्रकार से उत्पन्न होती है–

- घटनाओं के क्रम से
- पात्रों की गतिविधियों से
- संवादों से
- वातावरण के चित्रण से

जब कहानी में घटनाओं का ऐसा क्रम प्रस्तुत किया जाता है जो पाठक की जिज्ञासा को लगातार बनाए रखे, तब कहानी प्रभावी बन जाती है। कहानी पढ़ते समय पाठक कई बार स्वयं को उस कथा–जगत का हिस्सा महसूस करने लगता है। वह पात्रों की स्थिति को समझने लगता है और उनके सुख–दुख से भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है। यही स्थिति कहानी को जीवंत और प्रभावशाली बनाती है।

कहानी की सामाजिक भूमिका

कहानी केवल मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि यह समाज और जीवन को समझने का माध्यम भी है। लेखक अपने अनुभवों और संवेदनाओं के आधार पर समाज की विभिन्न परिस्थितियों को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करता है। कई बार कहानी समाज की समस्याओं, असमानताओं और विसंगतियों को उजागर करने का कार्य करती है। कहानी पाठक को केवल आनंद ही नहीं देती बल्कि उसे सोचने और विचार करने के लिए भी प्रेरित करती है। भारतीय कथा परंपरा में कई ऐसी कहानियाँ मिलती हैं जिनका उद्देश्य समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना था। पंचतंत्र की कहानियाँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जहाँ मनोरंजन के साथ–साथ व्यवहारिक ज्ञान और नीति का संदेश भी दिया गया है।

कहानी में वस्तु का स्वरूप

किसी भी कहानी का मूल आधार उसकी वस्तु होती है। वस्तु से आशय उस विषय या कथ्य से है जिसके आधार पर पूरी कहानी का निर्माण किया जाता है। इसमें कहानी की घटनाएँ, पात्रों की परिस्थितियाँ और लेखक की दृष्टि शामिल होती है।

1. **वस्तु का स्त्रोत:** कहानी की विषयवस्तु सामान्यत: जीवन और समाज से प्राप्त होती है। लेखक अपने आसपास के वातावरण, सामाजिक परिस्थितियों और व्यक्तिगत अनुभवों से प्रेरणा लेकर कहानी की वस्तु का चयन करता है। उदाहरण के रूप में निम्न विषय कहानी की वस्तु बन सकते हैं—
    - सामाजिक असमानता
    - आर्थिक संघर्ष
    - पारिवारिक संबंध
    - नैतिक द्वंद्व
    - मानवीय संवेदनाएँ

इन विषयों के माध्यम से लेखक जीवन की विभिन्न समस्याओं और परिस्थितियों को कहानी में प्रस्तुत करता है।

2. **वस्तु और यथार्थ:** आधुनिक कहानी में यथार्थ का महत्व बढ़ गया है। लेखक अपने समय के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को कहानी की विषयवस्तु बनाता है। इससे कहानी अधिक वास्तविक और प्रभावशाली बन जाती है। जब कहानी की विषयवस्तु जीवन के वास्तविक अनुभवों से जुड़ी होती है, तब पाठक उससे आसानी से जुड़ पाता है। यही कारण है कि यथार्थवादी कहानियाँ पाठकों को अधिक प्रभावित करती हैं।
3. **वस्तु का विकास:** समाज के बदलते स्वरूप के साथ कहानी की विषयवस्तु भी बदलती रहती है। प्राचीन काल में धार्मिक और नैतिक विषयों पर आधारित कथाएँ अधिक प्रचलित थीं, जबकि आधुनिक काल में सामाजिक समस्याओं और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को कहानी की वस्तु बनाया जाता है। इस प्रकार कहानी की वस्तु समय और समाज के अनुसार निरंतर विकसित होती रहती है।

कहानी में शिल्प का महत्व

कहानी के निर्माण में शिल्प का उतना ही महत्व है जितना उसकी वस्तु का। शिल्प से आशय उस कलात्मक ढंग से है जिसके माध्यम से लेखक कहानी को प्रस्तुत करता है। यदि कहानी की विषयवस्तु उसकी आत्मा है, तो शिल्प उसका शरीर कहा जा सकता है।

1. **कथानक:** कथानक कहानी के घटनाक्रम को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करता है। यह कहानी की रीढ़ की तरह होता है। कथानक के माध्यम से घटनाएँ क्रमबद्ध रूप में आगे बढ़ती हैं और कहानी का विकास होता है। एक प्रभावशाली कथानक में निम्न गुण होने चाहिए-
   - तार्किकता
   - क्रमबद्धता
   - रोचकता
2. **पात्र-निर्माण:** कहानी के शिल्प का एक महत्वपूर्ण तत्व पात्र होते हैं। पात्र ही कहानी की घटनाओं को आगे बढ़ाते हैं और उसके विचारों को व्यक्त करते हैं। एक सफल कहानी में पात्रों का चित्रण ऐसा होना चाहिए कि वे वास्तविक और जीवंत प्रतीत हों। पाठक को उनके व्यवहार और भावनाओं में सच्चाई का अनुभव होना चाहिए।
3. **संवाद:** संवाद कहानी को जीवंत बनाने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। संवादों के माध्यम से पात्रों के विचार, भावनाएँ और मनोवैज्ञानिक स्थिति स्पष्ट होती है। सही स्थान पर प्रयुक्त संवाद कहानी की गति को बनाए रखते हैं और पाठक की रुचि को बढ़ाते हैं।
4. **भाषा और शैली:** कहानी की भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रभावशाली होनी चाहिए। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा लेखक अपनी संवेदनाओं और विचारों को पाठक तक पहुँचाता है। शैली भी कहानी के प्रभाव को प्रभावित करती है। कहीं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है, तो कहीं संवादात्मक शैली का।
5. **वातावरण का चित्रण:** कहानी में वातावरण का चित्रण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वातावरण के माध्यम से कहानी की परिस्थितियाँ स्पष्ट होती हैं और पाठक उस दृश्य की कल्पना कर सकता है।
6. **आरंभ और अंत:** कहानी का आरंभ आकर्षक होना चाहिए ताकि पाठक की जिज्ञासा जागृत हो सके। इसी प्रकार कहानी का अंत भी प्रभावशाली होना चाहिए ताकि उसका प्रभाव लंबे समय तक बना रहे।

वस्तु और शिल्प का संबंध

कहानी की सफलता वस्तु और शिल्प के संतुलन पर निर्भर करती है। यदि कहानी की विषयवस्तु महत्वपूर्ण है लेकिन उसका प्रस्तुतीकरण कमजोर है तो कहानी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाएगी। इसी प्रकार यदि

शिल्प आकर्षक है लेकिन विषयवस्तु में गहराई नहीं है, तो कहानी केवल बाहरी रूप तक सीमित रह जाएगी। इसलिए एक सफल कहानी के लिए आवश्यक है कि लेखक विषयवस्तु और शिल्प दोनों का संतुलित उपयोग करे।

आधुनिक हिंदी कहानी में वस्तु और शिल्प दोनों के स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक कहानीकारों ने समाज की वास्तविक समस्याओं को अपनी कहानियों का विषय बनाया और नई शिल्पगत तकनीकों का प्रयोग किया। बीसवीं शताब्दी में हिंदी कहानी ने सामाजिक यथार्थ, आर्थिक असमानता, स्त्री-स्थिति और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को प्रमुखता से चित्रित किया। साथ ही शिल्प के स्तर पर भी कई प्रयोग किए गए। कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, प्रतीकात्मकता और अंतर्मन की अभिव्यक्ति जैसी तकनीकों का प्रयोग बढ़ने लगा।

समग्र रूप से देखा जाए तो कहानी साहित्य की एक अत्यंत प्रभावशाली विधा है। यह संक्षिप्त होते हुए भी जीवन की गहन सच्चाइयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। कहानी के निर्माण में वस्तु और शिल्प दोनों का समान महत्व है। वस्तु कहानी को आधार प्रदान करती है, जबकि शिल्प उसे कलात्मक रूप देता है। जब लेखक जीवन के यथार्थ से जुड़ी विषयवस्तु का चयन करता है और उसे प्रभावशाली शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत करता है, तब कहानी पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। कहा जा सकता है कि वस्तु और शिल्प का संतुलित समन्वय ही किसी कहानी को सफल और सार्थक बनाता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

- साहित्य की सभी विधाओं में कहानी सबसे प्राचीन और लोकप्रिय विधा है। यह साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसका प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भिक विकास के साथ ही माना जाता है।
- 'कहानी' शब्द अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' (Short Story) का समानार्थी है ।'कहानी' का शाब्दिक अर्थ है – कहना।
- कहानी साहित्य की एक ऐसी विधा है जो जीवन के किसी एक खंड, घटना या संवेदना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है।
- पाश्चात्य और भारतीय साहित्य के विविध विद्वानों ने कहानी को अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है।
- कहानी का विस्तार आख्यानात्मक शैली में होता है।

3.6 कहानी के तत्व

कहानी साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा है। इसमें मानव जीवन की घटनाओं, अनुभवों, भावनाओं और परिस्थितियों को संक्षिप्त तथा प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कहानी की रचना केवल किसी घटना का वर्णन भर नहीं होती, बल्कि उसमें अनेक ऐसे तत्व निहित होते हैं जिनके संतुलित समन्वय से एक प्रभावशाली कथा का निर्माण संभव होता है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक कहानी कुछ निश्चित आधारभूत तत्त्वों पर आधारित होती है। ये तत्त्व कहानी की संरचना को व्यवस्थित करते हैं और उसके कलात्मक रूप को निर्धारित करते हैं। यह संभव है कि किसी कहानी में इनमें से कोई एक तत्व विशेष रूप से प्रमुख रूप में दिखाई दे, जबकि अन्य तत्व अपेक्षाकृत कम उभरे हुए हों किंतु यह असंभव है कि इन तत्त्वों के अभाव में कहानी की रचना हो सके।

साहित्यिक आलोचना की भाषा में इन्हीं आधारभूत घटकों को कहानी के तत्त्व कहा जाता है। सामान्यत: कहानी के छह प्रमुख तत्व माने जाते हैं- कथावस्तु, पात्र या चरित्र-चित्रण, देश-काल या परिवेश, संवाद और

भाषा, शैली तथा उद्देश्य। हालाँकि विश्लेषण की सुविधा के लिए इन तत्त्वों को कुछ परिवर्तित रूप में भी देखा जा सकता है। संवाद, भाषा और शैली—ये तीनों आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, इसलिए इन्हें एक ही व्यापक शीर्षक 'संरचना शिल्प' के अंतर्गत समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'उद्देश्य' शब्द के स्थान पर 'प्रतिपाद्य' शब्द का प्रयोग करना अधिक सार्थक माना गया है, क्योंकि इसके अंतर्गत केवल उद्देश्य ही नहीं बल्कि कहानी की रचनात्मक परिणति तथा लेखक की दृष्टि भी सम्मिलित हो जाती है। इस प्रकार कहानी के तत्त्वों को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है-

1. कथावस्तु
2. चरित्र-चित्रण
3. परिवेश
4. संरचना-शिल्प
5. प्रतिपाद्य

1. कथावस्तुः

कथावस्तु से आशय उस मूल घटना या प्रसंग से है जिसके आधार पर पूरी कहानी का निर्माण किया जाता है। कहानी का केंद्र बिंदु यही होता है। यह घटना सामान्यत: विस्तृत न होकर संक्षिप्त और सीमित होती है। कहानी की विशेषता यही है कि वह जीवन की किसी एक स्थिति, अनुभव या प्रसंग को लेकर आगे बढ़ती है। उदाहरण के लिए कई प्रसिद्ध कहानियों में घटनाएँ अत्यंत साधारण होती हैं फिर भी वे गहरे प्रभाव उत्पन्न करती हैं। कभी-कभी कहानी में कोई बड़ी या असाधारण घटना नहीं होती, बल्कि सामान्य जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ ही कथावस्तु का आधार बनती हैं। कई बार तो केवल पात्रों के मानसिक संघर्ष या उनके अंतर्मन के द्वंद्व को ही कहानी का विषय बना लिया जाता है। ऐसी कहानियों में बाहरी घटनाएँ कम और आंतरिक अनुभूतियाँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं।

कथावस्तु की विशेषताएँ

एक प्रभावी कहानी के लिए कथावस्तु का सुसंगठित और तार्किक होना आवश्यक है। कहानी में अनावश्यक प्रसंगों या घटनाओं का समावेश नहीं होना चाहिए। जो भी घटना या परिस्थिति प्रस्तुत की जाए, उसका संबंध कहानी के मूल भाव से होना चाहिए। अच्छी कथावस्तु में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं-

- घटनाओं का परस्पर संबंध होना
- कथा का क्रमबद्ध विकास
- कथा के मूल भाव को स्पष्ट करने वाली परिस्थितियाँ

इसके अतिरिक्त कथावस्तु का आधार वास्तविक जीवन होना चाहिए। आधुनिक कहानी में कल्पनात्मक और अविश्वसनीय घटनाओं को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाता। आज के कहानीकार जीवन की वास्तविक परिस्थितियों और सामाजिक अनुभवों को अधिक महत्व देते हैं। हालाँकि रचनात्मक प्रयोग के रूप में काल्पनिक या प्रतीकात्मक घटनाओं का उपयोग किया जा सकता है लेकिन उनके भीतर भी जीवन का कोई न कोई सत्य अवश्य निहित होना चाहिए।

Kप्रगति विवरण

प्रश्न संख्या 1. जनवादी कहानी आंदोलन क्या है?

प्रश्न संख्या 2. अकहानी आंदोलन से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न संख्या 3. कहानी के प्रकार किन-किन आधारों पर विभाजित किए जा सकते हैं?

कथावस्तु का विकास

प्रारंभिक कहानियों में घटनाओं का क्रम सामान्यत: सीधा और स्पष्ट होता था-पहले घटना का परिचय, फिर उसका विकास और अंत में उसका समाधान परंतु आधुनिक कहानी में इस पारंपरिक ढाँचे को अनिवार्य नहीं माना जाता। अब कहानी का आरंभ कई प्रकार से हो सकता है। उदाहरण के लिए-

- दो पात्रों के बीच संवाद से
- किसी पात्र के मानसिक द्वंद्व से
- पत्र या डायरी के रूप में
- किसी स्मृति या पूर्व घटना के संकेत से

आज की कहानियों में यह भी आवश्यक नहीं कि उनका कोई निश्चित या स्पष्ट अंत हो। कई बार कहानी उस बिंदु पर समाप्त हो जाती है जहाँ उसकी भावनात्मक तीव्रता चरम पर पहुँच जाती है। फिर भी उसका प्रभाव पाठक के मन में लंबे समय तक बना रहता है।

2. चरित्र-चित्रण:

कहानी में पात्रों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वही कथा की घटनाओं को जीवंत बनाते हैं। उपन्यास की तुलना में कहानी में पात्रों की संख्या सीमित होती है। कई बार तो पूरी कहानी केवल एक या दो पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। अधिकांश कहानियों में एक केंद्रीय पात्र होता है जिसके अनुभवों या जीवन स्थितियों के माध्यम से कहानी का मूल भाव व्यक्त किया जाता है। विशेष रूप से चरित्र-प्रधान कहानियों में एक ही पात्र कथा का केंद्र बन जाता है।

पात्रों का स्वरूप

कहानी में पात्रों के विकास के अवसर उपन्यास की अपेक्षा कम होते हैं। इसलिए कहानीकार को बहुत संक्षिप्त संकेतों के माध्यम से ही पात्रों का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करना पड़ता है। एक कुशल लेखक अपने पात्रों के व्यक्तित्व के कई पहलुओं को थोड़े से शब्दों में ही उजागर कर देता है। पात्रों के व्यवहार, विचार और प्रतिक्रियाओं के माध्यम से उनके स्वभाव का आभास हो जाता है।

चरित्र की स्वाभाविकता

आधुनिक कहानी में पात्रों का स्वाभाविक और वास्तविक होना आवश्यक है। आज के कहानीकार ऐसे पात्रों की रचना नहीं करते जो पूरी तरह काल्पनिक या अविश्वसनीय हों। पात्रों में जीवन की सच्चाई झलकनी चाहिए। वे समाज के किसी वर्ग, परिस्थिति या मानसिक स्थिति का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। लेकिन ऐसा नहीं लगना चाहिए कि वे केवल लेखक की कल्पना के आधार पर गढ़े गए हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि लेखक मानव स्वभाव का गहन अध्ययन करे। तभी वह पात्रों के व्यवहार और मनोविज्ञान को सही रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

चरित्र-चित्रण की विधियाँ

कहानी में पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए लेखक विभिन्न तरीकों का उपयोग करता है-

- पात्रों के कार्यों और व्यवहार के माध्यम से
- अन्य पात्रों की टिप्पणियों द्वारा
- संवादों के माध्यम से
- पात्रों के अंतर्मन के विचारों के माध्यम से

कभी-कभी लेखक स्वयं भी पात्र के चरित्र का वर्णन करता है, लेकिन यह विधि बहुत कम प्रयोग की

जाती है।

3. परिवेश:

'कहानी के संदर्भ में परिवेश से तात्पर्य उस स्थान और समय से है जिसमें कहानी की घटनाएँ घटित होती हैं। इसमें उस समाज की परिस्थितियाँ, वातावरण और जीवन शैली भी शामिल होती है। कहानी में विश्वसनीयता लाने के लिए यह आवश्यक है कि घटनाओं को उनके उपयुक्त परिवेश में प्रस्तुत किया जाए। उदाहरण के लिए यदि कहानी ग्रामीण जीवन से संबंधित है, तो उसमें गाँव के वातावरण, रहन-सहन और सामाजिक व्यवस्था का चित्रण भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

परिवेश का चित्रण

परिवेश में कई तत्व शामिल होते हैं-

- स्थान का वर्णन
- सामाजिक परिस्थितियाँ
- लोगों का पहनावा और जीवन शैली
- भाषा और बोली
- परंपराएँ और रीति-रिवाज

इन सभी तत्वों का उचित चित्रण कहानी को अधिक वास्तविक और प्रभावशाली बनाता है।

परिवेश का महत्व

कहानी में परिवेश का चित्रण उतना विस्तृत नहीं हो सकता जितना उपन्यास में होता है। फिर भी एक कुशल लेखक संक्षेप में ही ऐसा वातावरण निर्मित कर देता है जिससे पाठक को उस समय और स्थान की स्पष्ट अनुभूति हो जाती है। परिवेश का मुख्य उद्देश्य कहानी की घटनाओं को स्वाभाविक बनाना और पात्रों को जीवंत रूप प्रदान करना होता है।

परिवेश की सही जानकारी

किसी भी कहानी में परिवेश का चित्रण तभी प्रभावी हो सकता है जब लेखक को उस समय और समाज की सही जानकारी हो। उसे यह जानना चाहिए कि उस काल के लोगों का जीवन कैसा था, सामाजिक व्यवस्था कैसी थी, उनकी मान्यताएँ क्या थीं और उनके संबंध किस प्रकार के थे। यदि लेखक को इन बातों की जानकारी नहीं होगी, तो वह परिवेश का स्वाभाविक चित्रण नहीं कर सकेगा।

4. संरचना-शिल्प:

संरचना-शिल्प कहानी के कलात्मक पक्ष को दर्शाता है। इसके अंतर्गत भाषा, शैली और संवाद जैसे तत्व आते हैं, जो कहानी को प्रभावशाली और आकर्षक बनाते हैं।

भाषा

कहानी का पूरा प्रभाव भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होता है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कथानक, पात्र और परिवेश पाठक के सामने प्रस्तुत होते हैं। यदि लेखक की भाषा पर पकड़ मजबूत है, तो उसकी कहानी अधिक प्रभावशाली बनती है। कहानी की भाषा सामान्यत: सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। अत्यधिक जटिल भाषा कहानी के संप्रेषण को कठिन बना देती है। कई बार एक ही कहानी में भाषा के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। वर्णन के समय लेखक अपनी भाषा का प्रयोग करता है, जबकि पात्रों के संवाद उनकी सामाजिक स्थिति और व्यक्तित्व के अनुसार बदल जाते हैं।

शैली

शैली से आशय कहानी प्रस्तुत करने के लेखक के विशिष्ट तरीके से है। प्रत्येक लेखक की अपनी अलग शैली होती है, जो उसे अन्य लेखकों से भिन्न बनाती है।

शैली का निर्धारण दो मुख्य बातों से होता है-

- लेखक की व्यक्तिगत रुचि
- कहानी की विषयवस्तु की आवश्यकता

कहानी की प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार की शैलियाँ अपनाई जाती हैं।

कुछ प्रमुख शैलियाँ है-

- वर्णनात्मक शैली
- मनोविश्लेषणात्मक शैली
- आत्मकथात्मक शैली
- डायरी शैली
- पूर्वदीप्ति शैली
- फंतासी शैली

कभी-कभी एक ही कहानी में एक से अधिक शैलियों का प्रयोग भी किया जाता है।

संवाद

संवाद कहानी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। पात्रों के बीच होने वाली बातचीत को संवाद कहा जाता है।

संवादों के माध्यम से-

- कहानी की घटनाएँ आगे बढ़ती हैं
- पात्रों के स्वभाव का परिचय मिलता है
- कथा में नाटकीयता उत्पन्न होती है

संवादों का सबसे बड़ा गुण यह है कि वे लंबे विवरण की आवश्यकता को कम कर देते हैं। संवाद हमेशा पात्रों की सामाजिक स्थिति और परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए। यदि कोई अशिक्षित पात्र अत्यधिक परिष्कृत भाषा बोलने लगे तो वह अस्वाभाविक प्रतीत होगा।

5. प्रतिपाद्यः

प्रतिपाद्य का अर्थ है कहानी का मूल भाव या विचार। यह वह संदेश है जिसे लेखक अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। किसी भी कहानी को सही रूप में समझने के लिए उसके प्रतिपाद्य को समझना आवश्यक है। इसके लिए पहले कहानी की घटनाओं और पात्रों को ध्यान से समझना पड़ता है। प्रतिपाद्य के अंतर्गत केवल कहानी का उद्देश्य ही नहीं आता, बल्कि लेखक की दृष्टि और उसके विचार भी शामिल होते हैं। किसी कहानी की महानता केवल उसकी कथावस्तु, पात्र या शिल्प से नहीं तय होती। वास्तव में कहानी की श्रेष्ठता उसके उद्देश्य और उसके विचारों की गहराई पर निर्भर करती है। जब लेखक किसी गंभीर सामाजिक या मानवीय समस्या को लेकर कहानी लिखता हैतो उसकी रचना अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

इस प्रकार कहानी का प्रतिपाद्य ही उसके अन्य सभी तत्त्वों को दिशा प्रदान करता है।

3.7 सारांश:

कहानी साहित्य की एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है, जिसके माध्यम से जीवन के विविध अनुभवों, परिस्थितियों और मानवीय भावनाओं का प्रभावपूर्ण चित्रण किया जाता है। कहानी का स्वरूप संक्षिप्त होते हुए भी अत्यंत व्यापक होता है, क्योंकि इसमें सीमित शब्दों के भीतर जीवन की किसी विशेष घटना, अनुभूति या समस्या को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसी कारण कहानी पाठक पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम होती है। कहानी के सिद्धांतों का अध्ययन इस विधा की प्रकृति, संरचना और अभिव्यक्ति को समझने में सहायक होता है। कहानी केवल घटनाओं का साधारण वर्णन नहीं होती बल्कि उसमें कथावस्तु, पात्र, परिवेश, संवाद, उद्देश्य तथा भाषा-शैली जैसे अनेक तत्त्वों का समन्वय होता है। इन तत्त्वों के संतुलित और सुसंगठित प्रयोग से ही कहानी का प्रभाव और सौंदर्य निर्मित होता है।

कहानी की कथावस्तु उसके मूल आधार के रूप में कार्य करती है जिसके माध्यम से घटनाओं का क्रम और कथा का विकास होता है। पात्र कहानी के प्रमुख संवाहक होते हैं, जो अपने व्यवहार और क्रियाओं के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाते हैं। परिवेश कहानी की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करता है जबकि संवाद पात्रों के स्वभाव और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनते हैं। इसके साथ ही भाषा और शैली कहानी की प्रभावशीलता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कहानी के सिद्धांत यह भी स्पष्ट करते हैं कि एक सफल कहानी में संक्षिप्तता, एकता, प्रभाव और संवेदनात्मक गहराई का विशेष महत्व होता है। इन गुणों के कारण कहानी पाठक के मन में स्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है। कहानी के सिद्धांतों का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता देता है कि कहानी किस प्रकार निर्मित होती है, उसके प्रमुख तत्व क्या हैं तथा वह किस प्रकार साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करती है।

K3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: क्योंकि कहानी के माध्यम से जीवन के अनुभवों, भावनाओं, संघर्षों और सामाजिक यथार्थ को संक्षिप्त तथा प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

प्रश्न 2 का उत्तर: सामान्य भाषा का उद्देश्य स्पष्ट सूचना देना और संप्रेषण करना होता है, जबकि साहित्यिक भाषा भावनाओं, अनुभूतियों और कल्पनाओं को कलात्मक रूप में व्यक्त करती है।

प्रश्न 3 का उत्तर: कहानी की संरचना कथावस्तु, पात्र, संवाद, परिवेश, उद्देश्य तथा भाषा-शैली जैसे तत्त्वों से निर्मित होती है।

प्रश्न 4 का उत्तर: यथार्थ के दो स्तर माने जाते हैं-सतही यथार्थ और गहन यथार्थ।

प्रश्न 5 का उत्तर: अभिधात्मक भाषा में शब्द अपने सीधे और निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जबकि व्यंजना प्रधान भाषा में शब्द संकेतात्मक और भावात्मक अर्थ व्यक्त करते हैं।

प्रश्न 6 का उत्तर: साहित्यिक भाषा के दो प्रमुख गुण काव्यात्मकता और नाटकीयता माने जाते हैं।

5 3.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- रश्मि, डॉ. इंदु (1992). नई कहानी का स्वरूप विवेचन. दिल्ली: सन्मार्ग प्रकाशन
- पाण्डेय, गणेश प्रसाद (1999). आठवें दशक के हिंदी कहानी में ग्रामीण जीवन. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन
- चौबे, देवेन्द्र (2001). समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान

M3.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. भाषा और साहित्य के बीच संबंध को किस प्रकार समझाया जा सकता है?
2. कहानी की भाषिक संरचना से क्या आशय है?
3. साहित्यिक भाषा को सामान्य भाषा से भिन्न क्यों माना जाता है?
4. कहानी में परिवेश का क्या महत्व होता है?
5. कहानी में संवाद किस प्रकार कथा को प्रभावी बनाते हैं?
6. कहानी की रचना में यथार्थ की भूमिका को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. भाषा और साहित्य के परस्पर संबंध का विश्लेषण कीजिए तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति में भाषा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. कहानी की भाषिक संरचना का विस्तृत विवेचन कीजिए और उसके प्रमुख घटकों को समझाइए।
3. कहानी-वस्तु और शिल्प के संबंध को स्पष्ट करते हुए बताइए कि कहानी की प्रभावशीलता में इन दोनों का क्या योगदान है।
4. कहानी के प्रमुख तत्वों का विस्तार से वर्णन कीजिए और उनके महत्व को स्पष्ट कीजिए।
5. साहित्यिक भाषा की विशेषताओं का विवेचन कीजिए तथा यह बताइए कि वह सामान्य भाषा से किस प्रकार भिन्न होती है।
6. कहानी में कथावस्तु, पात्र और परिवेश के पारस्परिक संबंध का विस्तार से विवेचन कीजिए।

****

इकाई-4 कहानी का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 कहानी के प्रकार
4.4 हिंदी कहानी की विकास यात्रा
4.5 कहानी का वर्गीकरण
  4.5.1 हिंदी के प्रारंभिक कहानियों के रूप
  4.5.2 हिंदी के प्रारंभिक कहानियों के रूप
4.6 सारांश
4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
4.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- कहानी के वर्गीकरण की अवधारणा तथा उसके आधारों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- विषयवस्तु के आधार पर कहानी के विभिन्न प्रकारों—सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि-से परिचित होंगे।
- कथानक और प्रस्तुति के आधार पर कहानी के भिन्न-भिन्न रूपों को समझ सकेंगे।
- पात्रों और उद्देश्य के आधार पर कहानी के वर्गीकरण की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- हिंदी कहानी साहित्य में विभिन्न प्रकार की कहानियों के स्वरूप और प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- कहानी के वर्गीकरण के माध्यम से हिंदी कहानी की विविधता और विकास से परिचित हो सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में कहानी एक अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय गद्य विधा है। यह विधा जीवन के विविध अनुभवों, भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को संक्षिप्त तथा प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत करती है। कहानी के माध्यम से लेखक समाज, व्यक्ति और जीवन की अनेक स्थितियों को चित्रित करता है। हिंदी कहानी का विकास समय के साथ निरंतर होता रहा है जिसके परिणामस्वरूप इसके विषय, शैली और स्वरूप में भी विविधता दिखाई देती है। इसी विविधता को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए कहानी का वर्गीकरण आवश्यक माना जाता है।

कहानी का वर्गीकरण साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि इसके माध्यम से कहानी की प्रकृति, स्वरूप और प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। सामान्यत: कहानी का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है, जैसे-विषयवस्तु, कथानक, पात्र, उद्देश्य तथा प्रस्तुति शैली। विषय के आधार पर कहानियों को सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, रहस्यात्मक, रोमांचक आदि रूपों में विभाजित किया जाता है। इसी प्रकार कथानक और प्रस्तुति की दृष्टि से भी कहानियों के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इस प्रकार का वर्गीकरण कहानी साहित्य की विविधता और उसकी विशेषताओं को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

इस इकाई में कहानी के वर्गीकरण की अवधारणा, उसके विभिन्न आधारों तथा प्रमुख प्रकारों का

अध्ययन किया जाएगा। इसके माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार अलग-अलग दृष्टियों से कहानी का विभाजन किया जाता है और प्रत्येक प्रकार की कहानी की अपनी विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं। साथ ही हिंदी साहित्य में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कहानियों के स्वरूप और महत्व पर भी प्रकाश डाला जाएगा। अत: यह इकाई विद्यार्थियों को कहानी की प्रकृति, उसके विभिन्न रूपों तथा हिंदी कहानी साहित्य की विविधता को समझने का अवसर प्रदान करती है जिससे कहानी विधा के अध्ययन में अधिक स्पष्टता और गहनता प्राप्त होती है।

4.3 कहानी के प्रकार

हिंदी साहित्य में कहानी एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली गद्य विधा है। यह मनुष्य के जीवन, समाज, संस्कृति और इतिहास से जुड़े विविध अनुभवों को संक्षिप्त किन्तु प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत करती है। कहानी का स्वरूप अत्यंत व्यापक होने के कारण विद्वानों ने इसे विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया है। सामान्यत: कहानी का वर्गीकरण विषयवस्तु, उद्देश्य और शैलीके आधार पर किया जाता है। इन आधारों के अनुसार हिंदी कहानियों के अनेक प्रकार दिखाई देते हैं। नीचे प्रमुख प्रकारों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है।

1. धार्मिक कहानियाँ

धार्मिक कहानियाँ वे होती हैं जिनका संबंध धर्म, आस्था, नैतिकता और सदाचार से होता है। इन कहानियों में मनुष्य को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाती है तथा धर्म के आदर्शों और मूल्यों का चित्रण किया जाता है। इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता बल्कि पाठकों के भीतर नैतिक चेतना और आध्यात्मिक भावना उत्पन्न करना भी होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रकार की कहानियों की समृद्ध परंपरा मिलती है।

उदाहरण के रूप में रामायण और महाभारत में अनेक धार्मिक कथाएँ मिलती हैं, जिनमें धर्म, कर्तव्य और आदर्श जीवन का संदेश दिया गया है। इसी प्रकार पंचतंत्र और हितोपदेश की कई कहानियाँ भी नैतिक शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं।

2. ऐतिहासिक कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानियाँ इतिहास की वास्तविक घटनाओं, ऐतिहासिक पात्रों और बीते युग की परिस्थितियों पर आधारित होती हैं। इन कहानियों में इतिहास के साथ-साथ कल्पना का भी समावेश होता है जिससे घटनाएँ अधिक रोचक और प्रभावशाली बन जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों में उस समय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया जाता है। हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक कहानी लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में इतिहास की झलक मिलती है। इसी प्रकारवृन्दावन लाल वर्माने भी ऐतिहासिक विषयों पर अनेक रचनाएँ की हैं। उनके उपन्यास झाँसी की रानी और मृगनयनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं।

3. सामाजिक कहानियाँ

सामाजिक कहानियाँ समाज के जीवन, उसकी समस्याओं, परंपराओं, रीति-रिवाजों और मान्यताओं का चित्रण करती हैं। इन कहानियों में समाज की अच्छाइयों और बुराइयों दोनों का यथार्थ चित्रण होता है। सामाजिक कहानी का उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्याय और विषमताओं को उजागर करना तथा लोगों को जागरूक बनाना होता है।

हिंदी कहानी साहित्य में सामाजिक कहानियों का विशेष स्थान है। मुंशी प्रेमचंद को सामाजिक यथार्थ का सबसे बड़ा कथाकार माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ कफन, पूस की रात और ईदगाह समाज की गरीबी, शोषण और मानवीय संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार सुदर्शन की

कहानीहार की जीत भी सामाजिक मूल्यों को उजागर करती है।

4. यथार्थवादी कहानियाँ

यथार्थवादी कहानियों में जीवन की वास्तविक स्थितियों का चित्रण किया जाता है। इनमें कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता पर अधिक बल दिया जाता है। लेखक समाज में घटित होने वाली घटनाओं, समस्याओं और परिस्थितियों को बिना किसी आडंबर के प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की कहानियों में जीवन की सच्चाइयाँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं।

हिंदी साहित्य में यथार्थवादी कहानी का विकास विशेष रूप से मुंशी प्रेमचंद के समय में हुआ। उनकी कहानी कफन में गरीबी और मानवीय संवेदनाओं के पतन का यथार्थ चित्रण मिलता है।

5. आदर्शवादी कहानियाँ

आदर्शवादी कहानियों में जीवन के उच्च आदर्शों और नैतिक मूल्यों का चित्रण किया जाता है। इन कहानियों का उद्देश्य पाठकों को यह बताना होता है कि मनुष्य को जीवन में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। इन कहानियों में पात्रों के माध्यम से आदर्श जीवन की प्रेरणा दी जाती है। इस प्रकार की कहानियों में त्याग, सत्य, करुणा, परोपकार और नैतिकता जैसे गुणों को प्रमुखता दी जाती है। हिंदी साहित्य में अनेक लेखकों ने आदर्शवादी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें मानवीय मूल्यों को महत्व दिया गया है।

6. आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियाँ

आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियाँ यथार्थ और आदर्श दोनों का समन्वय प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों का आधार वास्तविक जीवन होता है किंतु लेखक उसमें आदर्श की दिशा भी दिखाता है। अर्थात् कहानी में जीवन की वास्तविक समस्याओं का चित्रण तो होता है परन्तु अंत में समाधान या आदर्श की झलक भी मिलती है। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की कहानियों का उत्कृष्ट उदाहरण मुंशी प्रेमचंदकी कई रचनाओं में मिलता है जहाँ यथार्थ और आदर्श का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।

7. घटना प्रधान कहानियाँ

घटना प्रधान कहानियों में कथानक और घटनाओं का विशेष महत्व होता है। कहानी का विकास किसी एक मुख्य घटना के इर्द-गिर्द होता है और उसी के आधार पर पात्रों तथा परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। ऐसी कहानियाँ पाठकों में उत्सुकता और रोचकता बनाए रखती हैं। घटना प्रधान कहानियों में रोमांच, रहस्य और संघर्ष का तत्व भी पाया जाता है। हिंदी साहित्य में अनेक कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें किसी विशेष घटना को केंद्र में रखकर कथा का विकास किया गया।

कहानी के विभिन्न प्रकार हिंदी कहानी साहित्य की व्यापकता और विविधता को दर्शाते हैं। प्रत्येक प्रकार की कहानी का अपना अलग स्वरूप, उद्देश्य और महत्व होता है। इन विभिन्न रूपों के माध्यम से कहानी साहित्य जीवन के अनेक पहलुओं को प्रस्तुत करता है और पाठकों को ज्ञान, मनोरंजन तथा सामाजिक चेतना प्रदान करता है।

4.4 हिंदी कहानी की विकास यात्रा

हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं में कहानी का विशेष महत्व है। यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो जीवन की घटनाओं, अनुभवों, भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली रूप में व्यक्त करती है। हिन्दी कहानी का वर्तमान विकसित रूप एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्रारम्भ में हिन्दी में जो कथाएँ लिखी जाती थीं वे आधुनिक अर्थों में कहानी नहीं थीं बल्कि लोककथाओं, धार्मिक आख्यानों

और अनूदित कथाओं का रूप अधिक था। समय के साथ समाज, संस्कृति, राजनीति और साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन हुआ और इन परिवर्तनों के साथ-साथ हिन्दी कहानी भी विकसित होती चली गई। हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को विभिन्न साहित्यिक युगों के आधार पर समझा जा सकता है।

भारतेन्दु युग में हिन्दी कहानी की स्थिति

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भिक चरण माना जाता है। इस समय हिन्दी गद्य का विकास प्रारम्भ हो चुका थापरन्तु आधुनिक कहानी का स्पष्ट स्वरूप अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हुआ था। उस समय जो कथाएँ प्रचलित थीं उनका मुख्य स्रोत संस्कृत साहित्य तथा लोक परम्परा में प्रचलित मौखिक कथाएँ थीं। धार्मिक और पौराणिक कथाओं के अनुवाद तथा रूपान्तर इस समय अधिक दिखाई देते हैं।

इस काल में संस्कृत और लोक साहित्य से अनेक कथाएँ हिन्दी में आईं। उदाहरण के रूप मेंशुक बहत्तरी, किस्सा तोता मैना और किस्सा साढ़े तीन पाईजैसी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इन कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक शिक्षा भी निहित होती थी।

दूसरी ओर उर्दू और फारसी साहित्य से भी अनेक कथाएँ हिन्दी में अनूदित होकर आईं। इन कथाओं में कल्पना, रोमांच और तिलस्मी तत्वों का प्रभाव अधिक था। इस श्रेणी में बाग़ ओ बहार, किस्सा हातिमताई तथा तिलिस्म ए हो शरुबा जैसी कथाएँ प्रमुख हैं।

इस काल में कुछ लेखकों ने मौलिक गद्य रचनाओं का भी प्रयास किया। इंशाअल्ला खाँकीरानी केतकी की कहानी को हिन्दी गद्य की एक प्रारम्भिक कथा रचना माना जाता है। इसी प्रकार लल्लूलाल की सिंहासन बत्ती सीत था प्रेमसागर भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन रचनाओं में आधुनिक कहानी की संरचना पूरी तरह नहीं मिलती फिर भी ये हिन्दी कहानी के विकास की प्रारम्भिक कड़ी के रूप में महत्वपूर्ण हैं।

कुल मिलाकर इस काल में हिन्दी कहानी का स्वरूप अभी प्रारम्भिक अवस्था में था। कथा-साहित्य का आधार अनुवाद, रूपान्तर और लोककथाएँ थीं। आधुनिक कहानी की कलात्मक संरचना, चरित्र-चित्रण और कथानक की सुसंगति का विकास अभी आगे होना था।

द्विवेदी युग में हिन्दी कहानी का विकास

द्विवेदी युग हिन्दी साहित्य के इतिहास में जागरण और नवचेतना का काल माना जाता है। इस समय साहित्य में राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक चेतना की प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आईं। इस युग का आरम्भ सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन से माना जाता है, जिसके संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इस काल में हिन्दी कहानी के विकास की दिशा धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी। प्रारम्भ में अंग्रेज़ी, बांग्ला और संस्कृत साहित्य से अनेक कथाओं का अनुवाद किया गया। इन अनुवादों ने हिन्दी लेखकों को कहानी की नई शैली और संरचना से परिचित कराया।

इसी काल में हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानी जाने वाली रचना किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखी गई इन्दुमती प्रकाशित हुई। यह कहानी 1900 ई. में प्रकाशित हुई और इसे हिन्दी कहानी के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यद्यपि इस पर विलियम शेक्सपियर के नाटक 'The Tempest' का प्रभाव माना जाता है फिर भी शिल्प और संरचना की दृष्टि से यह हिन्दी कहानी के विकास में एक नया कदम था।

इसके बाद भी कुछ समय तक बांग्ला साहित्य तथा पौराणिक आख्यानों के अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित होते रहे। इस समय बांग्ला साहित्य के प्रभाव के कारण भावुकता और आदर्शवाद की प्रवृत्ति भी कहानी में दिखाई देने लगी। मूलत: द्विवेदी युग में हिन्दी कहानी ने अनुवाद से आगे बढ़कर मौलिकता की दिशा में कदम बढ़ाया। कहानी की संरचना, कथानक और चरित्र-चित्रण के प्रति लेखकों की सजगता बढ़ने लगी और कहानी धीरे-धीरे एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में विकसित होने लगी।

प्रसाद युग में हिन्दी कहानी का रूप

प्रसाद युग हिन्दी कहानी के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस समय हिन्दी कहानी को सशक्त रूप देने में दो महान साहित्यकारों की विशेष भूमिका रही-मुंशी प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद। इन दोनों लेखकों ने हिन्दी कहानी को अलग-अलग दिशाओं में समृद्ध किया। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में समाज के वास्तविक जीवन का चित्रण किया। उन्होंने ग्रामीण जीवन, गरीबी, शोषण, अन्याय और सामाजिक विषमताओं को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया। उनकी भाषा सरल, सहज और बोलचाल की थी, जिससे उनकी कहानियाँ आम पाठकों के लिए भी अत्यंत प्रभावशाली बन गईं। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में पूस की रात, बड़े भाई साहब, ईदगाह, शतरंज के खिलाड़ी और कफन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी कहानियों का विशाल संग्रहमान सरोवर नाम से प्रकाशित हुआ, जो हिन्दी कहानी साहित्य की अमूल्य निधि है।

दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद ने अपनी कहानियों में कल्पना, संवेदना और काव्यात्मकता को प्रमुखता दी। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ और अलंकारपूर्ण थी। उन्होंने अतीत की घटनाओं और मानवीय भावनाओं को आधार बनाकर अनेक प्रभावशाली कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द की परम्परा में विश्वम्भर शर्मा कौशिक और सुदर्शन जैसे कहानीकारों ने सामाजिक समस्याओं को अपने कथानकों का विषय बनाया। कौशिक की कहानियों में बाल विवाह, पर्दा प्रथा और दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों का चित्रण मिलता है। प्रसाद की परम्परा में चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास और विनोद शंकर व्यास जैसे लेखकों ने ऐतिहासिक और भावप्रधान कहानियों की परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रसाद युग में हिन्दी कहानी ने सामाजिक यथार्थ, भावनात्मक संवेदना और कलात्मक अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों को अपनाते हुए एक सशक्त साहित्यिक विधा का रूप ग्रहण किया।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी ने नए प्रयोगों और विचारों की ओर कदम बढ़ाया। इस काल में कहानीकारों ने केवल सामाजिक समस्याओं का चित्रण ही नहीं किया, बल्कि मनुष्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी महत्व देना शुरू किया। इस दिशा में जैनेन्द्र कुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं, मानसिक संघर्षों और मनोवैज्ञानिक स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया। उनकी कहानियोंपाजेब, दो चिड़ियाँ आदि में व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्मचेतना का चित्रण मिलता है।

इसी काल में अज्ञेय ने भी हिन्दी कहानी को नई दिशा प्रदान की। उनकी कहानियों में व्यक्ति के मन के गहरे द्वंद्व, दार्शनिक चिंतन और आधुनिक जीवन की जटिलताओं का विश्लेषण मिलता है। इस समय के अन्य महत्वपूर्ण कहानीकारों में भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी और राहुल सांकृत्यायन का भी उल्लेख किया जाता है। इन लेखकों ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी कहानी को समृद्ध किया।

प्रसादोत्तर युग और नई कहानी की प्रवृत्ति

प्रसादोत्तर काल में हिन्दी कहानी ने जीवन की जटिलताओं और आधुनिक समाज की समस्याओं को अधिक गहराई से चित्रित करना शुरू किया। इस समय कहानी में नए प्रयोग हुए और साहित्य में नई कहानी आंदोलन का उदय हुआ। इस आंदोलन ने कहानी को आधुनिक जीवन की संवेदनाओं और यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया। इस काल में विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं ने कहानी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सारिका जैसी पत्रिकाओं ने नए कहानीकारों को मंच प्रदान किया और उनके माध्यम से हिन्दी कहानी में नए विषय, नए शिल्प और नई अभिव्यक्ति का विकास हुआ।

ꣿअपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: हिंदी साहित्य में कहानी का क्या महत्व है?

प्रश्न 2: कहानी का वर्गीकरण क्यों आवश्यक माना जाता है?

प्रश्न 3: धार्मिक कहानियों की मुख्य विशेषता क्या होती है?

प्रश्न 4: हिंदी साहित्य में यथार्थवादी कहानी के विकास का प्रमुख श्रेय किसे दिया जाता है?

प्रश्न 5: द्विवेदी युग में हिंदी कहानी के विकास में कौन-सी महत्वपूर्ण घटना हुई?

प्रश्न 6: प्रेमचंदोत्तर काल में हिंदी कहानी में कौन-सी नई प्रवृत्ति दिखाई दी?

आधुनिक और समकालीन हिन्दी कहानी

आधुनिक काल में हिन्दी कहानी अनेक नई विचारधाराओं और प्रवृत्तियों से प्रभावित दिखाई देती है। इस समय प्रगतिवादी, व्यक्तिवादी और आधुनिकतावादी दृष्टिकोण प्रमुख रूप से सामने आए। प्रगतिवादी विचारधारा के प्रतिनिधि कहानीकार यशपाल थे। उनकी कहानियों में वर्ग-संघर्ष, सामाजिक विषमता और रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना दिखाई देती है। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में पिंजड़े की उड़ान और फूलों का कुर्ता प्रमुख हैं। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के अंतर्गत अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी जैसे लेखकों ने व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक अनुभवों को कथा का केंद्र बनाया। आधुनिक संवेदना और सामाजिक चेतना से युक्त कहानियों के लेखकों में विष्णु प्रभाकर, अमृत रायतथा अन्य कई साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी रही है। प्रारम्भ में लोककथाओं और अनूदित आख्यानों से आरम्भ होकर यह विधा धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और आधुनिक जीवन की जटिलताओं तक पहुँच गई। विभिन्न युगों के साहित्यकारों ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा से हिन्दी कहानी को नई दिशा और नई ऊँचाई प्रदान की। परिणामस्वरूप आज हिन्दी कहानी साहित्य की एक सशक्त और प्रभावशाली विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है।

4.5 कहानी का वर्गीकरण

हिन्दी कहानी के आरम्भिक विकास की चर्चा करते समय यह स्पष्ट होता है कि इस विधा के निर्माण में साहित्यिक पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। विशेष रूप से सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी गद्य साहित्य को दिशा देने का कार्य किया। इस पत्रिका का संपादन प्रसिद्ध साहित्यकार महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में था जिनके प्रयासों से हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई पहचान मिली। सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक स्वरूप को समझा जा सकता है। उसी दौर में कहानी के विभिन्न रूप धीरे-धीरे आकार लेने लगे और कथा साहित्य ने अपने लिए एक स्वतंत्र पहचान बनानी शुरू की।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि आज के समय में जो कहानी के वर्गीकरण हमें दिखाई देते हैं, वे साहित्य के क्रमिक विकास के बाद ही स्पष्ट रूप से सामने आए हैं। आरम्भिक काल की कहानियाँ आधुनिक कहानी से कई दृष्टियों से भिन्न प्रतीत होती हैं इसलिए वर्तमान समय की कहानियों से उनका सीधा संबंध हमेशा दिखाई नहीं देता। सरस्वती में प्रकाशित कथाओं में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। इनमें कल्पना से परिपूर्ण कथाएँ, किसी विशिष्ट चरित्र पर आधारित कथाएँ, काल्पनिक यात्राओं का विवरण प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ तथा आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ सम्मिलित थी किन्तु हिन्दी कहानी को वास्तविक कलात्मकता और परिपक्कता तब प्राप्त हुई जब मुंशी प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद जैसे महान कथाकारों का आगमन हुआ। इन दोनों साहित्यकारों ने हिन्दी कहानी को नए विचार, नई संवेदनाएँ और नया शिल्प प्रदान किया। इनके प्रयासों से कहानी की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली तथा जीवन के यथार्थ से जुड़ी हुई बन गई। यद्यपि इनसे पहले लिखी गई कहानियाँ आधुनिक दृष्टि से साधारण प्रतीत हो सकती हैं फिर भी हिन्दी कहानी के विकास में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। इसी कारण प्रेमचन्द और प्रसाद के समय तक लिखी गई कहानियों के विभिन्न रूपों का अध्ययन आवश्यक माना जाता है।

4.5.1 हिंदी के प्रारंभिक कहानियों के रूप

चरित्र प्रधान कहानियाँ

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक दौर में जिन प्रकारों का विकास हुआ उनमें चरित्र प्रधान कहानियों का विशेष महत्व है। ऐसी कहानियों में कथा का मुख्य केन्द्र किसी एक पात्र का जीवन, स्वभाव और व्यवहार होता है। कहानी की पूरी संरचना उसी पात्र के इर्द-गिर्द निर्मित होती है और घटनाएँ भी उसी के अनुसार आगे बढ़ती हैं। अंग्रेजी साहित्य में अठारहवीं शताब्दी के दौरान इस प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्ति देखने को मिलती है। उस समय जोसेफ एडिसन और रिचर्ड स्टील जैसे लेखकों के गद्य निबन्धों में व्यक्तित्व चित्रण की यह शैली दिखाई देती है, जिसे ''कैरेक्टर राइटिंग'' कहा गया। इसी प्रकार के लेखन से आगे चलकर कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं के विकास को प्रेरणा मिली।

हिन्दी साहित्य में भी कहानी के आरम्भिक चरण में कई ऐसी रचनाएँ सामने आईं जिनमें किसी विशेष पात्र का व्यक्तित्व ही कथा का आधार बनता है। इन कहानियों में पात्र कभी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है तो कभी मनोरंजन का माध्यम बन जाता है। लेखक पात्र के स्वभाव, उसकी मानसिकता तथा उसके सामाजिक परिवेश का चित्रण करते हुए कहानी को आगे बढ़ाता है। मुंशी प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। उदाहरण के रूप में आत्माराम, बड़े घर की बेटी, बाँका गुमान तथा बूढ़ी काकी जैसी रचनाओं में पात्र की विशेषताओं के माध्यम से कथा का विस्तार किया गया है। इन कहानियों में चरित्र ही कथा की मुख्य धुरी बन जाता है।

वातावरण प्रधान कहानियाँ

हिन्दी कहानी में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रकार वातावरण प्रधान कहानियों का भी है। ऐसी कहानियों में लेखक जीवन के किसी विशेष पक्ष, भावना या परिस्थिति को केन्द्र में रखकर कथा का निर्माण करता है। इन रचनाओं में वातावरण का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया जाता है जिससे पाठक उस वातावरण को सजीव रूप में अनुभव कर सके। कहानीकार अपने वर्णन कौशल से प्रकृति, समाज या मनोभावों का ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जो पूरी कहानी के प्रभाव को गहरा बना देता है। इस प्रकार की कहानियों का उत्कृष्ट उदाहरण जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी आकाशदीप है। इसके अतिरिक्त उनकी कई अन्य कहानियाँ भी वातावरण प्रधान शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इनमें प्रति ध्वनि, बिसाती, स्वर्ग के खण्डहर, हिमालय का पथिकत थासमुद्र-संतरण जैसी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में वातावरण का चित्रण कथा के प्रभाव को निर्धारित करता है। इसी परंपरा को आगे बढ़ाने में सुदर्शन, चण्डी प्रसाद हृदयेश और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जैसे लेखकों का भी योगदान रहा है।

कथानक प्रधान कहानियाँ

हिन्दी कहानी के विकास में कुछ ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमें घटनाओं की श्रृंखला और कथानक की रोचकता को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। इस प्रकार की कहानियों में कथा का विकास मुख्यत: घटनाओं के क्रम और उनके आपसी संबंधों के आधार पर होता है। पात्र और परिस्थितियाँ कथानक को आगे बढ़ाने का माध्यम बनते हैं जबकि कहानी का मुख्य आकर्षण घटनाओं की गति और उनकी संरचना में निहित रहता है। इन रचनाओं में कथा-वाचन की शैली अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। लेखक घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक की उत्सुकता लगातार बनी रहे। हिन्दी साहित्य में विश्वम्भर नाथ कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा तथा पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जैसे लेखकों ने कथानक प्रधान कहानियाँ लिखीं। इनकी रचनाओं में घटनाओं का क्रम और आख्यान शैली विशेष रूप से महत्वपूर्ण दिखाई देती है, जिसके कारण इन कहानियों को कथानक प्रधान कहा जाता है।

कार्य प्रधान कहानियाँ

कहानी साहित्य में एक और प्रकार उन कथाओं का है जिनमें क्रिया या कार्य को विशेष महत्व दिया जाता है। प्राचीन दार्शनिक अरस्तू ने नाटक के संदर्भ में यह विचार व्यक्त किया था कि किसी रचना में चरित्र के बिना भी कथानक की कल्पना की जा सकती है किन्तु क्रिया के बिना उसकी संरचना संभव नहीं होती। यही सिद्धांत कहानी साहित्य पर भी लागू होता है। जब किसी कहानी में घटनाओं की गति, क्रिया और रोमांच प्रमुख तत्व बन जाते हैं तब उसे कार्य प्रधान कहानी कहा जाता है।

ऐसी कहानियों में कथानक की गति तीव्र होती है और पाठक की रुचि बनाए रखने के लिए लगातार नई घटनाएँ घटित होती रहती हैं। इस प्रकार की कहानियों में प्राय: रहस्य, रोमांच और साहसिकता का समावेश होता है। जासूसी कथाएँ तथा विज्ञान-कथाएँ सामान्यत: इसी श्रेणी में आती हैं। हालांकि इन विषयों के अतिरिक्त भी अनेक विषयों पर ऐसी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें क्रिया का महत्व प्रमुख होता है। हिन्दी साहित्य में गोपालराम गहमरी तथा दुर्गाप्रसाद खत्री की रचनाएँ कार्य प्रधान कहानियों के उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय मानी जाती हैं।

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास में अनेक भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। इन सभी प्रकारों ने मिलकर हिन्दी कहानी को समृद्ध किया और आगे चलकर आधुनिक हिन्दी कहानी के स्वरूप को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

हिन्दी कहानी के विकास में मुंशी प्रेमचन्द का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने कहानी को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर समाज की वास्तविक समस्याओं को व्यक्त करने का प्रभावी माध्यम बनाया। प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन, गरीबी, सामाजिक विषमता, शोषण और मानवीय संवेदनाओं का सजीव चित्रण मिलता है। उनकी रचनाओं में समाज के दबे-कुचले वर्गों के प्रति गहरी सहानुभूति दिखाई देती है। ''पूस की रात'', ''कफन'', ''सद्गति'' और ''ठाकुर का कुआँ'' जैसी कहानियाँ भारतीय समाज के यथार्थ को स्पष्ट रूप से सामने लाती हैं। प्रेमचन्द ने अपने पात्रों और घटनाओं के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया कि समाज में व्याप्त अन्याय और असमानता किस प्रकार आम लोगों के जीवन को प्रभावित करती है। उनकी कहानियों में मानवीय संवेदना, सामाजिक जागरूकता और परिवर्तन की प्रेरणा प्रमुख रूप से दिखाई देती है। इसी कारण प्रेमचन्द को हिन्दी कहानी साहित्य में यथार्थवादी परम्परा का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है और उनकी कहानियाँ आज भी सामाजिक चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

4.5.2 हिंदी के प्रारंभिक कहानियों के रूप

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी साहित्य में अनेक नये आयाम विकसित हुए। बदलते सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिस्थितियों, आर्थिक संरचना तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों ने साहित्य को भी प्रभावित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में जो व्यापक परिवर्तन आए, उन्होंने साहित्यकारों को नई दृष्टि प्रदान की। परिणामस्वरूप कहानी का कथ्य, शैली और अभिव्यक्ति के रूप भी बदलने लगे।

प्रेमचन्द के समय तक हिन्दी कहानी का जो स्वरूप विकसित हुआ था, वह मुख्यत: सामाजिक यथार्थ और आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रभावित था किन्तु बाद के दौर में समाज की जटिलताओं और बदलती जीवन परिस्थितियों ने कहानीकारों को नए विषयों की ओर उन्मुख किया। इस कारण हिन्दी कहानी में विविध प्रवृत्तियों का विकास हुआ और कहानी के वर्गीकरण की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी। इस काल में

यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी, दलित कहानी तथा स्त्रीवादी कहानी जैसी अनेक धाराएँ सामने आयीं। इन सभी प्रवृत्तियों ने हिन्दी कहानी को समृद्ध और बहुआयामी बनाया।

यथार्थवादी कहानियाँ

यथार्थवाद का मूल उद्देश्य जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को बिना किसी आडम्बर के प्रस्तुत करना होता है। जीवन की समस्याओं, संघर्षों और सामाजिक विषमताओं को यथासंभव सच्चाई के साथ चित्रित करना ही यथार्थवादी दृष्टि का आधार है। जब साहित्य में जीवन की स्थितियों और अनुभवों को वास्तविक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है तब वह यथार्थवादी कहानी का रूप ग्रहण करता है।

हिन्दी कहानी के विकासक्रम में प्रेमचन्द का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। उनके समय तक आते-आते पारंपरिक कहानी वर्गीकरण अप्रासंगिक प्रतीत होने लगे थे और कहानी में यथार्थवादी दृष्टिकोण का आधार मजबूत होने लगा था। प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन, सामाजिक विषमताओं तथा आर्थिक कठिनाइयों का अत्यंत प्रामाणिक चित्रण किया। विशेष रूप से ग्रामीण समाज की समस्याओं को उन्होंने जिस संवेदनशीलता और यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया, वह हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व माना जाता है।

यद्यपि प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में आदर्शवाद की छाया भी दिखाई देती है, फिर भी उनकी कई रचनाएँ पूर्णत: यथार्थवादी कही जा सकती हैं। ''ठाकुर का कुआँ'', ''सद्गति'', ''पूस की रात'' और ''कफन'' जैसी कहानियाँ समाज के कठोर यथार्थ को उजागर करती हैं। इन रचनाओं में समाज की असमानताओं, शोषण और मानवीय पीड़ा का सजीव चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द की कहानियों में उद्देश्यपरकता भी विद्यमान है क्योंकि वे साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानते थे।

प्रेमचन्द के पश्चात् अनेक लेखकों ने यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाया। यशपाल ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसमें मार्कसवादी दृष्टिकोण को जोड़ा। उनकी कहानियों में सामाजिक असमानताओं, वर्ग संघर्ष और शोषण के विरुद्ध स्वर मुखर दिखाई देता है। ''फूलों का कुर्ता'' और ''अभिशप्त'' जैसी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। यशपाल के कथा साहित्य में विचारधारा का विशेष महत्व है और उनकी कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा देती हैं। यथार्थवादी कहानी की परंपरा समय के साथ निरंतर विकसित होती रही।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

प्रेमचन्दोत्तर काल में कहानीकारों ने केवल बाहरी सामाजिक यथार्थ तक ही अपने लेखन को सीमित नहीं रखा, बल्कि मानव मन की जटिलताओं को भी साहित्य में स्थान देना प्रारम्भ किया। हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास हुआ। जैनेन्द्र कुमार को हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने अपने पात्रों के बाहरी व्यवहार के साथ-साथ उनके आंतरिक विचारों, भावनाओं और मानसिक संघर्षों को भी गहराई से चित्रित किया। उनकी कहानियों में व्यक्ति के मनोभावों और आत्मसंघर्ष का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है।

इलाचन्द्र जोशी ने भी मनोविश्लेषण को कहानी का महत्वपूर्ण तत्व बनाया। उनकी कहानियों में पात्रों की मानसिक अवस्थाओं और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का विस्तार से चित्रण किया गया है। अज्ञेय की कहानियों में भी व्यक्ति और उसकी चेतना को विशेष महत्व दिया गया। यद्यपि अज्ञेय की दृष्टि जैनेन्द्र से भिन्न थी, फिर भी उन्होंने मानव मन की जटिलताओं को समझने का प्रयास किया।

पश्चिमी साहित्य की तुलना में हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कहानियों का विकास अपेक्षाकृत सीमित रहा, फिर भी हिन्दी कथा साहित्य में मनोविज्ञान के अनेक तत्व दिखाई देते हैं। प्रेमचन्द की कहानियों से लेकर नयी कहानी के दौर तक पात्रों के मानसिक संसार को अभिव्यक्ति मिलती रही। नयी कहानी के लेखकों ने संकेत और

प्रतीकों के माध्यम से पात्रों के मनोविज्ञान को व्यक्त करने का प्रयास किया। उदाहरण के रूप में अमरकांत की प्रसिद्ध कहानी ''दोपहर का भोजन'' में सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ गहरे मनोवैज्ञानिक संकेत भी मिलते हैं।

नयी कहानी

बीसवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी साहित्य में ''नयी कहानी'' नामक प्रवृत्ति का उदय हुआ। लगभग 1954 के आसपास इसकी आधारभूमि तैयार हो चुकी थी, जबकि 1960 के आसपास इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। नयी कहानी का उद्भव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न नई सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हुआ। इस प्रवृत्ति का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण जीवन संदर्भों के साथ समझना था। प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव के अनुसार नयी कहानी व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक संघर्षों और जीवन की आवश्यकताओं के संदर्भ में देखने का प्रयास करती है। इस प्रकार नयी कहानी का केंद्र व्यक्ति और उसका अनुभव जगत बन गया।

नयी कहानी में समकालीन जीवन की समस्याओं को प्रमुखता दी गयी। शिक्षा, बेरोजगारी, पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन, स्त्री-पुरुष संबंधों की नई स्थितियाँ, कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ तथा राजनीतिक निराशा जैसे विषय इसमें प्रमुख रूप से उभरकर सामने आए। नयी कहानी ने जीवन के जटिल यथार्थ को स्वीकार करते हुए व्यक्ति की स्वतंत्र पहचान को महत्व दिया। इस प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकारों में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा और मन्नू भण्डारी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने कहानी के शिल्प में भी कई प्रयोग किए और प्रतीकात्मकता तथा संकेतों का प्रयोग करके कथानक को अधिक प्रभावशाली बनाया।

अकहानी

अकहानी का विकास नयी कहानी की पृष्ठभूमि से हुआ। लगभग 1960 के आसपास इस शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति का उद्देश्य पारंपरिक कहानी मूल्यों का विरोध करना था। अकहानी के समर्थकों का मानना था कि पारंपरिक कथानक और संरचना कहानी की अभिव्यक्ति को सीमित कर देते हैं।

इस आंदोलन के प्रभाव में लिखी गई कहानियों में निराशा, विद्रोह और असंतोष की भावना प्रमुख रूप से दिखाई देती है। इन रचनाओं में जीवन के स्थापित मूल्यों को चुनौती दी गई। अकहानी के कई लेखक पहले नयी कहानी से जुड़े हुए थे, इसलिए उनकी रचनाओं में नयी कहानी के कुछ तत्व भी दिखाई देते हैं।

इस प्रवृत्ति पर पश्चिमी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। फ्रांस में प्रचलित ''एंटी-स्टोरी'' आंदोलन से भी इसका संबंध माना जाता है। गंगाप्रसाद विमल, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, दूधनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया जैसे लेखक इस आंदोलन से जुड़े रहे।

सचेतन कहानी

सचेतन कहानी आंदोलन की शुरुआत महीप सिंह ने की। 1964 में ''आधार'' पत्रिका का सचेतन कहानी विशेषांक प्रकाशित हुआ, जिसे इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। इस आंदोलन का उद्देश्य कहानी में जीवन के प्रति जागरूक और सकारात्मक दृष्टिकोण को स्थापित करना था। सचेतन कहानीकारों ने पश्चिम से प्रभावित निराशावादी प्रवृत्तियों का विरोध किया। उनका मानना था कि साहित्य में जीवन के प्रति आशावादी दृष्टि और सामाजिक मूल्यों को स्थान मिलना चाहिए। इस आंदोलन से जुड़े लेखकों में महीप सिंह, कमल जोशी, योगेश गुप्त और हिमांशु जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

समान्तर कहानी

समान्तर कहानी आंदोलन का सूत्रपात 1970 के दशक में कमलेश्वर द्वारा किया गया। उस समय वे ''सारिका'' पत्रिका के संपादक थे और इसी माध्यम से उन्होंने इस विचार को व्यापक रूप दिया। इस आंदोलन

का मुख्य उद्देश्य साहित्य में आम आदमी के जीवन को प्रमुखता देना था। कमलेश्वर के अनुसार आम आदमी एक जटिल सामाजिक व्यक्तित्व है, जिसकी समस्याओं और संघर्षों को कहानी में स्थान मिलना चाहिए। समान्तर कहानीकारों ने सामाजिक यथार्थ को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस आंदोलन से जुड़े लेखकों में मेहरुन्निसा परवेज, स्वदेश दीपक और निरुपमा सोबती के नाम प्रमुख हैं।

जनवादी कहानी

जनवादी कहानी ने समाज के श्रमिक, किसान और शोषित वर्गों के जीवन को केंद्र में रखा। इस प्रवृत्ति का संबंध प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा से जुड़ा हुआ है। 1970 के दशक के उत्तरार्ध में यह आंदोलन संगठित रूप से सामने आया। जनवादी कहानीकारों का उद्देश्य सामाजिक अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना था। उनकी कहानियों में वर्ग संघर्ष, सामाजिक परिवर्तन और जनचेतना के तत्व प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। इस परंपरा से जुड़े लेखकों में भीष्म साहनी, अमरकांत, शेखर जोशी, काशीनाथ सिंह और असगर वजाहत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

दलित कहानी

दलित कहानी हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है जिसमें दलित समाज के जीवन अनुभवों और संघर्षों को अभिव्यक्ति दी गयी है। दलित लेखकों ने अपने जीवन के वास्तविक अनुभवों के आधार पर सामाजिक भेदभाव, उत्पीड़न और अन्याय को कहानी का विषय बनाया। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन और जयप्रकाश कर्दम जैसे लेखकों ने दलित जीवन की समस्याओं को साहित्य में प्रमुखता से प्रस्तुत किया।

स्त्रीवादी कहानी

स्त्रीवादी कहानियाँ महिलाओं के अनुभवों, संवेदनाओं और सामाजिक संघर्षों को केंद्र में रखकर लिखी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी कहानी में अनेक महिला लेखिकाओं ने स्त्री जीवन की जटिलताओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल और मैत्रेयी पुष्पा जैसी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में स्त्री की सामाजिक स्थिति, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के प्रश्नों को प्रमुखता दी है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी का विकास भारतीय समाज में घटित व्यापक परिवर्तनों के साथ जुड़ा हुआ है। समय के साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में आए बदलावों ने साहित्य की दिशा और स्वरूप दोनों को प्रभावित किया। परिणामस्वरूप हिन्दी कहानी ने अपने कथ्य, शिल्प और दृष्टिकोण में निरंतर परिवर्तन करते हुए अनेक नई प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इन प्रवृत्तियों ने न केवल कहानी के विषय क्षेत्र का विस्तार किया, बल्कि मनुष्य और समाज के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति देने का कार्य भी किया।

यथार्थवादी कहानियों ने समाज की वास्तविक समस्याओं, शोषण और असमानताओं को उजागर किया तथा साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। मनोवैज्ञानिक कहानियों ने मानव मन की जटिलताओं और आंतरिक द्वंद्वों को सामने लाकर कहानी को अधिक सूक्ष्म और गहन बनाया। नयी कहानी आंदोलन ने स्वतंत्रता के बाद के बदलते सामाजिक जीवन, मध्यमवर्गीय मानसिकता तथा व्यक्ति के अस्तित्व संबंधी प्रश्नों को केन्द्र में रखकर हिन्दी कहानी को आधुनिक संवेदना प्रदान की। इसके बाद अकहानी, सचेतन कहानी और समान्तर कहानी जैसे आंदोलनों ने कहानी की परंपरागत संरचना और मूल्यों को चुनौती देते हुए नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

इसी क्रम में जनवादी कहानी ने श्रमिक, किसान और शोषित वर्गों के जीवन संघर्ष को साहित्य में प्रमुखता दी और सामाजिक परिवर्तन की चेतना को सशक्त बनाया। दलित कहानी ने सदियों से उपेक्षित और उत्पीड़ित समुदायों के अनुभवों तथा उनके आत्मसंघर्ष को आवाज दी, जिससे हिन्दी साहित्य में सामाजिक न्याय और समानता की चेतना मजबूत हुई। वहीं स्त्रीवादी कहानियों ने स्त्री जीवन की समस्याओं, संवेदनाओं और स्वतंत्र

अस्तित्व की आकांक्षा को प्रमुख विषय बनाकर साहित्य को नई दृष्टि प्रदान की। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी ने विविध आंदोलनों और प्रवृत्तियों के माध्यम से निरंतर विकास किया है। इन सभी धाराओं ने मिलकर हिन्दी कहानी को बहुआयामी, समृद्ध और जीवन के अधिक निकट बनाया है। आज की हिन्दी कहानी इन्हीं परवर्ती प्रवृत्तियों की देन है जिनके कारण यह साहित्य की एक सशक्त और प्रभावशाली विधा के रूप में स्थापित हुई है।

4.6 सारांश

हिन्दी कहानी का विकास समय के साथ समाज में होने वाले परिवर्तनों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। समाज की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियाँ कहानी के स्वरूप तथा उसके वर्गीकरण को प्रभावित करती रही हैं। इसी कारण हिन्दी कहानी में विभिन्न कालों में अलग-अलग प्रवृत्तियाँ और रूप विकसित हुए। प्रेमचन्द के समय में यथार्थवादी कहानी का उदय इसी सामाजिक चेतना का परिणाम था। उस समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था और समाज में परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा विद्यमान थी। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज की वास्तविक समस्याओं, गरीबी, शोषण और विषमता को सामने लाया। उनके बाद यशपाल और रांगेय राघव जैसे कहानीकारों ने इस यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाया, जो आगे चलकर जनवादी कहानी तक विकसित हुई।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में लोकतांत्रिक व्यवस्था के विस्तार और मध्यमवर्ग के उभार ने कहानी के नए रूपों को जन्म दिया। इस दौर में मनुष्य के आन्तरिक जीवन और मानसिक स्थितियों को महत्व मिलने लगा जिसके परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक कहानियों का विकास हुआ। इसी परिवेश में नयी कहानी आन्दोलन सामने आया, जिसने व्यक्ति के जीवन, उसके सामाजिक परिवेश और मानसिक संघर्षों को केन्द्र में रखा। नयी कहानी के प्रभाव और उसके प्रति प्रतिक्रिया के रूप में आगे चलकर अकहानी, सचेतन कहानी तथा समान्तर कहानी जैसे अनेक आन्दोलन भी विकसित हुए।

जनवादी कहानी ने समाज के श्रमिक, किसान तथा शोषित वर्ग के संघर्षों को साहित्य का विषय बनाया और सामाजिक परिवर्तन की चेतना को मजबूत किया। इसके साथ ही भारतीय समाज में लंबे समय से उपेक्षित दलित वर्ग ने भी अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति देने के लिए दलित कहानी की परम्परा विकसित की। इसी प्रकार महिलाओं के जीवनानुभवों और समस्याओं को सामने लाने के लिए स्त्री लेखिकाओं ने स्त्री-केन्द्रित कहानियों का सृजन किया।

हिन्दी कहानी का वर्गीकरण केवल साहित्यिक आधार पर ही नहीं, बल्कि समाज की बदलती परिस्थितियों के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। विभिन्न कहानी आन्दोलनों ने कथा-वस्तु, दृष्टिकोण तथा शिल्प में नए प्रयोग किए जिससे हिन्दी कहानी का रूप अधिक व्यापक और समृद्ध हुआ। इसलिए कहानी के वर्गीकरण का अध्ययन करते समय इन सभी सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों को समग्र रूप में समझना आवश्यक है।

K4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: हिंदी साहित्य में कहानी एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय गद्य विधा है, जो जीवन के अनुभवों, भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को संक्षिप्त तथा प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत करती है।

प्रश्न 2 का उत्तर: कहानी का वर्गीकरण इसलिए आवश्यक है ताकि उसकी प्रकृति, स्वरूप, प्रवृत्तियों और विभिन्न प्रकारों को व्यवस्थित रूप से समझा जा सके।

प्रश्न 3 का उत्तर: धार्मिक कहानियाँ धर्म, नैतिकता, आस्था और सदाचार से संबंधित होती हैं तथा मनुष्य को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

प्रश्न 4 का उत्तर: हिंदी साहित्य में यथार्थवादी कहानी के विकास का प्रमुख श्रेय मुंशी प्रेमचंद को दिया जाता

है।

प्रश्न 5 का उत्तरः द्विवेदी युग में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई, जिसे हिंदी की पहली मौलिक कहानी माना जाता है।

प्रश्न 6 का उत्तरः प्रेमचंदोत्तर काल में कहानीकारों ने मनुष्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष और आंतरिक भावनाओं को कहानी का महत्वपूर्ण विषय बनाना शुरू किया।

5 4.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंजः इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुरः सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानीः उद्भव और विकास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नईः दिल्लीः राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडाः मयूर पेपर बैक्स
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन
- रश्मि, डॉ. इंदु (1992). नई कहानी का स्वरूप विवेचन. दिल्लीः सन्मार्ग प्रकाशन
- पाण्डेय, गणेश प्रसाद (1999). आठवें दशक के हिंदी कहानी में ग्रामीण जीवन. नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन
- चौबे, देवेन्द्र (2001). समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, नई दिल्लीः प्रकाशन संस्थान

M4.9 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. कहानी के वर्गीकरण की आवश्यकता क्यों मानी जाती है?
2. हिंदी कहानी के प्रारम्भिक विकास में पत्र-पत्रिकाओं की क्या भूमिका रही?
3. चरित्र प्रधान कहानी की प्रमुख विशेषता क्या होती है?
4. वातावरण प्रधान कहानी में लेखक किस तत्व को अधिक महत्व देता है?
5. कथानक प्रधान कहानी और चरित्र प्रधान कहानी में क्या अंतर है?
6. कार्य प्रधान कहानियों में सामान्यतः किन विषयों को स्थान मिलता है?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. हिंदी कहानी के विकास में प्रारम्भिक दौर की कहानियों की भूमिका का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. चरित्र प्रधान कहानियों की विशेषताओं का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।
3. वातावरण प्रधान कहानियों की प्रकृति तथा उनके साहित्यिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. कथानक प्रधान कहानियों के स्वरूप और उनकी प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. कार्य प्रधान कहानियों की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उनके विषय और स्वरूप पर चर्चा कीजिए।

6. हिंदी कहानी के वर्गीकरण को सामाजिक, साहित्यिक और कलात्मक दृष्टि से स्पष्ट कीजिए।

****

इकाई-5 'चीफ की दावत' (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 कहानीकार 'भीष्म साहनी' का परिचय
5.4 भीष्म साहनी: व्यक्तित्व और जीवन दर्शन
5.5 चीफ की दावत का सार
5.6 'चीफ की दावत' कहानी की समीक्षा
5.7 सारांश
5.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
5.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- भीष्म साहनीके जीवन, व्यक्तित्व तथा साहित्यिक योगदान के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भीष्म साहनी की रचनात्मक सृजनता, उनकी भाषा-शैली तथा सामाजिक सरोकारों से परिचित होंगे।
- 'चीफ की दावत' कहानी के कथानक, पात्रों और घटनाओं के क्रम को विस्तार से समझेंगे।
- कहानी के माध्यम से मध्यवर्गीय मानसिकता, दिखावे की प्रवृत्ति तथा सामाजिक विडंबनाओं को जान सकेंगे।
- कहानी में निहित व्यंग्य, यथार्थवाद तथा सामाजिक आलोचना के तत्वों को पहचानकर उनके महत्व को समझेंगे।
- इस कहानी से प्राप्त नैतिक मूल्यों, सामाजिक संदेश तथा जीवन-उपयोगी शिक्षाओं को जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित होंगे।

5.2 प्रस्तावना

भीष्म साहनी हिंदी साहित्य के प्रमुख कथाकार, नाटककार एवं उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं तथा मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी भाषा सरल, सहज एवं संवादात्मक है, जिससे पाठक उनके साहित्य से सहज रूप से जुड़ जाता है। भीष्म साहनी की रचनात्मक सृजनता में सामाजिक चेतना, यथार्थवाद तथा मानवीय मूल्यों का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जो उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। प्रस्तुत इकाई में उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'चीफ की दावत' का अध्ययन किया जाएगा। यह कहानी मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता, दिखावे की प्रवृत्ति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की होड़ का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। कहानी का कथानक एक ऐसे परिवार के इर्द-गिर्द विकसित होता है, जो एक उच्च अधिकारी को प्रभावित करने के उद्देश्य से अपनी वास्तविक स्थिति को छिपाकर आडंबर और कृत्रिमता का सहारा लेता है। इस प्रकार लेखक ने अत्यंत सूक्ष्मता से यह दिखाया है कि सामाजिक दबाव और प्रतिष्ठा की लालसा किस प्रकार

व्यक्ति को अपनी वास्तविकता से दूर कर देती है।

इस इकाई के अंतर्गत कहानी के कथानक, पात्रों एवं घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाएगा, जिससे उसकी मूल भावना को स्पष्ट रूप से समझा जा सके। साथ ही कहानी की समीक्षा के विविध पक्षों-जैसे कथावस्तु, चरित्र-चित्रणतथा निहित संदेश-पर विस्तार से विचार किया जाएगा। विशेष रूप से इसमें निहित व्यंग्य, यथार्थवाद तथा सामाजिक आलोचना को समझने का प्रयास किया जाएगा जो इस कहानी को एक प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक कृति बनाते हैं। अत: यह इकाई न केवल एक उत्कृष्ट साहित्यिक रचना से परिचित कराएगी बल्कि पाठकों को सामाजिक मूल्यों, सादगी, आत्मसम्मान तथा वास्तविक जीवन की महत्ता को समझने की प्रेरणा भी प्रदान करेगी। इस प्रकार यह इकाई ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ जीवनोपयोगी दृष्टिकोण के विकास में भी सहायक सिद्ध होगी।

5.3 कहानीकार 'भीष्म साहनी' का परिचय

हिन्दी की प्रगतिशील साहित्यिक धारा में भीष्म साहनी का नाम अत्यंत सम्मान और गंभीरता के साथ लिया जाता है। वे उन रचनाकारों में हैं जिन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम न मानकर उसे समाज की वास्तविकताओं को उजागर करने का सशक्त साधन बनाया। उनके उपन्यास, कहानियाँ और नाटक सामाजिक जीवन के गहरे अनुभवों से उपजे हुए हैं जिनमें मनुष्य के संघर्ष, पीड़ा, विसंगतियाँ और आशाएँ अत्यंत प्रभावी रूप में व्यक्त हुई हैं। भीष्म साहनी की रचनात्मक दृष्टि मूलत: यथार्थवादी और मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत है। उन्होंने समाज में व्याप्त वर्गभेद, आर्थिक असमानता, शोषण, सामंती मानसिकता और पूँजीवादी प्रवृत्तियों का गहन विश्लेषण किया है। उनके साहित्य में शोषित वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को विशेष स्थान मिला है। वे उन लेखकों में से हैं जिन्होंने आम आदमी के जीवन को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया।

उनकी रचनाओं का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष साम्प्रदायिकता का चित्रण है। उनका प्रसिद्ध उपन्यास तमस भारत-विभाजन की त्रासदी और उससे उत्पन्न सांप्रदायिक हिंसा का अत्यंत मार्मिक और यथार्थवादी दस्तावेज़ है। इसमें उन्होंने यह दिखाया है कि कैसे राजनीति और स्वार्थ के कारण आम जनता को हिंसा और नफरत की आग में झोंक दिया जाता है। यह कृति केवल एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं करती बल्कि मानवता के पक्ष में एक गहरी अपील भी प्रस्तुत करती है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को उजागर करने के साथ-साथ परिवर्तन की दिशा भी सुझाई है। उनके लेखन में क्रांति और मुक्ति की चेतना स्पष्ट दिखाई देती हैपरंतु यह क्रांति हिंसात्मक न होकर वैचारिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। वे राष्ट्रीय एकता और भावात्मक समरसता के पक्षधर थे और उनके साहित्य में यह भावना निरंतर प्रवाहित होती रहती है।

उनकी मानवतावादी दृष्टि उनके समस्त साहित्य की आत्मा है। उन्होंने धर्म, जाति, वर्ग या किसी भी प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठकर मनुष्य को केंद्र में रखा। समाज में फैली बुराइयों, अंधविश्वासों, धार्मिक कट्टरता और द्वेष की भावना की उन्होंने आलोचना की। उनके लेखन में भाईचारा, सह-अस्तित्व और सद्भाव की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यदि उनके जीवन की बात करें तो उनका जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिंडी (अब पाकिस्तान में) में हुआ था। उनके पिता हरबंश लाल साहनी एक व्यापारी थे और माता लक्ष्मी देवी धार्मिक एवं संस्कारी महिला थीं। उनके बड़े भाई बलराज साहनी हिन्दी सिनेमा के प्रसिद्ध अभिनेता थे। परिवार का वातावरण सादा, अनुशासित और संस्कारों से परिपूर्ण था जिसने भीष्म साहनी के व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित किया।

बचपन में वे अक्सर बीमार रहते थे, जिसके कारण वे अन्य बच्चों की तरह खेलकूद में भाग नहीं ले पाते थे। इस कारण उनका अधिकांश समय एकांत में बीतता था। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उनका बचपन कुछ हद तक एकाकी था और शायद यही एकांत उनके भीतर चिंतन और लेखन की प्रवृत्ति को विकसित करने

में सहायक बना। वे अपने आसपास की दुनिया को गहराई से देखते, सुनते और समझने का प्रयास करते थे।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल में हुई, जहाँ उन्हें अनुशासन और भारतीय संस्कृति का ज्ञान मिला। बाद में उन्होंने डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ाई की। सन् 1931 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1933 में इंटरमीडिएट पास किया। इसके बाद वे लाहौर गए, जहाँ से उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया। शिक्षा पूर्ण करने के बाद कुछ समय तक उन्होंने अपने पिता के साथ व्यापार में भी हाथ बँटाया। जब वे विद्यार्थी थे, उस समय भारत में स्वतंत्रता आंदोलन पूरे उभार पर था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में देशभर में आज़ादी की लहर फैल रही थी। लोग जुलूस निकालते, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध नारे लगाते और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते थे। इस आंदोलन का प्रभाव भीष्म साहनी के मन और विचारों पर पड़ा जिसने आगे चलकर उनके साहित्य को भी दिशा दी। आगे चलकर भीष्म साहनी का जुड़ाव प्रगतिशील लेखक आंदोलन से हुआ, जिससे उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता और अधिक स्पष्ट हुई। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाने और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का निरंतर प्रयास किया।

समग्र रूप में देखा जाए तो भीष्म साहनी का साहित्य सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्र है। उसमें जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और संभावनाओं का सटीक और संवेदनशील चित्रण मिलता है। उनका साहित्य न केवल अपने समय का दस्तावेज़ है बल्कि आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि उसमें व्यक्त मानवीय मूल्य और सामाजिक चेतना सार्वकालिक हैं।

5.4 भीष्म साहनी: व्यक्तित्व और जीवन दर्शन

भीष्म साहनी का व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली था, उतना ही उनका कृतित्व भी उल्लेखनीय और सशक्त रहा है। उनके समग्र साहित्य में अपने समय की सजीव सच्चाइयों का गहन और यथार्थपरक चित्रण मिलता है। उनके लेखन का मुख्य केन्द्र भारत के शहरों और महानगरों में रहने वाला मध्यमवर्गीय समाज है। इस वर्ग के सुख-दुःख, आशा-निराशा और संघर्षों का उन्होंने अत्यंत संवेदनशील और वास्तविक चित्रण किया है। सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को उन्होंने प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया जिसके कारण उनकी रचनाएँ उनके व्यक्तित्व की ही तरह दृढ़ और प्रभावशाली बन पड़ी हैं।

उन्होंने अपने लेखन के संदर्भ में स्पष्ट किया है कि साहित्य उनके लिए जीवन से अलग कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। उनका मानना था कि जैसे उनका जीवन सरल और सीधा है वैसे ही उनके साहित्यिक अनुभव भी हैं। वे कहते हैं कि उनकी रचनाएँ उनके अपने अनुभवों, संस्कारों, व्यक्तित्व और दृष्टिकोण का समन्वित रूप हैं। यदि इन तत्वों में से कोई एक भी असत्य हो, तो पूरी रचना की सत्यता संदिग्ध हो जाती है। उनके अनुसार प्रत्येक रचना एक पूर्ण इकाई होती है, जिसमें विचार, शिल्प और भाषा का गहरा सामंजस्य होता है और इन्हें अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।

भीष्म साहनी की हर रचना अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। उनकी रचनाओं में सामाजिक और राजनीतिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने विशेष रूप से पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न विसंगतियों और विकृतियों का आलोचनात्मक और यथार्थवादी चित्रण किया है। जीवन की कठोर सच्चाइयों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का उन्होंने ईमानदार और निरंतर प्रयास किया। उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, निबंध, जीवनी तथा बाल साहित्य जैसे विविध क्षेत्रों में लेखन किया। उनके प्रमुख उपन्यासों में 'झरोखे' (1967), 'कड़ियाँ' (1970), 'तमस' (1973), 'बसंती' (1980) और 'मय्यादास की माड़ी' (1988) उल्लेखनीय हैं। कहानी संग्रहों में 'भाग्यरेखा' (1953), 'पहला पाठ' (1956), 'पटुरिया' (1973), 'शोभायात्रा' (1981) और 'निशाचर' (1983) प्रमुख हैं।

नाटकों के क्षेत्र में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण है जिनमें 'कबीरा खड़ा बाजार में' (1981), 'हानूश'

(1977) और 'माधवी' (1984) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'भाई बालराज' (1981) नामक जीवनी, 'अपनी बात' (1981) नामक निबंध संग्रह तथा 'गुलेल का खेल' (1980) जैसा बाल साहित्य भी रचा। वे 'नई कहानियाँ' पत्रिका के संपादन से भी जुड़े रहे। अनुवाद के क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा, जहाँ उन्होंने लगभग बीस रूसी कृतियों का हिंदी में रूपांतरण किया, जिनमें टॉल्स्टॉय की रचनाएँ भी शामिल हैं। भीष्म साहनी का साहित्य उनके जीवनानुभवों, सामाजिक चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण का सशक्त प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. भीष्म साहनी की लेखन की क्या विशेषता है?

प्रश्न 2. ''चीफ की दावत'' कहानी में निहित मूल संवेदना क्या है?

प्रश्न 3. भीष्म साहनी की रचनात्मक दृष्टि किस प्रकार की है?

प्रश्न 4. भीष्म साहनी का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न 5. भीष्म साहनी द्वारा रचित चारउपन्यासों का नाम लिखिए।

कहानीकार भीष्म साहनी हिंदी साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण रचनाकार माने जाते हैं। उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनकी कहानियों का मुख्य परिवेश रावलपिंडी क्षेत्र रहा है, जहाँ उन्होंने हिंदू, मुसलमान और सिख समुदायों की साझा संस्कृति का अत्यंत सजीव और यथार्थ चित्रण किया है। उनका पहला कहानी-संग्रह 'भाग्यरेखा' सन् 1953 में प्रकाशित हुआ था, जो यथार्थवादी दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में ''नया मकान'', ''चीफ की दावत'', ''भटकती राख'', ''अमृतसर आ गया है'' आदि शामिल हैं।

'वाङ्चू' उनकी एक चर्चित कहानी है, जिसमें एक बौद्ध भिक्षु के माध्यम से निम्नवर्गीय जीवन का संवेदनशील चित्रण किया गया है। भीष्म साहनी ने समाज के वंचित वर्गों को अत्यंत सहानुभूति और गहराई से प्रस्तुत किया है। 'सागमीट' कहानी में उन्होंने समकालीन सामाजिक परिस्थितियों को उजागर किया है जिसमें सुमित्रा नामक पात्र के माध्यम से वर्गभेद और मानसिकता पर तीखा व्यंग्य किया गया है।

'चीफ की दावत' उनकी अत्यंत प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यंग्यात्मक कहानी है, जिसमें मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों और दिखावे को सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ''अमृतसर आ गया है'' कहानी में सांप्रदायिकता के संदर्भ में मानवीय संवेदनाओं पर गहरा प्रहार किया गया है। इसमें रेल यात्रा के दौरान यात्रियों की बातचीत के माध्यम से मनुष्य की क्रूरता और विडंबना को उभारा गया है।

''भटकती राख'' में अतीत और वर्तमान के संबंधों को दर्शाया गया है। ''बूट'' कहानी निम्नवर्ग की संघर्षशीलता और जीवटता का चित्रण करती है, जबकि ''गुलमुच्छे'' एक ऐसे पुराने कॉमरेड की कहानी है जो समय के बदलाव के साथ अपने विचार बदलकर व्यवसाय की ओर मुड़ जाता है।

''धरोहर'' कहानी में एक बुजुर्ग व्यक्ति द्वारा लगाए गए आम के पेड़ के माध्यम से पीढ़ियों के बीच के भावनात्मक अंतर और स्वार्थ को दर्शाया गया है। ''निशाचर'' कहानी-संग्रह में मानवीय संवेदनाओं और रिश्तों का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। इनकी कहानियों का केंद्र किसी विशेष व्यक्ति के बजाय संपूर्ण मानवता है। भीष्म साहनी की कहानियों में सामान्य मनुष्य के संघर्ष, पीड़ा और जीवन की वास्तविकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनकी दृष्टि प्रगतिशील और मानवतावादी रही है। उनकी भाषा सरल, सहज और प्रवाहमयी है जिसमें उर्दू और पंजाबी शब्दों का सुंदर समावेश मिलता है, जिससे उनकी अभिव्यक्ति और भी प्रभावशाली बन जाती है।

उपन्यास साहित्य

भीष्म साहनी ने उपन्यास विधा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके उपन्यासों में सामाजिक संघर्ष, मानवीय संबंधों की जटिलता और ऐतिहासिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं- ''झरोखे'' (1967), ''कड़ियाँ'' (1970), ''तमस'' (1974), ''बसंती'' (1980), ''मय्यादास की माड़ी'' (1987)।

''झरोखे'' उनका पहला उपन्यास है, जिसमें मध्यवर्गीय जीवन और पारिवारिक वातावरण का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें पीढ़ियों के संघर्ष को भी दर्शाया गया है, जहाँ पुरानी मान्यताओं और नई सोच के बीच टकराव दिखाई देता है।

''कड़ियाँ'' उपन्यास में महेंद्र और प्रमिला के वैवाहिक जीवन के टूटने की कहानी प्रस्तुत की गई है। महेंद्र आधुनिक विचारों का प्रतिनिधि है, जबकि प्रमिला पारंपरिक संस्कारों से बंधी हुई है। इस टकराव के कारण उनके संबंधों में दरार आती है और अंततः परिवार विखंडित हो जाता है। ''तमस'' उनका सबसे चर्चित और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास है। इसमें भारत विभाजन के दौरान हुए सांप्रदायिक दंगों की भयावहता का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार धार्मिक उन्माद के कारण आम लोग हिंसा का शिकार बनते हैं जबकि सत्ता और प्रभावशाली वर्ग सुरक्षित रहते हैं। इसमंआ अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति को भी उजागर किया गया है।

''बसंती'' उपन्यास में महानगर दिल्ली के निम्नवर्गीय जीवन का चित्रण है। इसमें बसंती नामक नायिका के माध्यम से शोषित स्त्री के संघर्ष, विद्रोह और आत्मनिर्भर बनने की आकांक्षा को दर्शाया गया है। यह उपन्यास यह भी दिखाता है कि आज़ादी के बाद भी गरीब वर्ग को वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिल पाई है। ''मय्यादास की माड़ी'' में औपनिवेशिक काल के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों को एक परिवार की चार पीढ़ियों की कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसमें अंग्रेजी शासन के प्रभाव, रियासतों के पतन और सामाजिक संरचना के बदलाव का विस्तृत चित्रण मिलता है।

समग्र रूप से देखा जाए तो भीष्म साहनी का साहित्य आम आदमी के जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष और संवेदनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है। उन्होंने न केवल सामाजिक यथार्थ को उजागर किया बल्कि उसे गहराई से अनुभव कर अपनी रचनाओं में जीवंत रूप दिया। उनकी लेखनी आज भी सामाजिक परिवर्तन और मानवीय मूल्यों के प्रति प्रेरणा देती है।

5.5 चीफ की दावत का सार

भीष्म साहनीकी प्रसिद्ध कहानी चीफ़ की दावत (1957) आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता, सामाजिक दिखावे और पारिवारिक संबंधों की विडंबनाओं को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी में लेखक ने एक साधारण-सी घटना-एक दावत-के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि आधुनिक जीवन की महत्वाकांक्षाएँ किस प्रकार मनुष्य को अपने ही संबंधों से दूर कर देती हैं। कहानी में एक ओर नौकरी में उन्नति पाने की तीव्र आकांक्षा है, तो दूसरी ओर माँ का निस्वार्थ प्रेम, त्याग और संवेदनशीलता भी दिखाई देती है।

कहानी का आरम्भ ही एक व्यस्त और तनावपूर्ण वातावरण से होता है। मिस्टर शामनाथ अपने घर में अपने दफ़्तर के बड़े अधिकारी, अर्थात् चीफ़, के सम्मान में दावत का आयोजन कर रहे हैं। घर में सुबह से ही तैयारियों की हलचल है। फर्नीचर की सजावट, मेज़-कुर्सियों की व्यवस्था, खाने-पीने की तैयारी और मेहमानों के स्वागत की चिंता ने पूरे घर को व्यस्त बना दिया है। लेखक इस स्थिति को बहुत सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं- ''आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ़ की दावत थी।'' यह पंक्ति कहानी की पूरी पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर देती है। इस दावत

का उद्देश्य केवल आतिथ्य नहीं है, बल्कि इसके पीछे शामनाथ की महत्वाकांक्षा छिपी हुई है। उन्हें विश्वास है कि यदि उनका अधिकारी उनसे प्रसन्न हो गया तो उनके पदोन्नति के अवसर बढ़ सकते हैं।

तैयारियों के बीच अचानक शामनाथ को एक ऐसी बात याद आती है, जिस पर पहले किसी का ध्यान नहीं गया था। घर में उनकी वृद्ध माँ भी रहती हैं। यह विचार आते ही वह चिंतित हो उठते हैं कि कहीं मेहमानों के सामने माँ का व्यवहार उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित न कर दे। वह अपनी पत्नी से इस विषय में बात करते हैं और सोचने लगते हैं कि माँ का क्या किया जाए। इस प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि शामनाथ अपनी माँ को परिवार के सम्मानित सदस्य के रूप में नहीं, बल्कि एक संभावित समस्या के रूप में देखने लगे हैं। जब वह अपनी माँ को इस विषय में बताते हैं तो माँ अत्यंत सरलता और विनम्रता से सब कुछ स्वीकार कर लेती हैं। उनके मन में अपने बेटे के प्रति केवल प्रेम और शुभकामनाएँ हैं। वह किसी भी प्रकार से बेटे की प्रतिष्ठा में बाधा नहीं बनना चाहतीं। जब शामनाथ उन्हें जल्दी भोजन करने के लिए कहते हैं, तब माँ शांत स्वर में कहती हैं- ''आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम जो जानते हो, माँस-मछली बने तो मैं कुछ नहीं खाती।'' इस कथन से माँ के धार्मिक संस्कार और सादगी का परिचय मिलता है। वह अपने जीवन के सिद्धांतों को निभाते हुए भी बेटे की सुविधा का ध्यान रखती हैं।

लेकिन शामनाथ का व्यवहार माँ के प्रति उतना संवेदनशील नहीं है। वह बार-बार इस बात की चिंता करते रहते हैं कि कहीं माँ का साधारण और ग्रामीण व्यवहार उनके आधुनिक वातावरण में असंगत न लगे। इसलिए वह माँ को बैठने के ढंग से लेकर कपड़ों तक के बारे में निर्देश देने लगते हैं। एक स्थान पर वह माँ को समझाते हुए कहते हैं- ''यूँ नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ा कर नहीं बैठते। यह खाट नहीं हैं।'' यह वाक्य उस मानसिकता को उजागर करता है जिसमें व्यक्ति अपनी सामाजिक छवि को बनाए रखने के लिए अपने ही परिजनों की सहजता और सरलता को भी स्वीकार नहीं कर पाता।

कहानी में माँ के त्याग का सबसे मार्मिक संकेत तब मिलता है जब गहनों की चर्चा होती है। माँ सहज भाव से बताती है- ''चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा? तुम तो जानते हो, सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए।'' इस वाक्य में माँ के जीवन भर के त्याग का पूरा इतिहास छिपा हुआ है। उन्होंने अपने बेटे की शिक्षा के लिए अपने गहने तक बेच दिए थे। एक माँ के लिए गहने केवल आभूषण नहीं होते, बल्कि उसके जीवन की स्मृतियों और भावनाओं से जुड़े होते हैं। फिर भी उन्होंने बिना किसी शिकायत के अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य के लिए सब कुछ त्याग दिया।

दावत का समय निकट आते-आते माँ के मन में घबराहट बढ़ने लगती है। वह स्वयं को अशिक्षित समझती हैं और उन्हें यह चिंता सताने लगती है कि यदि चीफ़ ने उनसे कुछ पूछ लिया तो वह क्या उत्तर देंगी। वह अपने बेटे से कहती हैं- ''मैं न पढ़ी, न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी।'' इस कथन से माँ की विनम्रता और आत्मसंकोच का भाव स्पष्ट हो जाता है। वह नहीं चाहतीं कि उनकी वजह से बेटे को किसी प्रकार की असुविधा हो।

दूसरी ओर बैठक में दावत पूरे उत्साह के साथ चल रही होती है। चीफ़ और अन्य मेहमान बातचीत और पेय-पान में व्यस्त हैं। घर की सजावट और व्यवस्था देखकर चीफ़ प्रसन्न दिखाई देता है। इससे शामनाथ का आत्मविश्वास और बढ़ जाता है। उन्हें लगता है कि उनकी सारी मेहनत सफल हो रही है। लेकिन कहानी का सबसे महत्वपूर्ण और नाटकीय प्रसंग तब आता है जब मेहमान भोजन के लिए बरामदे की ओर बढ़ते हैं। वहाँ पहुँचकर सभी देखते हैं कि माँ कुर्सी पर बैठी-बैठी सो गई हैं और उन्हें गहरी नींद आ गई है। यह दृश्य देखकर शामनाथ अत्यंत शर्मिंदा हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि उनकी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी।

लेकिन इस स्थिति में चीफ़ का व्यवहार अत्यंत मानवीय दिखाई देता है। वह माँ को देखकर सहानुभूति प्रकट करता है और स्थिति को सहज बना देता है। इसके बाद वह माँ से हाथ मिलाने का प्रयास करता है और

उनसे बातचीत करता है। माँ इस औपचारिकता से घबरा जाती हैं और ठीक से उत्तर भी नहीं दे पातीं, जिससे कुछ लोग हँस पड़ते हैं। फिर भी चीफ़ इस स्थिति को हल्के ढंग से लेकर वातावरण को सहज बनाए रखता है। जब चीफ़ को यह पता चलता है कि माँ गाँव की रहने वाली हैं, तो वह उनसे कोई लोकगीत सुनाने का आग्रह करता है। माँ संकोच के बावजूद एक पुराना विवाह गीत गाती हैं-

''हरिया नी माए, हरिया नी भैणे

हरिया ते भागी भरिया है।''

इस गीत के माध्यम से ग्रामीण जीवन की सरलता और सांस्कृतिक परंपरा की झलक मिलती है। मेहमानों को यह गीत अच्छा लगता है और वे तालियाँ बजाते हैं। इस प्रकार जिस माँ को शामनाथ अपनी प्रतिष्ठा के लिए बाधा समझ रहे थे वही माँ उस दावत का सबसे आकर्षक केंद्र बन जाती हैं।

इसके बाद फुलकारी का प्रसंग आता है। जब चीफ़ ग्रामीण हस्तकला के बारे में पूछता है, तब शामनाथ बताते हैं कि पंजाब की स्त्रियाँ फुलकारी बनाती हैं। माँ अपनी पुरानी फुलकारी दिखाती हैं, जिसे देखकर चीफ़ अत्यंत प्रसन्न हो जाता है। उत्साह में आकर शामनाथ यह वादा कर देते हैं कि माँ उनके लिए एक नई फुलकारी बनाएँगी। माँ संकोचपूर्वक कहती हैं- ''अब मेरी नज़र कहाँ है बेटा! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी?'' यह कथन उनकी शारीरिक असमर्थता को दर्शाता है, लेकिन फिर भी वह बेटे की इच्छा के आगे चुप हो जाती हैं।

दावत समाप्त होने के बाद माँ चुपचाप अपनी कोठरी में चली जाती हैं और रोने लगती हैं। उनके आँसू इस बात के प्रतीक हैं कि उन्होंने अपने ही घर में उपेक्षा और अपमान का अनुभव किया है। देर रात जब शामनाथ नशे में माँ के पास आते हैंतो वह अत्यंत प्रसन्न होते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि दावत सफल रही है और चीफ़ उनसे प्रभावित हुआ है। लेकिन इसी समय माँ अपने मन की बात व्यक्त करती हैं और कहती हैं- ''बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।''

यह वाक्य माँ के मन की गहरी पीड़ा को व्यक्त करता है। वह अब अपने बेटे के घर में बोझ बनकर नहीं रहना चाहतीं और शेष जीवन भगवान के नाम में बिताना चाहती हैं। लेकिन जब शामनाथ को यह याद आता है कि उन्होंने चीफ़ से फुलकारी बनवाने का वादा किया है, तो वह माँ को जाने से रोकने का प्रयास करते हैं। जब माँ को यह पता चलता है कि बेटे की तरक्की इस बात से जुड़ी हो सकती है, तो वह तुरंत अपना निर्णय बदल देती हैं और अपने कमजोर शरीर के बावजूद फुलकारी बनाने के लिए तैयार हो जाती हैं।

इस प्रकार यह कहानी आधुनिक समाज की उस मानसिकता पर तीखा व्यंग्य करती है जिसमें व्यक्ति अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और स्वार्थ के लिए अपने ही माता-पिता की भावनाओं को अनदेखा कर देता है। माँ का चरित्र निस्वार्थ प्रेम, त्याग और करुणा का प्रतीक है, जबकि शामनाथ आधुनिक मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षा और दिखावे का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानी अंततः पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि सच्ची महानता बाहरी आडंबर में नहीं बल्कि मानवीय संवेदनाओं और पारिवारिक संबंधों के सम्मान में निहित है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में मुख्य रूप से तीन पात्रों-शामनाथ, उसकी पत्नी और उसकी वृद्ध माँ-के माध्यम से मानवीय स्वभाव की विभिन्न परतें उभरकर सामने आती हैं। कथा का मूल केंद्र शामनाथ का व्यक्तित्व है, जो स्वार्थ, दिखावे और अवसरवादिता से भरा हुआ है। इसके विपरीत, उसकी बूढ़ी माँ ममता, त्याग और निस्वार्थ प्रेम की प्रतीक बनकर सामने आती है, जिसे अपने ही बेटे द्वारा उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त परिचय

शामनाथः एक साधारण नौकरी करने वाला व्यक्ति, जो अपने अधिकारी को प्रसन्न करने के लिए हर

संभव प्रयास करता है और इसी कारण वह आडंबर का सहारा लेता है।

शामनाथ की माँ: एक भोली-भाली, अशिक्षित और उम्रदराज महिला, जो अपने बेटे से स्नेह करती है, लेकिन वही बेटा उसे अपनी उन्नति में बाधा समझने लगता है।

शामनाथ की पत्नी: वह अपने पति के साथ मिलकर बाहरी दिखावे को महत्व देती है और दावत की तैयारी में उसका पूरा साथ देती है।

चीफ (बॉस): उच्च पद पर आसीन अधिकारी, जिसकी खातिरदारी के बहाने कहानी में चाटुकारिता और स्वार्थ का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

5.6 'चीफ की दावत' कहानी की समीक्षा

हिंदी साहित्य में प्रगतिशील परंपरा के जिन लेखकों ने समाज की वास्तविक समस्याओं को गहरी संवेदना और आलोचनात्मक दृष्टि के साथ अभिव्यक्त किया है उनमें भीष्म साहनी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में सामान्य मनुष्य के जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष, सामाजिक विडंबनाओं और बदलते जीवन मूल्यों को अत्यंत सहज किंतु प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। भीष्म साहनी का कथा संसार मनुष्य और समाज के संबंधों की जटिलताओं को उजागर करता है। उनके साहित्य में जीवन के यथार्थ का ऐसा चित्र मिलता है जो पाठक को सोचने के लिए बाध्य करता है।

भीष्म साहनी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत कहानी लेखन से की थी। उनकी कहानियों में समाज के विविध वर्गों के जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। वे विशेष रूप से मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता, उसकी महत्वाकांक्षाओं, उसके अंतर्विरोधों और उसकी कमजोरियों को उजागर करने में सफल रहे हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'चीफ की दावत' इसी प्रकार की एक अत्यंत प्रभावशाली कहानी है, जिसमें आधुनिक मध्यवर्गीय मानसिकता की विडंबनाओं को उजागर किया गया है। कहानी के स्वरूप और उसके सामाजिक महत्व को स्पष्ट करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है- ''कहानी जीवन के टुकड़े में निहित 'अंतर्विरोध', 'द्वंद्व', 'संक्रांति' अथवा 'क्राइसिस' को पकड़ने की कोशिश करती है।''

यह कथन 'चीफ की दावत' पर पूरी तरह लागू होता है। इस कहानी में जीवन के उस अंतर्विरोध को प्रस्तुत किया गया है जो आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता में दिखाई देता है। एक ओर व्यक्ति आधुनिकता, उन्नति और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है तो दूसरी ओर उसी प्रक्रिया में वह अपने पारिवारिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं से दूर होता चला जाता है।

इस कहानी का केंद्रीय पात्र शामनाथ है, जो एक दफ्तर में काम करने वाला महत्वाकांक्षी मध्यवर्गीय युवक है। उसकी सबसे बड़ी इच्छा अपने पद और प्रतिष्ठा को बढ़ाना है। वह अपने विदेशी अधिकारी को प्रसन्न करने के लिए अपने घर पर दावत का आयोजन करता है। यह आयोजन उसके लिए केवल सामाजिक कार्यक्रम नहीं बल्कि अपनी तरक्की का साधन है। इसी कारण वह इस कार्यक्रम की तैयारी में अत्यधिक सावधानी और चिंता दिखाता है। दावत की तैयारी का दृश्य कहानी में बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। घर को सजाने और व्यवस्थित करने के क्रम में घर के ऐसे सामान को छिपाया जाने लगता है जो दिखने में अच्छा नहीं लगता। इसी दौरान अचानक शामनाथ के सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है-उसकी बूढ़ी मां। कहानी में यह प्रसंग अत्यंत व्यंग्यात्मक और मार्मिक रूप में प्रस्तुत हुआ है- ''कुर्सियां, मेज, तिपाइयां, नैपकिन, फूल बरामदे में पहुंच गए। ड्रिंक का इंतजाम कर दिया गया। घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। अचानक शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई-मां का क्या होगा?''

यह प्रसंग केवल एक स्थिति का वर्णन नहीं है, बल्कि आधुनिक मध्यवर्गीय मानसिकता का गहरा व्यंग्य है। जिस मां ने अपने बेटे को पाल-पोसकर बड़ा किया वही मां अब उसके लिए एक समस्या बन जाती है। यहां

मां को एक जीवित व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि 'फालतू सामान' की तरह देखा जाने लगता है। यह स्थिति आधुनिक समाज की संवेदनहीनता को उजागर करती है। भीष्म साहनी ने इस कहानी में मध्यवर्गीय समाज की प्रदर्शन प्रियता और कृत्रिमता को भी उजागर किया है। आधुनिक मध्यवर्ग अपनी वास्तविकता को छिपाकर एक ऐसी छवि प्रस्तुत करना चाहता है जो उसे अधिक प्रतिष्ठित और आधुनिक दिखा सके। इस प्रक्रिया में वह अपने पारंपरिक जीवन और संस्कारों से दूरी बनाने लगता है।

डॉ. गोपाल राय ने इस कहानी के संदर्भ में लिखा है- ''इस कहानी में मुख्य रूप से उस सांस्कृतिक ह्रास का अंकन किया गया है, जो मध्य वर्ग में औपनिवेशिक प्रभाव की देन था। पदोन्नति के लिए बड़े अधिकारी की बेहद निम्न स्तर की चाटुकारिता, यूरोपीय संस्कृति की भौड़ी नकल की चेष्टा, झूठी शान का दयनीय प्रदर्शन तथा पुरानी पीढ़ी के प्रति अमानवीय व्यवहार आदि मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों का सशक्त चित्रण इस कहानी में हुआ है।'' यह कथन स्पष्ट करता है कि कहानी केवल व्यक्तिगत संबंधों की समस्या नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। आधुनिक मध्यवर्गीय समाज पश्चिमी जीवन शैली की नकल करने की कोशिश में अपनी मूल सांस्कृतिक पहचान से दूर होता जा रहा है।

कहानी में शामनाथ का चरित्र इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपनी मां को इसलिए छिपाना चाहता है क्योंकि उसे लगता है कि उसकी सादगी और ग्रामीणता उसके आधुनिक जीवन की छवि को खराब कर सकती है। वह अपनी मां को मेहमानों के सामने आने से रोकने के लिए तरह-तरह की योजनाएँ बनाता है। नामवर सिंह ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है- ''चीफ की दावत' में अपनी निरक्षर और बूढ़ी मां ही एक समस्या बन गयी जैसे घर का 'फालतू सामान', बल्कि सामान से भी बड़ी समस्या।'' यह कथन कहानी की विडंबना को पूरी तरह उजागर करता है। आधुनिकता के मोह में फंसा व्यक्ति अपने ही जीवन की जड़ों से कटता जा रहा है।

कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जब चीफ अचानक माँ के सामने आ जाता है। प्रारंभ में यह स्थिति शामनाथ के लिए अत्यंत असहज होती है, लेकिन धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो जाता है कि चीफ को मां का सरल स्वभाव और उसकी बनाई हुई फुलकारी बहुत पसंद आती है। यहां कहानीकार एक गहरी विडंबना प्रस्तुत करते हैं। जिस मां को शामनाथ अपनी प्रतिष्ठा के लिए बाधा समझ रहा था, वही मां उसकी सफलता का कारण बन जाती है। यह स्थिति मध्यवर्गीय मानसिकता की दोहरी प्रवृत्ति को उजागर करती है। मधु सिंह ने इस प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''शामनाथ मां को इस घर से उस घर तक छिपाता फिरता है। नवीनता यह है कि मां इस पर नाराज नहीं क्योंकि वह भी अपने बच्चे के भविष्य के लिए चिंतित है।'' यहां माँ का चरित्र भारतीय मातृत्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने बेटे के व्यवहार से दुखी होने के बावजूद उसके भविष्य की चिंता करती है।

कहानी का एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग वह है जब मां अपने गहनों के बारे में बताती है कि वे बेटे की पढ़ाई में बिक गए थे। इस पर शामनाथ की प्रतिक्रिया अत्यंत कठोर और असंवेदनशील होती है- ''यह कौन सा नया राग छेड़ दिया मां! सीधा कह दो नहीं है जेवर, बस। इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है? जो जेवर बिका, कुछ बनकर ही आया हूं, निरा लडूरा तो नहीं लौट आया।'' यह संवाद आधुनिक पीढ़ी की संवेदनहीनता का प्रतीक है। यहां पुत्र अपनी मां के त्याग को भी एक प्रकार के आर्थिक लेन-देन के रूप में देखने लगता है।

इस कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष जीवन मूल्यों के विघटन से जुड़ा हुआ है। आधुनिक समाज में भौतिक सफलता को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य मान लिया गया है। इस कारण व्यक्ति अपने नैतिक और पारिवारिक दायित्वों को भी भूलने लगता है। इस संदर्भ में वेनवर्ग और शेयेत का कथन उल्लेखनीय है- ''सामाजिक परिवर्तन आधुनिक संसार के हृदय में निवास करता है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों में भी उतनी ही तेजी से विघटन आता है।''

'चीफ की दावत' इसी सामाजिक परिवर्तन का साहित्यिक चित्रण है। इसमें आधुनिक भौतिकवादी जीवन शैली के कारण उत्पन्न स्वार्थपरता और संवेदनहीनता को उजागर किया गया है। भारतीय संस्कृति में माता-पिता को अत्यंत सम्मान दिया गया है। उन्हें देवतुल्य माना जाता है किंतु आधुनिक जीवन की व्यस्तता और आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने इस मूल्य को कमजोर कर दिया है। कहानी में शामनाथ का व्यवहार इसी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। कहानी में मां का चरित्र अत्यंत करुण और संवेदनशील है। वह अपने बेटे की खुशी के लिए हर प्रकार का कष्ट सहने को तैयार है। उसकी यही भावना कहानी को अत्यंत मार्मिक बना देती है।

कहानी का अंत पाठक को गहराई से प्रभावित करता है। माँ अपने बेटे के लिए फुलकारी बनाने के लिए तैयार हो जाती है जबकि उसकी आंखें कमजोर हो चुकी हैं। इस स्थिति में मां के मन की पीड़ा और उसके प्रेम की गहराई दोनों एक साथ सामने आती हैं। वास्तव में 'चीफ की दावत' केवल एक परिवार की कहानी नहीं है बल्कि यह आधुनिक समाज की मानसिकता का प्रतीकात्मक चित्रण है। इसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार आधुनिकता और भौतिकता की दौड़ में मनुष्य अपने मूल मानवीय संबंधों को भूलता जा रहा है।

भीष्म साहनी की यह कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने समय में थी। आज के समाज में भी बुजुर्गों की उपेक्षा, पारिवारिक संबंधों में स्वार्थ और जीवन मूल्यों का विघटन एक गंभीर समस्या बन चुका है। 'चीफ की दावत' आधुनिक मध्यवर्गीय समाज का अत्यंत यथार्थ और मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी हमें केवल समाज की सच्चाई से परिचित नहीं कराती बल्कि हमें अपने जीवन मूल्यों पर पुनर्विचार करने के लिए भी प्रेरित करती है। भीष्म साहनी की यह रचना उनके कथा-साहित्य की संवेदनशीलता, सामाजिक दृष्टि और मानवीय करुणा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी कारण यह कहानी हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और लंबे समय तक पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करती रहेगी।

5.7 सारांश

भीष्म साहनी की रचना 'चीफ की दावत' पर आधारित यह इकाई विद्यार्थियों को उनके व्यक्तित्व, साहित्यिक योगदान और रचनात्मक दृष्टि से परिचित कराती है। इसमें उनके जीवन, लेखन शैली और सामाजिक सरोकारों को समझने का अवसर मिलता है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन, मानवीय संबंधों और सामाजिक विसंगतियों को सहज और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस इकाई के अंतर्गत कहानी 'चीफ की दावत' का सार प्रस्तुत किया गया है, जिसमें एक साधारण कर्मचारी शामनाथ की मानसिकता और उसके व्यवहार को केंद्र में रखा गया है। वह अपने अधिकारी को प्रभावित करने के लिए दिखावे और आडंबर का सहारा लेता है जबकि उसकी बूढ़ी माँ उपेक्षा और तिरस्कार का जीवन जीती है। कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्वार्थ और सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह किस प्रकार मानवीय मूल्यों को कमजोर कर देती है।

इसके साथ ही, कहानी की समीक्षा के जरिए पात्रों के स्वभाव, उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति और सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण किया गया है। शामनाथ, उसकी पत्नी और उसकी माँ जैसे पात्रों के माध्यम से लेखक ने पारिवारिक संबंधों में आए बदलाव और संवेदनहीनता को उजागर किया है। समग्र रूप से यह इकाई न केवल कहानी की समझ विकसित करती है, बल्कि विद्यार्थियों को मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और सामाजिक वास्तविकताओं पर विचार करने के लिए प्रेरित भी करती है।

K5.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: भीष्म साहनी अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं तथा मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है ।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: 'चीफ की दावत' कहानी मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता, दिखावे की प्रवृत्ति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की होड़ का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। कहानी का कथानक एक ऐसे परिवार के इर्द-गिर्द विकसित होता है, जो एक उच्च अधिकारी को प्रभावित करने के उद्देश्य से अपनी वास्तविक स्थिति को छिपाकर आडंबर और कृत्रिमता का सहारा लेता है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: भीष्म साहनी की रचनात्मक दृष्टि मूलत: यथार्थवादी और मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत है। उन्होंने समाज में व्याप्त वर्गभेद, आर्थिक असमानता, शोषण, सामंती मानसिकता और पूँजीवादी प्रवृत्तियों का गहन विश्लेषण किया है।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिंडी (अब पाकिस्तान में) में हुआ था।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: भीष्म साहनी द्वारा रचित उपन्यासों के नाम हैं- 'झरोखे' (1967), 'कड़ियाँ' (1970), 'तमस' (1973), 'बसंती' (1980)

5 5.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास.कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई: दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- तिवारी, उषा (1996).आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य और राजेन्द्र यादव का कथा साहित्य. नई दिल्ली: सार्थक प्रकशन
- यादव, राजेन्द्र (2000). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- सक्सेना, डॉ. राजेश्वर (1998). भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना. दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- साहनी, भीष्म (1957). पहला पाठ. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

M5.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. वाङ्चू कहानी का मूल विषय क्या है?
2. सागमीट कहानी में निहित मूल संवेदना क्या है?
3. 'चीफ की दावत' कहानी में चित्रित पात्रों के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. तमस उपन्यास की मूल कथा किससे संबंधित है?
5. भीष्म साहनी द्वारा रचित चार कहानी संग्रह के नाम लिखिए।
6. भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटकों के नाम लिखिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन के विविध पक्षों को विस्तार से उजागर कीजिए।
2. भीष्म साहनी का परिचय देते हुए उनके साहित्य में निहित विशेषताओं के विविध बिन्दुओं पर चर्चा कीजिए।
3. 'चीफ की दावत' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिए।
4. 'चीफ की दावत' कहानी के समीक्षा के विविध बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।
5. 'चीफ की दावत' कहानी के आधार पर मानवीय संवेदनाओं और पारिवारिक संबंधों विश्लेषण कीजिए।

****

इकाई-6 उसने कहा था

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 कथावस्तु
6.4 चरित्र चित्रण
6.5 भाषा शैली
6.6 देशकाल और वातावरण
6.7 शीर्षक की सार्थकता
6.8 सारांश
6.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
6.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- कहानी की कथावस्तुको समझकर इसके मूल संदेश और घटनाओं की क्रमबद्धता को समझ पाएंगे।
- कहानी के मुख्य और गौण पात्रोंके चरित्र, व्यक्तित्व और उनकी मनोस्थिति को जानेंगे।
- कहानी में प्रयुक्त भाषा शैलीको समझ सकेंगे।
- कहानी में प्रयुक्त देशकाल और वातावरणके माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों की पहचान कर सकेंगे।
- कहानी के शीर्षक की सार्थकता और उसका कथ्य तथा पात्रों से संबंध को समझेंगे।
- कहानी के माध्यम से मानवीय संवेदनाएँ, सामाजिक मूल्य और जीवन-दृष्टिको महसूस कर पाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' पहली बारसन् 1915 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। इससे पहले गुलेरीजी की दो अन्य कहानियाँ- 'सुखमय जीवन' और 'बुद्ध का कांटा' प्रकाशित हो चुकी थीं, लेकिन 'उसने कहा था' अपने विषय, शिल्प और मौलिकता की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली कहानी साबित हुई। राजेन्द्र यादव जैसे आलोचक मानते हैं कि आधुनिक हिन्दी कहानी की शुरुआत इसी रचना से होती है। हालांकि गुलेरीजी ने प्रेमचंद या जैनेन्द्र की तरह किसी विशेष साहित्यिक धारा या विचारधारा की नींव नहीं रखी, लेकिन उन्होंने पारंपरिक कहानियों से हटकर मानव स्वभाव और चरित्र को व्यक्तिगत विशेषताओं और समाज से जुड़े पक्षों के साथ प्रस्तुत किया, जो उन्हें विशिष्ट बनाता है। हर लेखक अपनी रचना के पीछे कोई विचार, भावना या आदर्श लेकर चलता है। इसी तरह गुलेरीजी ने भी अपनी इस कहानी के माध्यम सेप्रेम, त्याग, वीरता और आत्मबलिदान जैसे उच्च भावों को उजागर किया है। यह कहानी एक ऐसे प्रेम की मिसाल है जिसमें विश्वास सर्वोपरि है और प्रेमी अपने प्राण देकर भी उस विश्वास की रक्षा करता है। हालाँकि प्रेम पर बहुत-सी कहानियाँ लिखी गई हैं-हिन्दी में, अन्य भारतीय भाषाओं में और दुनिया भर में-फिर भी 'उसने कहा था' इस दृष्टि से अलग है कि इसमें प्रेम केवल भावना नहीं, बल्कि निष्ठा और आदर्श का प्रतीक बनकर सामने आता है। लहनासिंह और सूबेदारनीका प्रेमउदात्त और आदर्श

प्रेम है, जो नि:स्वार्थ और निष्ठावान है। कहानी में बालक और बालिका के प्रेम को जिस भावभूमि पर दिखाया गया है, वह उस समय के सामाजिक परिवेश में अनोखा था। यह कहानी उस दौर में लिखी गई थी जब भारत अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन में संघर्ष कर रहा था। उस समय राष्ट्रभक्ति, संघर्ष और बलिदान जैसे मूल्यों को महत्व दिया जा रहा था। इस कहानी में यह भी दिखाया गया है कि व्यक्तिगत प्रेम के साथ-साथ एक व्यक्ति राष्ट्र के प्रति भी अपने कर्तव्य को कैसे निभाता है।

6.3 कथावस्तु

'उसने कहा था' कहानी का उद्देश्य केवल किसी चमत्कार या मनोरंजन को प्रस्तुत करना नहीं है। इसमें कला को जीवन के आदर्शों और मूल्यों को उजागर करने का माध्यम बनाया गया है। इस कहानी की मुख्य भावना प्रेम और कर्तव्य है। लेखक ने युद्ध और प्रेम की पृष्ठभूमि के माध्यम सेमानव जीवन के ऊँचे सिद्धांतों और त्याग के आदर्शों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह प्रेम सामान्य नायक-नायिका के शारीरिक आकर्षण वाला प्रेम नहीं है, बल्कि संयमित, गम्भीर और उदात्त प्रेम की अभिव्यक्ति है। इस कहानी में प्रेम तो है, लेकिन इसकी प्रकृति आम प्रेमकथाओं से भिन्न है। यहाँ प्रेम केवल भावना नहीं, कर्तव्य और आत्म-बलिदान में परिवर्तित हो जाता है। गुलेरीजी की लेखन-कलाइस कहानी में अपने उत्कर्ष पर दिखाई देती है-जहाँ प्रेम, कर्तव्य और वीरताएक साथ जुड़ते हैं।

कहानी की शुरुआत अमृतसर के चौकसे होती है, जहाँ एक लड़का (उम्र 12 साल) और एक लड़की (उम्र 8 साल) पहली बार मिलते हैं और अक्सर इसकी भेंट कहीं-न-कहीं हो जाती है और एक दिन लड़का लड़की को ताँगे के नीचे आने से बचाता है। लड़का लड़की की ओर आकर्षित होकर बाल सुलभ प्रश्न पूछता है - ''तेरी कुड़माई हो गई'' तब लड़की उत्तर में 'धत्' कहकर भाग जाती है। फिर एक दिन एक बार वही प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर मिलता है ''हाँ हो गई। देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू''। जिससे लड़का निराश हो जाता है। यहीं पर बचपन का यह प्रेम-प्रसंग समाप्त हो जाता है।

इसके बाद कहानी हमें लहना सिंह नामक सैनिक के जीवन में ले जाती है, जो प्रथम विश्व युद्ध के समय अंग्रेजों की ओर से जर्मनी के खिलाफ युद्ध में भाग ले रहा है। वह साहसी, बुद्धिमान और अपने फर्ज के लिए समर्पित सैनिक है। एक युद्ध में वह गुप्तचर को पहचानकर मार गिराता है, लेकिन खुद घायल हो जाता है। बावजूद इसके, वह अपने कर्तव्य से नहीं डिगता और अपने साथियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने में सफल होता है।

कहानी के अंतिम हिस्से में जब लहना सिंह मृत्यु के करीब होता है, तब उसे अपना बचपन याद आता है। पाठक तब समझ पाता है कि वही लड़का अब जवान होकर जमादार लहना सिंह बना है। एक संयोगवश, लाम पर जाते समय वह अपने सूबेदार के घर जाता है और वहाँ उसे वही पुरानी लड़की अब सूबेदारनी के रूप में पच्चीस वर्ष बाद लहना सिंह को फिर से मिलती है। तब सूबेदारनी ने कहा था- 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।' वह लड़की लहना सिंह से विनती करती है कि जैसे उसने बचपन में उसकी जान बचाई थी, वैसे ही अब वह उसके पति और बेटे को बचा ले। लहनासिंह अपने प्राणों की परवाह किए बिना यह वचन निभाता है।

यह प्रेम कहानी शादी या साथ जीने की परिणति नहीं है, बल्कि त्याग और बलिदान की ऊँचाई तक जाती है। बचपन का सरल आकर्षण समय के साथ धुंधला हो गया था, लेकिन एक दिन यह फिर सामने आया-इस बारकर्तव्य का रूप धारण करके। इस कहानी के सम्बन्ध में शुक्लजी का कथन बहुत ही सार्थक है - ''घटना के भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है, केवल झाँक रहा, निर्लज्जता के कारण साथ पुकार या कराह

नहीं रहा है।''

5 महत्वपूर्ण बिंदु

यह कहानी में पूर्व-दीप्ति (फ्लैशबैक) शैली में लिखि गई हैं।

सिख रायफल्स के जमादार लहना सिंह का नम्बर 77 था।

सूबेदार हजारा सिंह के लड़के का नाम बोधा सिंह था।

6.4 चरित्र चित्रण

गुलेरी जी की कहानियों में ऐसे पात्र नहीं होते जो देवता, राजा-रानी, भूत-प्रेत या जादूगर हों। उनकी कहानियों में आम इंसानों को प्रमुखता दी गई है। उनके पात्र वही होते हैं जो इंसानी भावनाओं से जुड़े होते हैं - जो अपनी गलतियों पर पछताते हैं, खुशी में हँसते हैं और दुख में आँसू बहाते हैं। ये पात्र जीवन की कठिनाइयों, संघर्षों और अनुभवों से गुजरते हुए भी अपने मन को निर्मल और पवित्र बनाए रखते हैं, जैसे चाँदनी की उज्ज्वलता या गंगाजल की शुद्धता। गुलेरी जी के पात्र समाज की जागरूकता से भरे हुए हैं और सामाजिक टकरावों से भी जूझते हैं। वे कोई काल्पनिक मूर्तियाँ नहीं, बल्कि असली, मांस-मज्जा वाले जीवंत इंसान हैं - जो जीवन की सच्ची झलक प्रस्तुत करते हैं।

'उसने कहा था' कहानी का प्रमुख पात्र लहना सिंह है। वह एक साधारण सैनिक होते हुए भी अपने कर्तव्य, प्रेम और वचन के प्रति ऐसी निष्ठा दिखाता है कि पाठक उसे केवल एक सामान्य इंसान नहीं, बल्कि आदर्श का प्रतीक मानने लगते हैं। सूबेदारनी से किए गए वचन को निभाने के लिए वह अपने प्राणों की आहुति देने से भी नहीं हिचकता। यह उसका त्याग, नि:स्वार्थ प्रेम और ऊँचे आदर्श हैं, जो उसे देवतुल्य बना देते हैं। लेकिन यह देवत्व उस पर थोपे गए नहीं लगते, बल्कि उसकी आत्मिक श्रेष्ठता और उदात्त भावना से स्वत: प्रकट होते हैं। लहना सिंह का यह चरित्र त्याग और बलिदान का ऐसा उदाहरण बन जाता है, जो देवताओं के पद से भी ऊपर उठ जाता है।

सूबेदारनी का चरित्र 'उसने कहा था' कहानी में भले ही सीमित शब्दों में चित्रित हुआ है, किन्तु उसका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली, आकर्षक और भावनात्मक गहराई से भरपूर है। गुलेरीजी ने उसके किशोरवस्था के चित्रण में मात्र एक शब्द- ''धत्'' के माध्यम से उसके अल्हड़, निश्छल सौंदर्य और स्वाभाविक स्त्री सुलभ लज्जा का ऐसा सजीव अनुभव कराया है कि वह पाठक की स्मृति में अमिट छाप छोड़ जाती है।

कहानी में सूबेदारनी की भूमिका छोटी होते हुए भी अत्यंत सारगर्भित है। वह एक पत्नी, एक माँ और एक स्त्री के रूप में अपने ममत्व, प्रेम और चिंता के भावों को सहजता से अभिव्यक्त करती है। सूबेदारनी अपने पति और पुत्र की रक्षा के लिए लहनासिंह से याचना करती है ''मेरे तो भाग फूट गए। ... सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पल्टन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भरती हुए इसे एक ही बरस हुआ। इसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी, अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'' उसका यह भावनात्मक संवाद न केवल उसकी करुणा को दर्शाता है, बल्कि उसके भीतर छिपे उस आत्मबल और गहराई को भी उजागर करता है, जो उसे कहानी की नायिका बना देता है। उसने पूरी कहानी में केवल दो मुख्य वाक्य बोले हैं- ''तेरी कुड़माई हो गई?'' के उत्तर में ''देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू''। और फिर पच्चीस वर्ष बाद औपचारिक बातों के साथ ''ऐसे ही इन दोनों को बचना।'' किन्तु इन दो वाक्य में उसकी भावनाएँ, स्मृति,

विश्वास और मानवीय संबंधों की गहराई पूरी तरह समाहित है। इन वाक्यों का लहना सिंह पर इतना प्रभाव पड़ता है कि वह अपने प्राणों की आहुति देकर भी उस विश्वास को निभाता है। इस प्रकार सूबेदारनी, अपने सीमित संवादों के बावजूद, एक गहरी छवि छोड़ती है और कहानी के आत्मिक प्रवाह में केंद्रीय भूमिका निभाती है।

'उसने कहा था' कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसके पात्रों की स्वाभाविक और जीवंत सृष्टि है। हर पात्र, चाहे वह प्रमुख हो या गौण, कहानी में इतनी सहजता से जुड़ा है कि कोई भी चरित्र कृत्रिम या ज़बरदस्ती जोड़ा हुआ नहीं लगता। इन पात्रों की सजीवता और स्वाभाविकता ही पाठक को कहानी के हर मोड़ पर भावनात्मक रूप से बाँधे रखती है। लहना सिंह, सूबेदारनी, वजीरा सिंह - सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर पूर्ण और प्रभावशाली हैं। विशेष रूप से लहना सिंह की मृत्यु से ठीक पहले जब उसके जीवन की यादें उसके सामने एक-एक कर उभरती हैं, तो यह दृश्य इतना मार्मिक और सजीव बन जाता है कि पाठक स्वयं को उस पीड़ा और भावुकता से अलग नहीं कर पाता। कहानी के अंत में जब वजीरा सिंह अपने मृत साथी को देखता है, तो वह क्षण पाठक के मन में गहरी संवेदना जगा देता है। हर बार जब यह कहानी पढ़ी जाती है, तो वह दृश्य - लहना सिंह का त्याग, उसका वचन-पालन और उसकी मृत्यु - ऐसा असर छोड़ता है कि सहृदय पाठक की आँखें नम हुए बिना नहीं रहतीं। यही गुलेरी जी की लेखनी की विशेषता है कि उन्होंने साधारण पात्रों को असाधारण गहराई और भावनात्मक प्रभाव से गढ़ा है।

6.5 भाषा शैली

भाषा मनुष्य के अंतर्मन भावों की अभिव्यक्ति का मानसिक माध्यम है। जब हम कहानी के संदर्भ में बात करते हैं, तो यह माध्यम और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि कहानी में पात्रों के मनोभाव, विचारों और क्रियाओं को केवल भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक की तरह यहाँ अभिनय, संकेत या मंचीय प्रस्तुति की कोई सहायता नहीं होती। इसलिए कहानी की भाषा ही उसकी आत्मा बन जाती है। कहानी की आदर्श भाषा वह होती है जो सहज, संप्रेषणीय और प्रभावशाली हो - जो पाठक को कहानी के रचनात्मक संसार में बिना किसी अड़चन के प्रवेश दिला सके। यदि भाषा बोझिल या कृत्रिम हो जाए, तो वह कहानी के प्रभाव को कम कर देती है। इसीलिए कहानी के लिए ऐसी भाषा का चयन करना आवश्यक होता है जो जीवन के अनुभवों, पात्रों के मनोभावों और घटनाओं की गति को पूरी ईमानदारी और संवेदनशीलता से व्यक्त कर सके।

हालाँकि हिन्दी को 19वीं सदी में ही गद्य लेखन में स्थान मिल गया था, फिर भी उस समय तक इसकी कोई स्थिर और तयशुदा रूपरेखा नहीं बन पाई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को एक दिशा और रूप देने की कोशिश की, लेकिन उनका प्रभाव सीमित लेखकों तक ही रह गया। इसके बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी को व्यवस्थित और मानकीकृत करने के लिए निरंतर प्रयास किए। इसी आरंभिक दौर में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने अपनी प्रसिद्ध कहानी ''उसने कहा था'' के माध्यम से भाव, भाषा और शैली के लिहाज से अद्वितीय रचना प्रस्तुत की, जिसने आलोचकों को भी चकित कर दिया। उनकी भाषा की सहजता और प्रवाह देखते ही बनता है, जैसे- ''हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमाँ वालिए, हट जा, पुत्ताँ प्यारिए, बच जा, लम्बी वालिए।''

इसी बाजार की भीड़ में कहानी के दो पात्र- बारह साल का लहना सिंह और आठ साल की सूबेदारनी- पहली बार मिलते हैं। इस संयोगपूर्ण मिलन का वर्णन बड़ा स्वाभाविक और जीवंत है ''ऐसे बंबूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ।'' चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी लिखते हैं- ''बारह वर्ष के लड़के और आठ वर्ष की लड़की ने एक-दूसरे से जो पूछा वह पहली भेंट में स्वाभाविक ही था।'' तेरे घर कहाँ हैं? मगरे में और तेरे? माँझे में - यहाँ कहाँ रहती है? अतरसिंह की बैठक में, वह मेरे मामा होते हैं। मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।'' ''तेरी कुड़माई हो गई?'' पहली ही भेंट के बाद लड़का पूछता है और लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर

''धत्'' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।'' एक महीने तक लगातार मिलने तथा वही सवाल बार-बार पूछे जाने पर जब लड़की जवाब देती है ''हाँ, हो गई।'' ''कब ?'' ''कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू''। लड़के के मन में प्रेम अंकुरित हो चुका था, भले ही उसने कुछ नहीं कहा था। लेकिन लड़की उसकी भावनाओं को भांप चुकी थी। यही कारण है कि पच्चीस साल बीतने के बाद भी वह उस एक मुलाकात और उसी सवाल ''तेरी कुड़माई हो गई ?'' को नहीं भूल पाई। जब वह लहना सिंह से युद्ध पर जाते समय अपने पति और बेटे की रक्षा की विनती करती है, तो उसी सवाल को दोहराकर पुराने संबंध की स्मृति भी ताज़ा कर देती है।

लड़की ने जब यह स्वीकार किया कि उसकी सगाई हो चुकी है और प्रमाणस्वरूप रेशमी कढ़ाई वाला सालू दिखाया, तो वह मुस्कराते हुए भाग गई। लेकिन लड़का इस उत्तर को स्वीकार नहीं कर पाया। उसकी आंतरिक पीड़ा और मनोवैज्ञानिक झटके को गुलेरीजी ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है- ''लड़के ने घर की सीध ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते को पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।'' इस विचलन के बाद उसके मन में क्या चल रहा था और उसने क्या निर्णय लिए, यह लेखक ने नहीं बताया। शायद कहानी की दृष्टि से यह आवश्यक भी नहीं था। समय बीतता है- पूरे पच्चीस साल। अब लहनासिंह फौज में जमादार बन चुका है। एक दिन वही लड़की, जो अब सूबेदारनी बन चुकी है, फिर से उसके जीवन में चमत्कारिक ढंग से प्रवेश करती है। वह अब लहनासिंह के सूबेदार की पत्नी है। चूँकि इस कहानी के अधिकांश पात्र पंजाबी हैं, इसलिए गुलेरीजी ने कहानी में जगह-जगह पंजाबी शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग किया है ताकि पात्रों की भाषिक विशेषता और क्षेत्रीयता सजीव रूप में सामने आए। अमृतसर के एक इक्केवाले की आवाज़ कुछ यूँ सुनाई देती है- ''हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमाँ वालिए, हट जा, पुत्ताँ प्यारिए, बच जा, लम्बी वालिए।'' यदि यही संवाद केवल हिन्दी में अनूदित होते, तो उनमें वह स्वाभाविकता और स्थानीय रंगत नहीं आ पाती। इसी तरह खंदकों में बैठे हुए सिपाहियों की बातचीत भी उनकी पृष्ठभूमि के अनुसार ही रखी गई है- ''लहनासिंह और तीन दिन है। चार तो खंदक में ही बिता दिए परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में-मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।... लाड़ी हारों को भी यहाँ बुला लोगे। या वही दूध पिलाने वाली फरंगी मेम।''

युद्ध के मैदान में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता और तीव्र गति से आदेश देने में गुलेरी जी की दक्षता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने बिना समय गंवाए आदेश दिया- ''अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्र काटे फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ो जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।''

युद्ध के मैदान में घायल पड़े लहनासिंह के स्वप्नों में उसका अतीत जीवंत हो उठता है। वह युद्धभूमि में होते हुए भी अपने घर, देश और बचपन की स्मृतियों में लौट जाता है। उसे सब कुछ स्पष्ट रूप से याद आता है। वह कहता है- ''मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्? ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'' कर्तव्यनिष्ठा से अपने धर्म का पालन करने के बाद, अब लहनासिंह मृत्यु के अंतिम क्षणों में वजीरासिंह की गोद में सिर रखकर शांत पड़ा है। गुलेरी जी ने भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील भाषा का प्रयोग किया है - ''मृत्यु के कुछ समय पहिले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध बिलकुल उन पर से हट जाती है।'' लहनासिंह को भ्रम है कि वह कीरतसिंह की गोद में है, इसलिए वह पूछता है- ''कौन ? कीरतसिंह ? वजीरा ने कुछ समझकर कहा, हाँ। भइया,

मुझे और ऊँचा कर ले। बस पट्ट पर मेरा सिर रख ले। वजीरा ने वैसा ही किया। हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस! अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मैंने इसे लगाया था।''

कहानी के अंत में जब लहना सिंह की मृत्यु की सूचना दी जाती है कि- ''फ्रांस और बेल्जियम 68वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं. 77 सिख राइफल्स-जमादार लहनासिंह।'' तो ये शब्द सीधे पाठक के हृदय को स्पर्श करते हैं। इन शब्दों की मार्मिकता ऐसी है कि वे मन से कभी नहीं उतरते।

हर व्यक्ति, समाज और वातावरण की अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है। जैसे-जैसे किसी व्यक्ति का मानसिक विकास होता है, वैसे-वैसे उसकी भाषा की समझ और अभिव्यक्ति की क्षमता भी विकसित होती है। एक छोटा बच्चा उतना परिपक्क नहीं बोल सकता जितना एक बड़ा बालक, क्योंकि उसका मनोविकास अभी अधूरा होता है। इसी तरह, वकील, लेखक या शिक्षक जैसे पेशों में लगे व्यक्तियों का भाषिक ज्ञान अधिक होता है क्योंकि उनका बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक विकास उच्च स्तर पर होता है। इसके विपरीत, अशिक्षित व्यक्ति को अपने विचारों और भावनाओं को शब्दों में ढालने में कठिनाई होती है क्योंकि उसका मनोविकास सीमित होता है। इसलिए किसी भी श्रेष्ठ लेखक की यह विशेषता होती है कि वह अपने पात्रों की भाषा को उनके चरित्र, स्थिति और सामाजिक स्तर के अनुरूप ढाल सके। इसी विशेषता का परिचय गुलेरी जी ने इस कहानी में बखूबी दिया है। उन्होंने कहीं भी भाषा को बनावटी नहीं होने दिया। उनकी भाषा सहज, स्वाभाविक और पात्रों के अनुकूल है, जिससे कहानी में जीवन्तता बनी रहती है और पाठक उससे जुड़ा हुआ महसूस करता है।

6.6 देशकाल और वातावरण

कहानी का आरंभ अमृतसर के भीड़-भरे बाज़ार और वहाँ की जीवंत संस्कृति से होता है। बंबूकार्टके इक्के-गाड़ी वालों की बोली में जहाँ अपनापन और आत्मीयता है, वहीं बड़े शहरों के रुखे-भद्दे व्यवहार का एक व्यंग्यात्मक चित्र भी खींचा गया है। लेखक कहते हैं- ''बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जबकि बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट यौन सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी उसके गुप्त गुह्य अंगों से डाक्टरों को लजाने वाला परिचय दिखाते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं...।'' यहां भाषा के माध्यम से पंजाब की लोकजीवन की सहजता, अपनापन और मानवीयता को उभारा गया है। इसी बाजार में एक लड़के और लड़की की मुलाकात होती है। उनके बीच बालसुलभ आकर्षण से जन्मा एक निश्छल प्रेम अंकुरित होता है। समय बीतता है, स्थान बदलते हैं, पर उस भाव का एक सूत कहानी में अंत तक जुड़ा रहता है। यह प्रेम कहानी जब आगे बढ़ती है, तो उसका अगला पड़ाव बनता है- जर्मनी के युद्ध का मैदान। जहाँ वही लड़का अब भारतीय फौज में सिख राइफल्स का जमादार बन चुका है और वहीं उसकी भेंट उस लड़की के पति और पुत्र से होती है। लड़की अब एक पत्नी और माँ है और उसी ने अपने पति और बेटे की रक्षा की ज़िम्मेदारी लहना सिंह को सौंपते हुए एक वचन दिलवाया था- ''उसने कहा था...'' यह कहानी स्थान और काल की सीमाओं को पार करते हुए दो भिन्न दुनिया- एक ओर पंजाब की संस्कृति और प्रेमपूर्ण संबंधों की भूमि और दूसरी ओर यूरोप की क्रूर युद्धभूमि को एक ही धागे में पिरो देती है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह पृष्ठभूमि प्रथम विश्वयुद्ध की है (न कि द्वितीय विश्वयुद्ध की), जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सैनिकों से यूरोप के मोर्चों पर सहयोग माँगा था और हजारों भारतीय सैनिक ब्रिटिश सेना की ओर से लड़ने फ्रांस, बेल्जियम और जर्मनी की धरती पर भेजे गए थे। इस तरह, प्रेम, कर्तव्य, बलिदान और ऐतिहासिक यथार्थ को मिलाकर 'उसने कहा था' एक कालजयी और मार्मिक रचना बन जाती है।

w अपनी प्रगति जांचें

1. ''उसने कहा था'' कहानी के लेखक कौन हैं और यह पहली बार कब प्रकाशित हुई ? 'उसने कहा था' कहानी में किस शैली का प्रयोग हुआ है ?
2. ''उसने कहा था'' कहानी का केंद्रीय भाव क्या है ?
3. कहानी में पूर्वदीप्ति (Flashback) शैली का प्रयोग कैसे हुआ है ?
4. ''उसने कहा था'' शीर्षक की सार्थकता क्या है ?

6.7 शीर्षक की सार्थकता

''उसने कहा था''- यह शीर्षक कहानी की मूल संवेदना से गहराई से जुड़ा हुआ है। कहानी पढ़ने से पहले ही यह शीर्षक पाठक के मन में उत्सुकता जगाता है- किसने कहा था ? क्या कहा था ? और क्यों कहा था ? जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, यह जिज्ञासा और भी प्रबल होती जाती है। मध्य भाग में जब लहना सूबेदार से कहता है- ''सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।'' तो पाठक को संकेत मिलता है कि सूबेदारनी ने लहना से कोई वादा करवाया था, जो उसने निभाया।

फिर भी प्रश्न बना रहता है- यह सूबेदारनी कौन है ? उसका लहना से क्या संबंध है ?

कहानी के अंतिम भाग में जब पूर्वदीप्ति पद्धति (फ्लैशबैक) के माध्यम से लहना की स्मृतियों का द्वार खुलता है, तब पाठक को धीरे-धीरे सच्चाई का आभास होता है- वही सूबेदारनी, अमृतसर के चौक पर मिलने वाली वह लड़की है जो लहना की बाल्यकाल की स्मृतियों में रची-बसी है। वही लड़की, विवाह के बाद, अपने पति और बेटे की रक्षा की प्रार्थना करते हुए कहती है- ''तुम्हें याद है एक दिन ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'' यह वचन, यही ''उसने कहा था'', लहनासिंह के जीवन का धर्म बन गया। उसने अपने प्राण देकर उस वचन को निभाया। यहीं पर कहानी का शीर्षक पूरी तरह से सार्थक हो उठता है।

6.8 सारांश

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि गुलेरीजी ने अपने समय के अन्य लेखकों की तरह किसी विशेष साहित्यिक विचारधारा या वाद को अपनाकर रचना नहीं की। उन्होंने किसी परम्परा का अनुसरण नहीं किया और न ही कोई नया वाद शुरू किया, फिर भी उनका स्थान हिन्दी साहित्य में आज भी महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसका कारण यह है कि उन्होंने उस दौर की आख्यायिका शैली से हटकर यथार्थ पर आधारित कहानियाँ लिखीं, जिनमें कल्पना या चमत्कार की बजाय समाज की सच्चाई को प्राथमिकता दी गई। गुलेरीजी के लेखन और उनके व्यक्तित्व से यह पता चलता है कि वे एक विद्वान और प्रतिभाशाली लेखक थे। उन्होंने गहन अध्ययन किया था, फिर भी उनकी कहानियाँ ज्ञान से बोझिल नहीं लगतीं। उनके लेखन का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं था, बल्कि जीवन की सच्चाई को सामने लाना था। 'उसने कहा था' कहानी की कथावस्तु प्रेम और कर्तव्य के इर्द-गिर्द घूमती है, लेकिन इसके माध्यम से गुलेरीजी ने जीवन के उच्च आदर्श और कर्तव्य की गहराई को उजागर करने का प्रयास किया है। इस कहानी के पात्र असाधारण या दिव्य नहीं हैं, बल्कि हमारे जैसे सामान्य लोग हैं, जिनमें अच्छे और बुरे दोनों गुण हैं। वे लेखक की इच्छा से नियंत्रित कठपुतलियाँ नहीं हैं, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले जीवंत पात्र हैं। अगर 'उसने कहा था' को एक सफल कहानी

की कसौटी पर परखा जाए या आधुनिक नयी कहानी के सन्दर्भ में देखा जाए, तो यह दोनों ही दृष्टियों से एक सफल रचना सिद्ध होती है। इसमें प्रयुक्त पूर्व-दीप्ति (फ्लैशबैक) की शैली उस समय के लिहाज से काफी आधुनिक और नई थी। 1915 में लिखी गई यह कहानी यथार्थ, सजीवता और आधुनिक दृष्टिकोण जैसे गुणों से भरपूर है, जो आज भी इसे विशेष और महत्वपूर्ण बनाते हैं।

K6.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- ''उसने कहा था'' कहानी के लेखक चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' हैं। यह कहानी पहली बार 1915 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

प्रश्न 2 का उत्तर- 'उसने कहा था' कहानी का केंद्रीय भावप्रेम, कर्तव्य और आत्म-बलिदान है। इसमें प्रेम को केवल भावना नहीं बल्कि निष्ठा और वचन-पालन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न 3 का उत्तर- कहानी के अंत में जब लहना सिंह घायल अवस्था में होता है, तब उसे अपने बचपन की स्मृतियाँ याद आती हैं। इसी माध्यम से पाठक को पता चलता है कि सूबेदारनी वही लड़की है जिस से वह बचपन में मिला था। यह पूर्वदीप्ति शैलीका प्रयोग है।

प्रश्न 4 का उत्तर- यह शीर्षक सूबेदारनी द्वारा लहना सिंह से किए गए वचन से जुड़ा है, जिसमें वह अपने पति और बेटे की रक्षा करने को कहती है। लहना सिंह अपने प्राण देकर भी उस वचन को निभाता है, इसलिए शीर्षक पूरी तरह सार्थक है।

56.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- शुक्ल, आ. र. हिन्दी साहित्य का इतिहास.
- शर्मा, च. (संपादक) उसने कहा था: गुलेरीजी की अमर कहानियाँ (संपादक: शक्तिधर गुलेरी).
- नागेन्द्र, डॉ. विचार और अनुभूति.
- श्रीवास्तव, डॉ. परमानन्द. (साल अज्ञात). हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया.
- कमलेश्वर. नयी कहानी की भूमिका.
- पालीवाल, सूरज. रेशम से कढ़े सालू का स्वप्न और यथार्थ [आलेख]. हिन्दी समय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा।
- लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण. हिन्दी कहानी के शिल्पविधि का विकास.
- मदान, इन्द्रनाथ. हिन्दी कहानी.
- यादव, राजेन्द्र. मेरी प्रिय कहानियाँ.

M6.11 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. 'उसने कहा था' कहानी पहली बार कब प्रकाशित हुई थी?
2. उसने कहा था कहानी कितने भागों में बाँटी हुई है?
3. लहना सिंह किस पद पर था?
4. लहना सिंह की मृत्यु किसकी गोद में हुई?
5. उसने कहा था कहानी का नायक कौन है?

6. गुलेरी जी के कुल तीन कहानियों का नाम लिखिएँ?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. लहना सिंह का परिचय अपने शब्दों में लिखिएँ।
2. 'उसने खा था' कहानी की कथावस्तु का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए और बताइए कि कहानी के मुख्य विषय और संदेश क्या हैं।
3. 'उसने कहा था' कहानी का केंद्रीय भाव क्या है?
4. कहानी में देशकाल और वातावरण का क्या महत्व है? यह किस प्रकार कहानी के भाव, पात्रों के व्यवहार और कथ्य को प्रभावित करता है?
5. लहना सिंह के प्रेम के बारे में दो शब्द लिखिए?
6. 'उसने कहा था' कहानी की भाषा शैली का मूल्यांकन कीजिए।

****

इकाई-7 अपना-अपना भाग्य (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 कहानीकार 'जैनेन्द्र' का परिचय
7.4 जैनेन्द्र: साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास
7.5 जैनेन्द्र का बौद्धिकता और अंतर्मुख सर्जना
7.6 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का सार
7.7 कहानी की समीक्षा
7.8 सारांश
7.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
7.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- जैनेन्द्र का जीवन परिचय और साहित्यिक व्यक्तित्व जानेंगे।
- जैनेन्द्र की सर्जनात्मक प्रवृत्तियाँ और रचनात्मक विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का परिचय, कथावस्तु, घटनाक्रम और सार जानेंगे।
- कहानी के प्रमुख पात्रों का परिचय और उनका चरित्र-विश्लेषण समझ सकेंगे।
- कहानी में निहित मुख्य विषय, संदेश, सामाजिक, मानवीय और नैतिक पक्ष ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- जैनेन्द्र की रचनाओं और कहानी की समालोचनात्मक समीक्षा समझ।

7.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में जैनेन्द्र कुमार का स्थान विशेष है। वे एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कहानीकार और निबंधकार हैं जिन्होंने अपनी लेखनी से हिंदी गद्य को गहन और सूक्ष्म रूप प्रदान किया। उनकी लेखनी में कविताओं का स्थान नहीं है इस दृष्टि से उन्हें प्रेमचंद के समान माना जा सकता है क्योंकि प्रेमचंद ने भी केवल गद्य की विधा में रचना की परंतु लेखक के दृष्टिकोण से जैनेन्द्र कुमार की प्रवृत्ति प्रेमचंद से भिन्न थी। जहां प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक और जनजीवन की गंभीर समस्याओं पर केंद्रित रहता है वहीं जैनेन्द्र कुमार की दृष्टि अधिकतर व्यक्ति और उसके मनोविज्ञान पर केंद्रित रही। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में याद किया जाता है। उपन्यासकार के रूप में उनका नाम अज्ञेय के साथ भी लिया जा सकता है। हालांकि अज्ञेय ने कविता और गद्य दोनों में योगदान दिया, जैनेन्द्र कुमार ने केवल गद्य में गहरी छाप छोड़ी। वे व्यक्तिगत रूप से प्रेमचंद के निकट रहे लेकिन अपने साहित्य में प्रेमचंद की शैली और सामाजिक दृष्टिकोण का अनुसरण नहीं किया। उनके उपन्यासों में व्यक्ति की आंतरिक चेतना, उसकी मानसिक द्वंद्व और भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

जैनेन्द्र कुमार ने अपने साहित्यिक जीवन में सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा सहित लगभग बारह उपन्यासों की

रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई कहानियों और निबंधों के माध्यम से अपनी दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि को व्यक्त किया। उनके विचार न केवल साहित्यिक बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक भी हैं जिनमें जैन धर्म और गाँधीवाद से प्रभावित विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है। वे स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रहे और इसके लिए उन्होंने जेल भी भोगी। इस प्रकार उनका जीवन और साहित्य गहरे संबंध में हैं और उनके साहित्य को उनके जीवन के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

इस इकाई में 'अपना अपना भाग्य' कहानी का विश्लेषण किया जाएगा। इसके सार, समीक्षा और विविध साहित्यिक पहलुओं का अवलोकन करते हुए कहानी के भाव और मनोवैज्ञानिक परतों की व्याख्या की जाएगी। जैनेन्द्र कुमार की यह कहानी मानव मन के जटिल पहलुओं और जीवन की वास्तविकताओं को सूक्ष्म दृष्टि से प्रस्तुत करती है। इस प्रस्तावना के माध्यम से पाठक को उनके साहित्य और विशेषकर इस कहानी के महत्व की समग्र समझ प्राप्त होगी।

7.3 कहानीकार 'जैनेन्द्र' का परिचय

जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी 1905 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ ज़िले के कौड़ियागंज नामक गाँव में हुआ था तथा उनका निधन 24 दिसंबर 1988 को हुआ। उनका बचपन का नाम आनंदीलाल था किंतु साहित्यिक जीवन में उन्होंने ''जैनेन्द्र कुमार'' नाम से लेखन किया और हिंदी साहित्य जगत में वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। जब उनकी आयु केवल दो वर्ष की थी तभी उनके पिता का देहांत हो गया। उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी उनकी माता रमा देवी और मामा भगवान दीन ने संभाली। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अतरौली तथा अपने मामा के गुरुकुल में हुई। बाद में उन्होंने पंजाब से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और आगे की पढ़ाई के लिए बनारस चले आए।

सन् 1920 में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया तब जैनेन्द्र की आयु लगभग 15-16 वर्ष थी। 1921 में इस आंदोलन के प्रभाव से उन्होंने अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। कुछ वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस के कार्यों में सक्रिय भाग लिया और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जेल भी गए। उनका प्रारंभिक जीवन आर्थिक कठिनाइयों से भरा हुआ था। मैट्रिक पास करने के बाद उन्होंने कॉलेज में 'आर्ट्स' विषय लेकर काशी विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किंतु कॉलेज के 'साइंस प्रैक्टिकल रूम' और वहाँ उपलब्ध विभिन्न उपकरणों को देखकर बौद्धिक जिज्ञासा रखने वाले जैनेन्द्र का मन विज्ञान की ओर आकर्षित हो गया। विज्ञान के प्रति इस गहरी रुचि और अपनी माँ की प्रेरणा के कारण उन्होंने 'आर्ट्स' छोड़कर भौतिक विज्ञान के अध्ययन की ओर रुख किया।

इसी समय देशभर में गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन तेजी से फैल रहा था। सरकारी कर्मचारी और विद्यार्थी बड़ी संख्या में अपनी संस्थाएँ छोड़कर इस आंदोलन में शामिल हो रहे थे। युवा जैनेन्द्र भी इस राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित हुए। उन्होंने अपने मामा से अनुमति प्राप्त कर सन् 1920 में गाँधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया और परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया गया। इस घटना के बाद उनकी औपचारिक शिक्षा का अंत हो गया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनका परिचय सुप्रसिद्ध कवयित्री और कांग्रेस की सक्रिय कार्यकर्ता सुभद्रा कुमारी चौहान से हुआ। सुभद्राजी के व्यक्तित्व और उनके कार्यों से जैनेन्द्र अत्यंत प्रभावित हुए। धीरे-धीरे उनके बीच आत्मीय संबंध स्थापित हो गया। वे एक ही स्थान पर रहते हुए लंबे समय तक सहकर्मियों की तरह साथ-साथ कार्य करते रहे, जिससे उनके संबंध और भी गहरे हो गए। दोनों कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए। इस प्रकार जैनेन्द्र की राजनीतिक सक्रियता और सुभद्राजी के साथ निकटता निरंतर बढ़ती रही। अंततः अधिवेशन समाप्त होने के बाद उनकी माता रमादेवी वहाँ पहुँचीं और उन्हें अपने साथ घर ले आईं।

घर लौटने पर जैनेन्द्र के मन में भविष्य को लेकर कोई स्पष्ट योजना नहीं थी। वे कुछ समय तक उदास और निरुत्साहित बने रहे किंतु यह निष्क्रियता अधिक समय तक नहीं चली। उनकी माता चाहती थीं कि उनका पुत्र किसी ऐसे व्यवसाय में लग जाए जिससे उसका भविष्य सुरक्षित और स्थिर बन सके। इसी उद्देश्य से उन्होंने जैनेन्द्र के लिए 'फर्नीचर' का एक कारखाना खुलवा दिया। संभवत: अपने पुत्र को सक्रिय राजनीति से दूर रखकर उसके जीवन को सुरक्षित बनाने की मातृसुलभ भावना ही इसके पीछे थी। कारखाना ठीक-ठाक चल ही रहा था कि मामाजी के आदेश पर जैनेन्द्र को झंडा सत्याग्रह में भाग लेने के लिए नागपुर जाना पड़ा। सन् 1923 में वे वहाँ संवाददाता के रूप में भी कार्य कर रहे थे। इसी दौरान पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्हें तीन महीने की जेल हुई। यह उनका पहला जेल-अनुभव था। तीन महीने बाद जब वे जेल से वापस घर लौटे तो उन्हें पता चला कि फर्नीचर का कारखाना पूरी तरह उनके साझेदार के कब्जे में चला गया है। इस स्थिति में जैनेन्द्र के सामने जीवन एक बड़ी समस्या बनकर खड़ा हो गया और वे लंबे समय तक बेरोजगार रहे।

इसी बीच उन्होंने अपने मामा के साथ पैदल कश्मीर की यात्रा की और संसार के अत्यंत सुंदर प्रदेश के दर्शन किए। फिर भी उनके जीवन की दिशा स्पष्ट नहीं हो पाई। दिन इसी प्रकार बीतते रहे। एक दिन उन्हें प्रसिद्ध लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री की रचना 'अन्तस्तल' पढ़ने का अवसर मिला। उसमें प्रकाशित गद्य-काव्यों ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि उन्होंने स्वयं 'देश जाग उठा' शीर्षक से एक गद्य-काव्य की रचना कर डाली। 'अज्ञात' नाम से माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित पत्र 'कर्मवीर' में प्रकाशित यह रचना उनका पहला साहित्यिक प्रयास माना जा सकता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ही इस रचना का उत्साहपूर्वक परिचय माखनलाल चतुर्वेदी से कराया था।

इसके बाद जैनेन्द्र ने एक और रचना लिखी जिसे शास्त्रीजी ने 'विश्वमित्र' पत्रिका में भेजा परंतु वह प्रकाशित नहीं हुई। फिर उन्होंने ''देवी अहिंसे'' नामक गद्य-काव्य लिखकर 'विशाल भारत' को भेजा। उसका प्रकाशन तो 'विश्वमित्र' में हुआ किंतु शास्त्रीजी के नाम से। इस प्रकार साहित्य जगत में उनका प्रवेश तो हो गया लेकिन इससे उनकी जीविका की समस्या का समाधान नहीं हो पाया। इसलिए उन्होंने कुछ समय के लिए साहित्य-लेखन छोड़कर नौकरी की तलाश शुरू कर दी।

वे 'विशाल भारत' के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी से मिले जिन्होंने उन्हें कलकत्ता जाने की सलाह दी। कलकत्ता पहुँचकर उन्होंने कई दिनों तक नौकरी की खोज की लेकिन सफलता नहीं मिली। अंतत: अपनी जमा-पूँजी खर्च कर वे खाली हाथ वापस घर लौट आए। गहरी निराशा और अकेलेपन की स्थिति में वे जैसे अंधकारमय एकांत में बंद हो गए। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आगे क्या किया जाए। निष्क्रियता, अवसाद, आत्मग्लानि और उद्देश्यहीनता के इन दिनों में उन्होंने पुस्तकों में ही कुछ राहत ढूँढने का प्रयास किया। मानसिक तनाव इतना बढ़ गया कि एक समय उन्होंने आत्महत्या तक का विचार किया। ऐसी विपरीत और अभावपूर्ण परिस्थितियों में उनके भीतर छिपी सृजनात्मक चेतना जाग उठी और उन्हें लेखन की ओर प्रेरित किया। इसका पहला परिणाम उनकी पहली कहानी के रूप में सामने आया। फिर भी जीविका की समस्या यथावत बनी रही। उन्होंने फिर से नौकरी की तलाश शुरू की। इसी बीच सन् 1928 में श्री रामचन्द्र शर्मा द्वारा संपादित 'महारथी' पत्र में उन्हें एक छोटी-सी नौकरी मिल गई। वहाँ उनके साथ स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े मैनपुरी षड्यंत्र केस के कालीचरण शर्मा भी कार्य करते थे। 'महारथी' में वेतन बहुत कम था, इसलिए दोनों ने नौकरी छोड़ दी। कालीचरण शर्मा राजस्थान के एक विद्यालय में पच्चीस रुपए मासिक वेतन पर 'हेडमास्टर' बन गए, जबकि जैनेन्द्र पहले की तरह बेरोजगार रहे।

जब कालीचरण शर्मा ने अपने विद्यालय में हस्तलिखित पत्रिका 'ज्योति' निकाली तो उन्होंने जैनेन्द्र से भी उसमें लिखने का आग्रह किया। जैनेन्द्र ने जो रचना भेजी, उसे कालीचरण ने अपनी पत्रिका में शामिल कर लिया। लगभग छह महीने बाद कालीचरण शर्मा की नौकरी छूट गई और वे 'ज्योति' की पूरी फाइलों के साथ दिल्ली आए तथा जैनेन्द्र से मिले। उन्हीं फाइलों में जैनेन्द्र की तीन रचनाएँ थीं जिनमें से ''खेल'' नामक रचना सन् 1928

में 'विशाल भारत' में कहानी के रूप में प्रकाशित हुई। इस कहानी के लिए उन्हें चार रुपए का पारिश्रमिक मिला। इससे उनकी माँ बहुत प्रसन्न हुईं और स्वयं जैनेन्द्र को भी लेखक होने का आत्मसम्मान अनुभव हुआ। इस प्रकार वे अपने निकम्मेपन की भावना से मुक्त हो सके।

'खेल' के प्रकाशित होने के बाद जैनेन्द्र लेखन-कार्य में अधिक सक्रिय हो गए। उन्होंने लेखन को ही अपना पेशा बना लिया और लगातार कहानियाँ लिखने लगे। एक के बाद एक रचनाएँ लिखकर वे साहित्यिक पहचान बनाने का प्रयास करते रहे। इसके लिए उन्हें प्रारंभिक समय में काफी संघर्ष भी करना पड़ा। 'खेल' के बाद उन्होंने तीन कहानियाँ लिखीं और उन्हें हिंदी प्रचारिणी सभा में पढ़कर सुनाया। उनमें से एक कहानी 'देशप्रेम' शीर्षक से 'महारथी' पत्रिका में भेजी गई परंतु कई महीनों तक वह प्रकाशित नहीं हुई। तब उन्होंने उसे वापस लेने के लिए एक और कहानी लिखने का वादा किया।

'स्पर्श' नामक वह कहानी ऋषभचरण जैन की सलाह के विपरीत 'महारथी' को भेजने के बजाय प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द को भेज दी। परंतु प्रेमचन्द ने उसकी मौलिकता पर संदेह व्यक्त करते हुए धन्यवाद सहित उसे लौटा दिया। यह घटना भी जैनेन्द्र की सृजनात्मक चेतना को निरुत्साहित नहीं कर सकी। उन्होंने तुरंत 'अन्धे का भेद' शीर्षक से एक नई कहानी लिखी और अपनी मौलिकता का प्रमाण प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द ने इस कहानी को अपनी पत्रिका 'हंस' के विशेषांक में प्रकाशित किया। यही वह घटना थी जिसने हिंदी साहित्य के दो महान व्यक्तित्वों के बीच गहरे और स्थायी आत्मीय संबंध की नींव रखी। इस कहानी की प्रशंसा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी मुक्तकंठ से की। इससे जैनेन्द्र का लेखक के रूप में आत्मविश्वास और अधिक दृढ़ हो गया। यह घटना सन् 1928 की है।

7.4 जैनेन्द्रः साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास

जैनेन्द्र का विवाह सन् 1929 में मुज़फ्फरनगर ज़िले के बनत क्षेत्र के निवासी मास्टर विश्वंभर सहाय की पुत्री भगवती देवी के साथ हुआ। मास्टर विश्वंभर सहाय मुज़फ्फरनगर के एक सरकारी विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत थे। राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित जैनेन्द्र ने अपने विवाह को अत्यंत सादगीपूर्ण बनाने का निश्चय किया था। उन्होंने यह भी संकल्प लिया कि विवाह में अपनी ओर से कोई आर्थिक व्यय नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप बारात में मात्र पाँच व्यक्ति ही गए और पूरे विवाह का खर्च केवल साढ़े सत्रह रुपये हुआ। इस विवाह में अग्नि को साक्षी मानकर मंत्रोच्चारण आदि पारंपरिक धार्मिक कर्मकांड भी नहीं किए गए। दहेज का भी कोई प्रश्न नहीं था यहाँ तक कि वधू को आभूषण भी नहीं पहनाए गए। जैनेन्द्र की पत्नी अत्यंत पतिपरायण, कर्तव्यनिष्ठ, समझदार तथा व्यवहार कुशल थीं। इसलिए वे शीघ्र ही ससुराल की पारिवारिक परिस्थितियों तथा अपने पति के स्वभाव और प्रवृत्तियों को समझ गईं। यद्यपि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जैनेन्द्र के साहित्यिक कार्यों में रचनात्मक प्रेरणा नहीं दीफिर भी जैनेन्द्र को साहित्यकार के रूप में बने रहने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

इसी वर्ष जैनेन्द्र ने उस समय तक लिखी गई अपनी सभी कहानियों का संकलन 'फाँसी' शीर्षक से प्रकाशित कराया। लेखक के रूप में विशेषत: एक कहानीकार के रूप में पहचान स्थापित करने के बाद वे उपन्यास लेखन की ओर उन्मुख हुए। फलत: सन् 1929 में उनका पहला उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ। संवेदना और संरचना दोनों ही दृष्टियों से यह उपन्यास अपने समय की प्रवृत्तियों से भिन्न था। वस्तुत: 'परख' हिन्दी उपन्यास साहित्य में मनुष्य के आंतरिक मनोविश्व के व्यापारों को विश्लेषण का विषय बनाकर एक नई साहित्यिक दिशा की शुरुआत करने का प्रारंभिक प्रयास था।

यद्यपि जैनेन्द्र ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा से प्रेरित होकर की परन्तु उन्होंने उनका अंधानुकरण नहीं किया। इसके स्थान पर उन्होंने अपनी मौलिक सृजनात्मक दृष्टि से साहित्य को नई दिशा प्रदान की। इससे एक ओर उनकी मौलिकता सिद्ध हुई और दूसरी ओर हिन्दी कथा साहित्य को

संवेदनात्मक गहराई प्राप्त हुई। 'परख' जैनेन्द्र की इसी नवीन दिशा के आरंभ का संकेत देता है। इसमें उन्होंने बाह्य जीवन की घटनाओं से ध्यान हटाकर मानव मन की आंतरिक उलझनों, मानसिक ग्रंथियों तथा संबंधों से उत्पन्न संघर्षों का सूक्ष्म विश्लेषण किया। बाह्य जीवन के स्थूल यथार्थ को छोड़कर नारी-पुरुष संबंधों के विविध पहलुओं की पड़ताल के माध्यम से उन्होंने हिन्दी उपन्यास को नया भाव और स्वर प्रदान किया। यही कारण है कि यह उपन्यास साहित्य प्रेमियों के बीच अत्यंत सराहा गया। इस कृति पर उन्हें पाँच सौ रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ और इससे उपन्यासकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ गई। परिणामस्वरूप उनसे इसी प्रकार के उपन्यासों की मांग बढ़ने लगी।

इस समय उनकी रचनात्मक निष्क्रियता को समाप्त करने में उनके हितैषी तथा पत्रिका 'चित्रपट' के संपादक श्री ऋषभचरण जैन का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने किसी प्रकार उन्हें सक्रिय लेखन की ओर प्रेरित किया। यहाँ तक कि एक बार उन्हें कमरे में बंद करके पत्रिका के लिए उपन्यास का एक अध्याय लिखवाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका दूसरा उपन्यास 'सुनीता' सन् 1935 में प्रकाशित हुआ। इसमें भी जटिल नारी-पुरुष संबंधों के एक विशिष्ट पक्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के लेखक का नाम लिखिए।

प्रश्न 2. जैनेंद्र का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न 3. 'अंतस्तल' कृति के लेखक का नाम लिखिए।

प्रश्न 4. 'परख' उपन्यास में निहित मूल संवेदना क्या है?

प्रश्न 5. सुनीता उपन्यास का प्रकाशन वर्ष लिखिए।

'परख' के बाद 'सुनीता' की सफलता ने साहित्यिक जगत में जैनेन्द्र की प्रतिष्ठा और सुदृढ़ कर दी। अब उनकी गणना प्रेमचन्द जैसे प्रमुख कथाकारों में होने लगी। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकाशक और संपादक उनसे लगातार नए उपन्यासों की अपेक्षा करने लगे। इसी आग्रह के चलते उन्होंने शीघ्र ही दो-तीन उपन्यास लिखे, जिनमें 'त्यागपत्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह उपन्यास सन् 1937 में प्रकाशित हुआ। इसे मुंबई से निकलने वाली संस्था 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' के संपादक प्रेमीजी के अनुरोध पर लिखा गया था। इस उपन्यास में एक भतीजे की स्मृतियों के माध्यम से उसकी त्यागी हुई बुआ के जीवन की कहानी को मनोवैज्ञानिक स्तर पर एक नैतिक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जीवन की परिस्थितियों के कारण वह स्त्री तीन अलग-अलग पुरुषों के साथ संबंध बनाती है और यह यात्रा उसे सामाजिक दृष्टि से उत्कर्ष के बजाय पतन की ओर ले जाती है। इसके प्रकाशन के बाद जैनेन्द्र हिन्दी जगत में आलोचकों और पाठकों के विशेष आकर्षण का केंद्र बन गए।

इसी क्रम में सन् 1940 में प्रकाशित उपन्यास 'कल्याणी' में पति-पत्नी के जीवन में उत्पन्न मानसिक दबावों और असंतुलनों का चित्रण किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार दांपत्य जीवन में असंतुलन संबंधों को तोड़ देता है और व्यक्ति के अस्तित्व को संकट में डाल देता है। नारी के आत्मसम्मान और आत्मलाभ की आकांक्षा के टूटने की त्रासदी को भी इस उपन्यास में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित किया गया है।

'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के प्रकाशन के बाद जैनेन्द्र की ख्याति पूरे हिन्दी संसार में फैल चुकी थी। उनके उपन्यासों की माँग निरंतर बढ़ रही थी। ऐसी स्थिति में उनसे अपेक्षा थी कि वे निरंतर उपन्यास लेखन करते रहें परन्तु जैनेन्द्र का विचार भिन्न था। उनका मानना था कि साहित्य को केवल आर्थिक लाभ का साधन बनाना उचित नहीं है। इसलिए उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से धन अर्जित करने का विचार त्याग दिया।

हालाँकि उन्होंने पूर्ण रूप से लेखन कार्य नहीं छोड़ा। इस काल में उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं और

उनके संग्रह प्रकाशित हुए। 'पाजेब' (1948), 'ध्रुवयात्रा' (1949), 'जय सन्धि' (1950) आदि इसी अवधि के कहानी-संग्रह हैं। साथ ही वे साहित्यिक और वैचारिक निबंध भी लिखते रहे। उनके निबंधों का तीसरा संग्रह 'जड़ की बात' (1945) प्रकाशित हुआ। सन् 1953 तक के समय में उन्होंने कहानियों और निबंधों के अतिरिक्त भाषण और व्याख्यान के माध्यम से भी हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा की। देशभर में विभिन्न सभाओं और संस्थाओं में उन्होंने दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक और गाँधीवादी विषयों पर अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए। इन भाषणों का बाद में संग्रह रूप में प्रकाशन हुआ जिनमें 'पूर्वोदय' (1950) और 'सोच-विचार' (1952) विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसी दौरान परिस्थितिवश उन्हें एक और उपन्यास लिखना पड़ा। इसके पीछे उनके पुत्र दिलीप कुमार की भूमिका थी। हुआ यह कि सन् 1938 में उन्होंने एक उपन्यास के दो-तीन प्रारंभिक अध्याय लिखकर छोड़ दिए थे। सन् 1952 में उनके पुत्र दिलीप कुमार ने बिना अनुमति उन अध्यायों को साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के संपादक श्री सत्यकाम को दे दिया। संपादक ने पत्रिका में 'सुखदा' नाम से नए उपन्यास के प्रकाशन की घोषणा कर दी। यह समाचार सुनकर जैनेन्द्र चिंतित हो उठे क्योंकि उस समय उनके और पुत्र के संबंध भी कुछ तनावपूर्ण थे। फिर भी संपादक सत्यकाम के आग्रह पर उन्हें उपन्यास पूरा करना पड़ा। इस प्रकार उनका पाँचवाँ उपन्यास 'सुखदा' पहले 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ और बाद में सन् 1952 में पुस्तक के रूप में सामने आया।

इसके बाद उनके उपन्यासों की माँग फिर बढ़ने लगी। विशेष रूप से साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' के संपादक देवदास गांधी ने उनसे उपन्यास लिखने का आग्रह किया। मित्र के अनुरोध को स्वीकार करते हुए जैनेन्द्र ने अगले ही वर्ष 'विवर्त' नामक उपन्यास लिखाजो सन् 1953 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उन्होंने नारी-केंद्रित दृष्टिकोण से हटकर पुरुष मन की जटिलताओं का विश्लेषण किया। इसी वर्ष उन्होंने एक नया प्रयोग करते हुए रेडियो प्रसारण के लिए उपन्यास लिखा। यह प्रयोग आकाशवाणी दिल्ली के उपनिदेशक गोपालदास की प्रेरणा से हुआ था। उनके अनुरोध पर जैनेन्द्र ने एक ऐसा उपन्यास लिखा जो प्रसारण की दृष्टि से उपयुक्त हो। यह कृति 'व्यतीत' (1953) के नाम से प्रकाशित हुई और इसे हिन्दी का एक प्रारंभिक रेडियो-उपन्यास माना जाता है।

इसके बाद कुछ वर्षों तक उन्होंने यात्राएँ कीं और विभिन्न अनुभव अर्जित किए। इसी दौरान उन्हें रूस जाने का अवसर भी मिला जहाँ उन्होंने दो महीने रहकर कई ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थलों का भ्रमण किया तथा एक साहित्यिक सम्मेलन में विश्वप्रसिद्ध लेखक लियो टॉलस्टॉय की साहित्यिक महत्ता पर भाषण दिया। भारत लौटने के बाद उन्होंने अपने मित्र चन्द्रिका प्रसाद खरे के आग्रह पर 'जयवर्धन' (1956) उपन्यास लिखाजो उनका सबसे विस्तृत उपन्यास है। इसके बाद लगभग एक दशक तक उन्होंने कोई नया उपन्यास नहीं लिखा और कहानी तथा निबंध लेखन में ही सक्रिय रहे।

इस अवधि में उन्होंने चीन की यात्रा भी की और वहाँ आयोजित राष्ट्रीय साहित्यिक महोत्सव में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इस दौरान उनकी कई निबंध कृतियाँ प्रकाशित हुईं, जैसे- 'समय और हम' (1960), 'इतस्ततः' (1962), 'परिप्रेक्ष्य' (1965), 'राष्ट्र और राज्य' (1965)। सन् 1965 उनके जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष उनकी षष्ठिपूर्ति मनाई गई और उसी अवसर पर उनका उपन्यास 'मुक्तिबोध' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उस समय के भारतीय राजनीतिक जीवन की कपटपूर्ण नैतिकता और अवसरवादिता का तीखा चित्रण किया गया है। इस कृति के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

आगे चलकर उन्होंने अनेक निबंध और कृतियाँ लिखीं, जैसे 'प्रश्न और प्रश्न' (1966), 'कहानी अनुभव और शिल्प' (1967), 'अकालपुरुष गाँधी' (1968), 'काश्मीर की वह यात्रा' (1968) आदि। इसी वर्ष उनका एक और रेडियो उपन्यास 'अनन्तर' भी प्रकाशित हुआ। सन् 1970 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया जो उनके विशाल साहित्यिक योगदान की राष्ट्रीय स्वीकृति थी। इसके बाद उन्होंने अनेक

वैचारिक निबंध लिखे, जिनमें 'समय समस्या और सिद्धांत' (1971), 'बंगलादेश एक यक्ष प्रश्न' (1972) तथा 'वृत्त विहार' (1972) उल्लेखनीय हैं।

कई वर्षों के अंतराल के बाद सन् 1974 में उनका ग्यारहवाँ उपन्यास 'अनामस्वामी' प्रकाशित हुआ, जिसमें गाँधीवादी जीवनदृष्टि और चरित्र-निर्माण की चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। उनका अंतिम उपन्यास 'दशार्क' सन् 1985 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने स्त्री-सशक्तिकरण के सामाजिक पक्ष को उभारने का प्रयास किया। आरंभिक काल में कभी-कभी उनकी रचनात्मक चेतना आलस्य और निष्क्रियता से प्रभावित होती रही किन्तु जब वे पूरी तरह साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए तो अद्भुत गति और विषय-विविधता के साथ उनका लेखन निरंतर चलता रहा। यात्राओं ने उन्हें जीवन के अनेक रूपों से परिचित कराया जबकि अध्ययन और मनन ने उन अनुभवों को गहराई प्रदान की।

इस प्रकार ज्ञान और संवेदना के संतुलन के साथ आगे बढ़ते हुए उन्होंने न तो केवल भावुकता को अपनाया और न ही शुष्क बौद्धिकता को। उनके साहित्य में हृदय और बुद्धि का संतुलित समन्वय दिखाई देता है जिसने उनकी रचनाओं को भावुकता की चंचलता और नीरस बुद्धिवादिता दोनों से बचाए रखा। ऐसे सफल साहित्यिक और संतुलित वैयक्तिक जीवन के धनी जैनेन्द्र का निधन 24 दिसम्बर 1988 को हुआ। उनकी रचनाओं में बुद्धि और हृदय का अद्भुत समन्वय, मानव संवेदनाओं का जीवंत चित्रण तथा मौलिकता और सृजनात्मकता का अनुपम उदाहरण मिलता है। हिन्दी कथा साहित्य में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यह संक्षिप्त परिचय स्पष्ट करता है कि जैनेन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के विकास में उनके प्रारंभिक जीवन के अनुभवों, पारिवारिक परिवेश, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा व्यक्तिगत चिंतन का गहरा प्रभाव रहा। यही अनुभव उनके अंतर्दृष्टि और दार्शनिक दृष्टिकोण का आधार बने और इसी के कारण वे हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख और विशिष्ट रचनाकार के रूप में स्थापित हुए।

7.5 जैनेन्द्र का बौद्धिकता और अंतर्मुख सर्जना

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व के मूल में जिस प्रेरक और नियंत्रक शक्ति का स्पन्दन दिखाई देता है वह मूलत: मातृबिंब से निर्मित है। बाल्यावस्था में ही पिता के वियोग से उत्पन्न अनाथत्व का अनुभव करने वाले उस बालक के सामने उसकी माँ एक साथ संरक्षक और शिक्षिका के रूप में उपस्थित हुई। माँ का यह उदात्त और स्नेहपूर्ण रूप उनके मानसिक संसार के लिए आदर्श तथा मूल्यबोध का प्रतिरूप बन गया और जीवन के आरम्भ से लेकर अंत तक उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता रहा। यह स्वाभाविक भी था कि पिता के अभाव में माँ का व्यक्तित्व ही उनके लिए प्रेरणा और सुरक्षा का आधार बने।

पिता के निधन के पश्चात् उनके जीवन में अभिभावक के रूप में खड़े हुए मामाजी में भी उन्होंने एक प्रकार से पितृत्व का सहारा देखा। इस प्रकार उनके भीतर जो पितृभावना थी, उसकी पूर्ति कहीं न कहीं मामाजी के माध्यम से होती रही। उनकी माँ कभी भी उनके सामने भय उत्पन्न करने वाली नहीं बनीं; वे सदैव उनके जीवन में वरदान देने वाली और प्रिय प्रतीत होने वाली रही-अर्थात् 'वरदा और प्रियदा' के रूप में ही उनकी उपस्थिति बनी रही। माँ और मामा के स्नेहपूर्ण, कोमल तथा सान्त्वनादायक व्यवहार ने उनके अंतर्मन में नारीत्व की एक भव्य, कोमल, प्रेममयी और प्रेरणादायक छवि को स्थायी रूप से स्थापित कर दिया। यही कारण है कि उनके मानस में नारी का जो आकर्षक और तेजस्वी स्वरूप अंकित हुआ वही आगे चलकर उनके उपन्यासों के पात्रों में विकसित और विस्तृत रूप में दिखाई देता है। उनके कथा-साहित्य में कट्टो, सुनीता, मृणाल, सुखदा और अपरा जैसे पात्र इसी आदर्श नारी-छवि के विविध रूपों के रूप में प्रकट होते हैं।

उनके उपन्यासों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उनकी सर्जनात्मकता के मूल में नारी की यह महान छवि विद्यमान है। यह नारी मनस्विनी, श्रद्धामयी, सहनशील, त्यागमयी तथा करुणा से भरी हुई दिखाई देती

है। जैनेन्द्र के स्त्री पात्र दूसरों के दु:ख से व्याकुल हो उठते हैं, और इस संवेदनशीलता के पीछे कहीं न कहीं उनकी माँ का ही करुणामय हृदय धड़कता हुआ प्रतीत होता है। वस्तुत: यह कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के कृतित्व को उनके व्यक्तित्व की भाँति कोमल, आत्मीय तथा त्यागभाव से परिपूर्ण बनाने में बाल्यावस्था में ही अनुभव की गई मातृत्व की ममतामयी अनुभूति ने एक अव्यक्त किंतु अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरणा का कार्य किया। 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है'। जैनेन्द्र के सर्जनात्मक जीवन के आरम्भ के संदर्भ में यह कथन पूर्णत: सत्य प्रतीत होता है। उन्होंने साहित्य की दुनिया में इसलिए प्रवेश नहीं किया कि उनके भीतर कवि-यश प्राप्त करने की तीव्र लालसा थी। इसके विपरीत, उन्होंने लेखन इसलिए प्रारम्भ किया क्योंकि उस समय जीविको पार्जन का उनके पास कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं था। जीवन की कठिन परिस्थितियों से घबराए उनके अंतर्मन में जैसा कि पहले संकेत किया गया है सहज रूप से जाग्रत सृजनशीलता ने उन्हें साहित्य की ओर मोड़ दिया।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आर्थिक आवश्यकता से प्रारम्भ हुआ उनका रचनात्मक जीवन जीवनभर सक्रिय और अविच्छिन्न बना रहा। इसका कारण यह था कि उनके भीतर मौलिक प्रतिभा का सशक्त स्रोत विद्यमान था। वास्तव में उस प्रतिभा को जाग्रत करने के लिए बाह्य परिस्थितियों के एक विशेष प्रकार के साहचर्य की आवश्यकता थी और यह भूमिका उनकी आर्थिक तंगी ने निभाई। जैनेन्द्र मूलत: सहज प्रतिभा की ऐसी भस्म से ढकी हुई चिनगारी थे जिसे प्रज्वलित होने के लिए केवल एक बाहरी प्रेरणा की आवश्यकता थी।

जैनेन्द्र स्वभावत: अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के साहित्यकार थे। वे सामाजिक चेतना से परिचित और जागरूक रहते हुए भी सामाजिक गतिविधियों के शोर-शराबे से अपने को प्राय: अलग ही रखते थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष दुर्बल था। वस्तुत: वे स्वतंत्रता-संग्राम के सक्रिय सेनानी के रूप में अपने समय के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते रहे और कई बार जेल भी गए। वे अज्ञेय जैसे अपने घनिष्ठ मित्रों के साथ खुले साहित्यिक संवादों में भी संलग्न रहते थे। यहाँ तक कि वे स्वयं को अज्ञेय के लिए गुरुस्थानीय मानते थे। 'हंस' पत्रिका के संपादक के रूप में वे अपने तथा समकालीन लेखकों के रचनात्मक कार्यों से भी गहरे रूप में जुड़े रहे।

फिर भी इन सभी सक्रियताओं के बीच वे अपने भीतर एक प्रकार की निर्लिप्त दूरी बनाए रखते थे। एक अर्थ में वे स्वयं-निर्मित व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसे व्यक्तियों में प्राय: तीव्र आत्मविश्वास और समाज में स्वयं को स्थापित करने की गहरी आत्मसम्मानपूर्ण आकांक्षा पाई जाती है, और यही प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता भी थी। उनकी इस प्रवृत्ति की झलक 'अनन्तर' के प्रसाद 'मुक्तिबोध' के मि. सहाय जैसे पात्रों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

यद्यपि वे अपने समय की राजनीतिक हलचलों और साहित्यिक गतिविधियों से भली-भाँति परिचित थे और गहरे सामाजिक तथा साहित्यिक सम्बन्ध भी बनाए रखते थे फिर भी अपनी स्वाभाविक अन्तर्मुखता और उससे उत्पन्न निस्पृहता के कारण उन्होंने इन परिस्थितियों का व्यक्तिगत लाभ उठाने का प्रयास नहीं किया। संभवत: यही कारण है कि हिन्दी साहित्य-जगत में अत्यन्त प्रभावशाली उपस्थिति होने के बावजूद उन्होंने अपने नाम से किसी प्रकार का दल या गुट बनाने की प्रवृत्ति से स्वयं को दूर रखा। भारतीय कर्म-सिद्धान्त के अनुरूप- 'संगंत्यक्तवा फलानिच'-कर्म करते हुए जीवन-यात्रा और साहित्य-साधना को पूर्ण करने की जो प्राचीन भारतीय मानसिकता है उसका प्रभाव उनके जीवन में स्पष्ट दिखाई देता है। अन्यथा अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाकर वे अपने लिए पुरस्कारों और सम्मानों का एक बड़ा संग्रह भी कर सकते थे।

जीवन-वृत्त के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि बचपन से ही जैनेन्द्र में सामान्य बालसुलभ भावुकता और भोलेपन की अपेक्षा बौद्धिक प्रवृत्ति अधिक प्रबल थी। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि वे मूलत: जीवन को बौद्धिक दृष्टि से देखने वाले मननशील व्यक्ति थे। उनकी यही बौद्धिक तीक्ष्णता उन्हें बाल्यकाल में ही सामान्य खेलों से हटाकर शतरंज जैसे चिंतन प्रधान खेलों की ओर आकर्षित करती थी। इतना ही नहीं, इसी बौद्धिक प्रवृत्ति के कारण उन्होंने कॉलेज की शिक्षा में मानवीय विषयों के स्थान पर वैज्ञानिक विषयों का चयन किया।

बौद्धिकता पर आधारित यथार्थवादी जीवन-दृष्टि ने ही उन्हें जीविका के लिए लेखन को स्वीकार करने की दिशा में प्रेरित किया। यही बौद्धिकता उनके साहित्यिक सृजन के प्रत्येक स्तर पर दिखाई देती है-चाहे वह विषय-चयन हो, पात्रों का निर्माण हो अथवा रचना की संरचना का विधान। व्यक्ति के रूप में जैनेन्द्र जितने निजी, आत्मकेन्द्रित और अन्तर्मुख दिखाई देते हैं, उतने ही रचनाकार के रूप में वे व्यापक, अनन्त और विशिष्ट हैं। हिन्दी साहित्य को उन्होंने जो योगदान दिया, वह उसे एक विशिष्ट सर्जनात्मक दिशा प्रदान करता है। साथ ही उनके उपन्यास हिन्दी औपन्यासिक साहित्य की प्रगति और समृद्धि में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सहज प्रतिभा से सम्पन्न जैनेन्द्र ने अपनी तीक्ष्ण बौद्धिकता के आधार पर मनुष्य के अन्तर्जगत में प्रवेश किया। उन्होंने मनुष्य के मन की जटिलताओं को समझने और उनकी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया। अपने समय के जीवन को कलुषित करने वाली समस्याओं का उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया और उन खतरों की ओर संकेत किया जो समाज और मनुष्य के आन्तरिक जीवन को प्रभावित कर रहे थे। उनका साहित्य केवल कथा नहीं बल्कि मानव-मन की गहन पड़ताल और जीवन-सत्य की खोज का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास भी बन जाता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

कहानी: अपना-अपना भाग्य के प्रमुख पात्र

पहाड़ी बालक (मुख्य पात्र):

यह लगभग 10-12 वर्ष का एक निर्धन और असहाय बालक है। वह काम की तलाश में अपने घर से निकलकर नैनीताल आता है। उसके पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं हैं और वह भूख-प्यास से भी परेशान रहता है। फिर भी उसके भीतर स्वाभिमान है और वह भीख मांगने के बजाय मेहनत करके जीना चाहता है। कठिन परिस्थितियों और अभावों के कारण अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है।

लेखक / कथावाचक:

कहानी में लेखक स्वयं कथावाचक के रूप में उपस्थित हैं। वे पढ़े-लिखे और समझदार व्यक्ति हैं, जो समाज के संपन्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे बालक की दयनीय स्थिति देखकर दुखी तो होते हैं लेकिन सामाजिक परिस्थितियों और अपनी सीमाओं के कारण उसकी वास्तविक सहायता नहीं कर पाते और केवल सहानुभूति व्यक्त करते हैं।

लेखक का मित्र:

लेखक का मित्र बहुत संवेदनशील स्वभाव का व्यक्ति है। जब वह बालक के फटे कपड़े और नंगे पैर देखता है, तो उसे गहरा दुख होता है। वह समाज की कठोरता और अमीर वर्ग की उदासीनता को महसूस करता है। अंततः वह यह सोचकर चुप हो जाता है कि संसार में हर व्यक्ति अपने-अपने भाग्य के अनुसार ही जीवन जीता है।

इस प्रकार इन पात्रों के माध्यम से कहानीकार जैनेन्द्र कुमार ने समाज में व्याप्त गरीबी, असमानता और मानवीय संवेदना के प्रश्न को उजागर किया है।

7.6 अपना-अपना भाग्य कहानी का सार

जैनेन्द्र की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' समाज में आर्थिक असमानता, मानवीय संवेदनाओं और जीवन की कठोर वास्तविकताओं का गहन चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी गरीबी, लाचारी और इंसानी स्वार्थ के बीच संतुलन बनाए रखने की कठिनाइयों को उजागर करती है। लेखक ने एक छोटे पहाड़ी बालक के माध्यम से दिखाया है कि अमीर और गरीब के जीवन अनुभव कितना अलग होते हैं। नैनीताल की ठंडी वादियों में घटित

यह कथा पाठक को संवेदनशील बनाती है और गरीबों के जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक असमानताओं के प्रति जागरूक करती है। कहानी के माध्यम से जैनेन्द्र यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि इंसान की दया और करुणा सीमित साधनों से बाधित हो सकती है। कहानी का मूल संदेश यह है कि हर व्यक्ति का जीवन अलग होता है और भाग्य की मार समान नहीं होती। गरीबों का जीवन न केवल भौतिक अभावों से संघर्ष करता है बल्कि सामाजिक उदासीनता और जीवन की कठोर वास्तविकताओं का भी सामना करता है।

कहानी की शुरुआत दो मित्रों से होती है, जो नैनीताल में चार रुपए प्रति दिन के किराए वाले छोटे से कमरे में ठहरे हैं। रात का समय है और हवा इतनी तेज है कि कमरे में बैठना और ठंडी रात में सोना मुश्किल हो गया है। कमरे में हलचल और बातचीत के बीच यह स्पष्ट होता है कि सामान्य जीवन में भी मनुष्य की चिंताएँ और समस्याएँ निरंतर रहती हैं। दोस्त हंसी-ठिठोली कर रहे हैं लेकिन उनकी हृदय-स्थिति और बाहरी ठंड की मार इस हंसी में छिपी उदासी को उजागर करती है। कमरे से बाहर निकलते ही मित्र अपनी जेब में हाथ डालते हैं और महसूस करते हैं कि उनके पास कुछ खाने के लिए पर्याप्त छोटी राशि नहीं है। उनके पास केवल दस रूपए के नोट हैं। इस दृश्य के माध्यम से जैनेन्द्र ने आर्थिक तंगी और सीमित साधनों का प्रभाव बड़े सहज ढंग से दिखाया है। पास में मौजूद गरीब लड़का, जो सड़क के किनारे ठिठुर रहा है, उनकी आँखों में तुरंत ध्यान खींचता है। लड़के की उम्र लगभग दस वर्ष के आसपास है, वह ठंडी हवाओं में कांप रहा है और उसकी हालत बेहद दयनीय है।

मित्र चाहते हैं कि लड़के को कुछ दिया जाएलेकिन पास में सही पैसे न होने के कारण वे असहाय महसूस करते हैं। जैनेन्द्र ने यहाँ मानवीय दया और आर्थिक तंगी के बीच संघर्ष को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। यह दृश्य यह दिखाता है कि इंसान का हृदय दया और करुणा से भरा हो सकता है, पर सीमित साधन उसे पूरी मदद करने से रोकते हैं। दोस्तों ने फैसला किया कि लड़के को अभी कुछ नहीं दिया जा सकता। उन्होंने उससे कहा कि वह अगले दिन 'होटल-डी पव' में आए। लड़का थोड़ी निराशा और थोड़ी उम्मीद के साथ वहाँ से चला जाता है। इस दृश्य के माध्यम से कहानी में जीवन में असमानता और मजबूरियों की वास्तविकता को दिखाया गया है। यह बताता है कि इंसान के पास जितनी संवेदना होवह हमेशा प्रभावी रूप से व्यक्त नहीं हो सकती क्योंकि आर्थिक और सामाजिक सीमाएँ उसके कार्यों को नियंत्रित करती हैं।

रात की ठंड, कठिन परिस्थितियाँ और लड़के की कमजोर स्थिति का वर्णन पाठक को उस वातावरण में खींच ले जाता है। मित्र ठंडी हवाओं में सिकुड़ते हुए अपने कोट के भीतर खुद को गर्म रखने की कोशिश करते हैं जबकि उनके सामने गरीब लड़के की दयनीय स्थिति होती है। जैनेन्द्र ने यहां इंसानी स्वार्थ और उदासीनता की पतली रेखा को भी दिखाया है। मित्र खुद गर्म बिस्तर और सुविधा में सुरक्षित हैं पर उनकी संवेदनाएँ सीमित साधनों के कारण पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पा रही हैं। अगले दिन, जब मित्र और लेखक अपनी नैनीताल यात्रा समाप्त करके वापसी की तैयारी कर रहे थेतो उन्हें दुखद समाचार मिला कि वही लड़का पिछली रात ठंड से मर गया। वह सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे, अत्यंत कमजोर अवस्था में पड़ा था। जैनेन्द्र ने इस दृश्य का वर्णन मार्मिक ढंग से किया है। उन्होंने बताया कि बालक के शरीर पर बर्फ़ की हल्की चादर चिपकी हुई थी मानो प्रकृति ने उसके लिए अंतिम सम्मान और अंतिम कफ़न प्रदान किया हो। यह घटना पाठक को गहराई में सोचने पर मजबूर करती है और गरीबी के भयावह परिणामों को उजागर करती है।

कहानी का यह अंतिम दृश्य अत्यंत मार्मिक है। गरीब बालक का भाग्य, उसकी असहायता और जीवन की कठिनाइयाँ, अमीर और सुखी जीवन के विपरीत दृष्टांत प्रस्तुत करती हैं। मित्रों की असहायता, उनका स्वार्थ और उदासीनता भी कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैनेन्द्र ने स्पष्ट किया है कि इंसान की सीमित साधन और स्वार्थ कभी-कभी उसकी दया और करुणा को पूरी तरह व्यक्त नहीं होने देते।

कहानी में नैनीताल की ठंडी वादियों, सड़क के किनारे की वीरानी और पहाड़ी जीवन की कठिनाइयों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया गया है। लेखक ने प्राकृतिक वातावरण का उपयोग कहानी के भाव को और गहराई देने के लिए किया है। बालक की मृत्यु और उसके साथ हुई घटनाएँ जीवन की कठोर वास्तविकताओं को दर्शाती हैं।

कहानी का शीर्षक 'अपना अपना भाग्य' पूरी तरह उपयुक्त है क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि हर व्यक्ति का जीवन अनुभव अलग होता है और भाग्य की मार भी समान नहीं होती। गरीब और अमीर के जीवन में अनुभव और अवसरों में गहरा अंतर होता है। इंसानी दया और करुणा आर्थिक और सामाजिक बाधाओं के कारण हमेशा पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पाती। समाज में असमानता और संसाधनों की कमी गरीबों को असहाय और पीड़ित बनाती है।

जैनेन्द्र की कहानी पाठकों को संवेदनशील बनाती है और सामाजिक न्याय, गरीबी और मानवीय दया पर विचार करने को प्रेरित करती है। लेखक ने सामान्य घटना को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे पाठक की संवेदनाएँ जागृत होती हैं। यह कहानी यह दिखाती है कि हमारे छोटे-छोटे निर्णय और स्वार्थ कभी-कभी दूसरों के जीवन को प्रभावित कर सकते हैं और भाग्य का खेल जीवन की कठोर सच्चाइयों में छुपा होता है।

कहानी का यह कथ्य हमें यह भी सिखाता है कि किसी के भाग्य और जीवन की परिस्थितियों के बारे में अनुमान लगाना आसान नहीं है। हम अक्सर जीवन की गति और भाग्य के नियमों को समझने में असफल रहते हैं। गरीब बालक के जीवन का अंत यह याद दिलाता है कि प्राकृतिक कठिनाइयाँ और सामाजिक असमानताएँ कभी-कभी जीवन को असहाय बना देती हैं और इंसानी संवेदनाएँ सीमित साधनों में फंसी रह जाती हैं। जैनेन्द्र ने कहानी में यह भी संकेत दिया है कि दया, करुणा और स्वार्थ तीनों इंसानी भावनाएँ एक साथ चलती हैं। हम दूसरों के दुख को देखकर प्रभावित होते हैंपर संसाधनों की कमी और अपने स्वार्थ के कारण हमारी सहायता अधूरी रह जाती है। यह कहानी पाठक को सोचने पर मजबूर करती है कि कैसे हम अपने भाग्य और परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाए रखते हैं और दूसरों की कठिनाइयों के प्रति संवेदनशील बने रहते हैं।

7.7 कहानी की समीक्षा

जैनेंद्र कुमार हिंदी कथा-साहित्य के उन महत्वपूर्ण रचनाकारों में हैं जिन्होंने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का अत्यंत सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया। उनके साहित्य में बाहरी घटनाओं से अधिक मनुष्य के अंतर्मन की हलचल, उसके द्वंद्व, उसकी संवेदनाएँ और उसकी स्वार्थपरक प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं। अपने समय में उन्होंने जिस साहस और नवीन दृष्टि के साथ मनुष्य के व्यवहार का विश्लेषण किया वह हिंदी कहानी को एक नया आयाम देता है। जैनेंद्र की कहानियाँ केवल मनोरंजन नहीं करतीं, बल्कि समाज और व्यक्ति के बीच मौजूद गहरे अंतर्विरोधों को उजागर करती हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'अपना-अपना भाग्य' इसी दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यह कहानी समाज में व्याप्त गरीबी, सामाजिक विषमता और मानव संवेदनहीनता को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी का केंद्र एक दस वर्षीय पहाड़ी बालक है जो भूख, अभाव और पारिवारिक विवशता से भागकर नैनीताल पहुँच जाता है। यहाँ वह जीवन की कठोर परिस्थितियों से जूझ रहा है-न उसके पास भोजन है, न पर्याप्त कपड़े और न ही रहने का कोई ठिकाना। दूसरी ओर कहानी में उच्चवर्गीय, शिक्षित और सम्पन्न लोगों का चित्रण है जो सहानुभूति का प्रदर्शन तो करते हैं, पर वास्तविक सहायता के समय पीछे हट जाते हैं। इस प्रकार कहानी समाज की उस मानसिकता को उजागर करती है जिसमें गरीबों की पीड़ा को उनका 'भाग्य' कहकर अपनी जिम्मेदारी से बचा लिया जाता है।

कहानी में लेखक और उसके मित्रों का सामना उस गरीब बालक से होता है। जिज्ञासा के कारण वे उससे बातचीत करते हैं और उसके जीवन की त्रासदी धीरे-धीरे सामने आती है। बालक अपनी स्थिति के बारे में अत्यंत सहज और मासूम शब्दों में बताता है- 'मेरे कई छोटे भाई-बहिन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था, माँ भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था।

उसी गाँव का था-मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। वह अब नहीं हैं। कहाँ गया ? मर गया।' यह छोटा-सा संवाद अत्यंत गहरी सामाजिक सच्चाई को उजागर करता है। इतने कम शब्दों में उस बालक के जीवन का पूरा संघर्ष सामने आ जाता है। उसके कथन में न कोई शिकायत है, न कोई आक्रोश—सिर्फ एक सादा-सा तथ्यात्मक बयान है। यह सरलता ही उसकी पीड़ा को और अधिक मार्मिक बना देती है। वह बताता है कि उसके पिता भूख से परेशान होकर उसे मारते थे और माँ स्वयं भूखी रहकर रोती थी। ऐसे वातावरण से बचने के लिए वह घर छोड़कर चला आया। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि गरीबी केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि वह परिवार के रिश्तों को भी तोड़ देती है। भूख और अभाव मनुष्य को संवेदनहीन बना देते हैं।

जब वह यह कहता है कि उसका साथी मर गया तब यह बात और भी अधिक हृदयविदारक लगती है। इतनी छोटी उम्र में ही उसके लिए मृत्यु कोई असाधारण घटना नहीं रह गई है। यह स्थिति दर्शाती है कि अभावग्रस्त जीवन में बच्चों का बचपन बहुत जल्दी समाप्त हो जाता है और वे समय से पहले जीवन की कठोर सच्चाइयों से परिचित हो जाते हैं। लेखक स्वयं भी इस उत्तर से विचलित हो उठता है और उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार सामने आती है- 'मर गया ?' यह कितनी बेबसी भरी बात है जो हमारे समाज का सच को उजागर करता है। जिसके पास खाने, रहने और ओढ़ तक के लिए कुछ नहीं है।

यह प्रसंग समाज की उस स्थिति को प्रकट करता है जहाँ निर्धनता मनुष्य को धीरे-धीरे मृत्यु की ओर धकेल देती है। भोजन, वस्त्र और आश्रय जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित व्यक्ति जीवन के लिए संघर्ष करता हुआ अंततः हार जाता है। इस बालक की स्थिति केवल उसकी व्यक्तिगत त्रासदी नहीं है बल्कि वह समाज के असंख्य गरीब बच्चों की स्थिति का प्रतीक है। इसके विपरीत कहानी में उच्च वर्ग का चित्रण भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया गया है। लेखक और उसके मित्र सम्पन्न और शिक्षित लोग हैं, जिनके पास आराम और सुविधाओं की कोई कमी नहीं है। उनका बाहरी रूप ही उनके वैभव और आरामदायक जीवन को दर्शाता है- 'वकील लोग होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आए। कश्मीरी दोशाला लेपेटे थे, मोज़े-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।'

यह वर्णन केवल बाहरी सजावट का चित्रण नहीं है बल्कि इसके माध्यम से लेखक वर्गभेद की तीखी रेखा को सामने लाते हैं। एक ओर ठंड से ठिठुरता हुआ गरीब बालक है जिसके पास तन ढकने के लिए भी पर्याप्त कपड़े नहीं हैं और दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो गर्म दोशालों और आरामदायक वस्त्रों में लिपटे हुए हैं। उनके स्वर में झुँझलाहट और लापरवाही यह संकेत देती है कि वे गरीबों की पीड़ा को गंभीरता से नहीं लेते। वे बालक के प्रति सहानुभूति तो प्रकट करते हैं लेकिन जब सहायता का वास्तविक अवसर आता है तो वे व्यावहारिक कदम उठाने से बचते हैं। कोई व्यक्ति इसलिए मदद नहीं करता क्योंकि उसके पास दस-दस रुपये के नोट हैं और वह छोटा पैसा देना नहीं चाहता। यह प्रसंग समाज की उस मानसिकता को उजागर करता है जिसमें लोग छोटी-सी असुविधा के कारण भी दूसरों की सहायता से पीछे हट जाते हैं।

कहानी का सबसे मार्मिक और प्रभावशाली भाग उसका अंत है। लेखक और उसके मित्र बालक को अगले दिन होटल में आने के लिए कहते हैं मानो वे उसकी सहायता करेंगे। परंतु नियति कुछ और ही तय कर चुकी होती है। अगले दिन उन्हें जो समाचार मिलता है, वह अत्यंत दुखद है- 'मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला-कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया। मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की क़मीज़ मिली! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था। पर बताने वालों ने बताया कि ग़रीब के मुँह पर, छाती मुट्ठी और पैरों पर बर्फ़ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठंडे कफ़न का प्रबंध कर दिया था! सब सुना और सोचा—अपना-अपना भाग्य!'

यह अंतिम प्रसंग कहानी की आत्मा है। यहाँ लेखक ने अत्यंत तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है। मनुष्यों की दुनिया उस बालक को जीवन देने में असफल रहीपरंतु प्रकृति ने उसे मृत्यु के बाद कफन दे दिया। बर्फ की

सफेद चादर एक प्रतीक बन जाती है-मानो वह समाज की निर्लज्जता और संवेदनहीनता को ढक रही हो। 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक का वास्तविक अर्थ भी इसी स्थान पर स्पष्ट होता है। उच्च वर्ग के लोग बालक की मृत्यु को उसका भाग्य मानकर अपने मन को शांत कर लेते हैं। यह सोच उन्हें अपराधबोध से बचा लेती है। इस प्रकार लेखक दिखाते हैं कि भाग्यवाद अक्सर मनुष्य की जिम्मेदारी से बचने का एक आसान साधन बन जाता है। समग्र रूप से देखा जाए तो यह कहानी केवल एक गरीब बालक की मृत्यु की कथा नहीं है बल्कि समाज की नैतिक विफलता का दस्तावेज है। जैनेंद्र कुमार ने अत्यंत सरल भाषा और छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार संवेदनहीनता धीरे-धीरे समाज की प्रवृत्ति बन जाती है। अंततः 'अपना-अपना भाग्य' हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि क्या केवल सहानुभूति व्यक्त करना ही पर्याप्त है या फिर मनुष्य को दूसरों की सहायता के लिए वास्तविक कदम भी उठाने चाहिए। यह कहानी समाज के सामने एक दर्पण की तरह खड़ी होती है और हमें अपने भीतर झाँकने के लिए विवश करती है कि कहीं हम भी तो दूसरों की पीड़ा को 'भाग्य' कहकर उससे आँखें नहीं चुरा रहे।

7.8 सारांश

इस इकाई में हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन किया गया है। इसमें उनके जीवन-परिचय, साहित्यिक योगदान तथा हिंदी कथा साहित्य में उनके विशेष स्थान पर चर्चा की गई है। जैनेन्द्र कुमार को मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में जाना जाता है जिन्होंने मानव मन की गहराइयों, नैतिक द्वंद्व और भावनात्मक स्थितियों को अपनी रचनाओं में अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। इकाई में उनकी प्रमुख कृतियों जैसे त्यागपत्र, सुनीता और परख आदि का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। इन कृतियों में मनोवैज्ञानिकता, आत्मविश्लेषण, मानवीय संबंधों की जटिलता तथा सामाजिक मूल्यों का चित्रण प्रमुख रूप से मिलता है।

इसके साथ ही इस इकाई में उनकी प्रसिद्ध कहानी अपना-अपना भाग्य का सार प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में जीवन की विषमताओं और भाग्य के प्रभाव को दर्शाया गया है। अंत में कहानी की समीक्षा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि लेखक ने सरल भाषा और प्रभावशाली शैली में जीवन के यथार्थ को उजागर किया है। इस प्रकार यह इकाई पाठकों को जैनेन्द्र कुमार की साहित्यिक विशेषताओं और उनकी कहानी की गहराई को समझने में सहायक बनती है।

K7.10 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: अपना-अपना भाग्य कहानी के लेखक का नाम जैनेंद्र कुमार है।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी 1905 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ ज़िले के कौड़ियागंज नामक गाँव में हुआ था।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: प्रसिद्ध लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री की रचना का नाम 'अन्तस्तल' है।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: 'परख' हिन्दी उपन्यास साहित्य में मनुष्य के आंतरिक मनोविश्व के व्यापारों को विश्लेषण का विषय बनाकर एक नई साहित्यिक दिशा की शुरुआत करने का प्रारंभिक प्रयास था। इसमें उन्होंने बाह्य जीवन की घटनाओं से ध्यान हटाकर मानव मन की आंतरिक उलझनों, मानसिक ग्रंथियों तथा संबंधों से उत्पन्न संघर्षों का सूक्ष्म विश्लेषण किया।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: जैनेन्द्र का दूसरा उपन्यास 'सुनीता' सन् 1935 में प्रकाशित हुआ।

5 7.11 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कुमार, जैनेन्द्र (1953). अपना-अपना भाग्य. दिल्ली: पूर्वोदय प्रकाशन
- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई: दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- कक्कड़, कुसुम (1975). जैनेन्द्र का जीवन-दर्शन. दिल्ली: पूर्वोदय प्रकाशन
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- कोहली, मधुरिया (1985). जैनेन्द्र कुमार: चिंतन एवं सृजन. दिल्ली: पराग प्रकाशन

M7.12 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. जैनेन्द्र द्वारा रचित तीन उपन्यासों का नाम लिखिए।
2. जैनेंद्र द्वारा रचित तीन कहानी संग्रह का नाम लिखिए।
3. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के प्रमुख पात्रों के बारे में लिखिए।
4. जैनेन्द्र द्वारा रचित चार निबंधों का नाम लिखिए।
5. जैनेन्द्र का निधन कब हुआ था?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. कहानीकार 'जैनेन्द्र' का परिचय विस्तार से अपने शब्दों में लिखिए।
2. जैनेन्द्र का साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
3. जैनेन्द्र का बौद्धिकता और अंतर्मुख सर्जना पर प्रकाश डालिए।
4. कहानीकार जैनेन्द्र का परिचय देते हुए 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का सार लिखिए।
5. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की समीक्षा अपने शब्दों में लिखिए।

****

इकाई-8 परिन्दे

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 'परिन्दे' कहानी की पात्र योजना
8.4 परिन्दे कहानी की भाषा योजना
8.5 'परिन्दे' का शिल्प
8.6 'परिन्दे' की भाषा योजना
8.7 सारांश
8.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
8.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
8.9 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- 'परिन्दे' कहानी के प्रमुख पात्रों की पहचान कर सकेंगे।
- 'परिन्दे' कहानी के पात्रों के स्वभाव और भूमिका को समझ पाएंगे।
- 'परिन्दे' कहानी की भाषा-शैली की विशेषताओं को समझेंगे।
- 'परिन्दे' की भाषा में प्रयोग हुए प्रतीकों और भावों को पहचानेंगे।
- 'परिन्दे' कहानी के शिल्पगत तत्वों से परिचित होंगे।
- 'परिन्दे' कहानी की भाषा योजना और शिल्प का मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तवना

हिन्दी कहानी में जब परिवर्तन का दौर चल रहा था, उस समय निर्मल वर्मा अपनी विशिष्ट कहानियों के साथ साहित्यिक मंच पर आये। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' नयी कहानी आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इस कहानी का प्रकाशन सबसे पहले सन् 1957 में 'हंस' पत्रिका के अर्द्धवार्षिक विशेषांक में अमृतराय द्वारा किया गया था। इसके बाद सन् 1960 में यह कहानी 'परिन्दे' नामक कहानी-संग्रह में शामिल हुई। निर्मल वर्मा ने सन् 1959 से 1970 तक भारत से बाहर रहकर चेकोस्लोवा किया समेत यूरोप के कई देशों की यात्राएँ कीं। विदेश की पृष्ठभूमि पर आधारित कई कहानियाँ भी उन्होंने लिखीं। उनके संग्रहों 'जलती झाड़ी' और 'कव्वे और कालापानी' में इन विदेशी परिवेश वाली कहानियों को पढ़ा जा सकता है। 'परिन्दे' कहानी को लेकर प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने 'आकाशवाणी इलाहाबाद' और 'कृति' पत्रिका में इसकी सराहना करते हुए समीक्षाएँ लिखीं। बाद में उन्होंने एक लेख 'नयी कहानी की पहली कृति: परिन्दे' नाम से लिखा। इस लेख की शुरुआत में ही नामवर सिंह ने कहा 'फ़कत सात कहानियों का संग्रह 'परिन्दे' निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम 'नई' कहानी कहना चाहते हैं, उसकी भी पहली कृति है।' नामवर सिंह के इस कथन ने न केवल हिन्दी कहानी की समझ को, बल्कि 'परिन्दे' कहानी की व्याख्या को भी एक नया दृष्टिकोण दिया। इसी नये दृष्टिकोण के आधार पर हिन्दी साहित्य में नई कहानी और निर्मल वर्मा की कहानियों पर लम्बे समय तक चर्चा और बहस चलती रही। इस इकाई का उद्देश्य भी यही है कि नयी कहानी आन्दोलन की बहस के केन्द्र में

रही निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी के कथ्य, शिल्प, पात्र-संरचना और भाषा-शैली को समझा जाए।

wअपनी प्रगति जांचें

1. 'परिन्दे' कहानी के लेखक कौन हैं?
2. 'परिन्दे' कहानी किस साहित्यिक आंदोलन से जुड़ी है?
3. कहानी में 'परिन्दे' किसका प्रतीक हैं?
4. डॉक्टर मुकर्जी के चरित्र की प्रमुख विशेषता क्या है?

8.3 'परिन्दे' कहानी की पात्र योजना

परिन्दे' कहानी का कथा-विन्यास कुछ चुने हुए पात्रों के इर्द-गिर्द बुना गया है। इस कहानी में जितने भी पात्र उपस्थित होते हैं, वे सभी अपने-अपने ढंग से कहानी की गहनता और प्रभाव को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस कहानी की मुख्य पात्र लतिका है। यदि हम कहानी में लतिका के चरित्र-निर्माण को समझने का प्रयास करें, तो हमें उसके 'अस्तित्व' को कहानी के भीतर महसूस करना होगा। बचपन में लतिका का स्वभाव था कि जब भी वह कोई खिलौना खो देती थी, तो चुपचाप बैठकर यह सोचती रहती थी कि आखिर उसने उसे कहाँ रख दिया। बहुत तलाशने के बाद जब वह खिलौना मिल जाता, तब भी वह बहाना करती कि अभी तक तो वह खोज ही रही है, अब तक उसे मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे वहीं छोड़कर घर के अन्य कोनों में उसे ढूँढ़ने का उपक्रम करती। ऐसा करने से वह वस्तु उसके स्मरण में बनी रहती और उसे खो देने का डर नहीं रहता। लतिका के इस मनोवैज्ञानिक व्यवहार में खोई हुई चीज़ों को पा लेने और फिर उन्हें आश्वस्त होकर छोड़ देने के अभिनय की झलक मिलती है। स्पष्ट है कि चीज़ों को पाने की उत्कंठा और फिर पा लेने के बाद उनके प्रति एक निश्चिंत उपेक्षा का भाव यह एक मजबूत और परिपक्क होते व्यक्तित्व का लक्षण है। लतिका के सम्पूर्ण चरित्र में हमें यही विशेषता उभरती हुई दिखाई देती है।

'परिन्दे' कहानी में अपनी विशिष्ट उपस्थिति दर्ज कराने वाला एक पात्र करीमुद्दीन भी है। करीमुद्दीन लड़कियों के हॉस्टल में नौकर है और लतिका की सेवा भी करता है। चूंकि वह कभी मिलिट्री में अर्दली रह चुका है, इसलिए उसकी हर गतिविधि और चाल-ढाल में सैनिक जीवन की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। जब वह लतिका के सामने चाय की ट्रे मेज़ पर रखता है, तो 'अटेंशन' की मुद्रा में खड़ा हो जाता है। यह देखकर लतिका झटके से उठकर बैठ जाती है। यदि हम कहानी में लतिका और करीमुद्दीन के आपसी सम्बन्ध को देखें, तो उनके बीच के सहज और आत्मीय संवाद का अंदाज़ा इस अंश से लगाया जा सकता है - 'सुबह से आलस करके वह कई बार जाग चुकी है। अपनी खीज मिटाने के लिए लतिका कहती है -'बड़ी सर्दी है आज, बिस्तर छोड़ने को मन नहीं कर रहा।' करीमुद्दीन तपाक से बोलता है -'अजी मेम साहब, अभी कहाँ सर्दी आई है। बड़े दिनों में देखना कैसे दाँत कटकटाते हैं।' यह कहते हुए करीमुद्दीन अपने हाथों को बगल में डालकर इस तरह सिकुड़ जाता है जैसे सर्दी की कल्पना मात्र से उसे ठिठुरन होने लगी हो। उसके गंजे सिर के दोनों ओर के बाल खिजाब लगाने के कारण कत्थई भूरे रंग के दिखाई देते हैं। इस पूरे प्रसंग में करीमुद्दीन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरता है जिसके लिए काम केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि उसकी जीवन-शैली का अभिन्न हिस्सा है। लतिका के लिए वह अपने दायित्वों को एक सहज दिनचर्या की तरह न केवल निभाता है, बल्कि पूरे मन और उत्साह के साथ करता है।

इस कहानी का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र गिरीश नेगी है। लतिका के जीवन में गिरीश नेगी का विशेष स्थान है। अपने जीवन के शुरुआती दिनों में लतिका गिरीश नेगी से प्रेम करती थी जो कुमाऊँ रेजीमेंट में कैप्टन था। हालांकि कहानी के शिल्प में इस प्रेम का कोई प्रत्यक्ष वर्णन नहीं मिलता। पाठक को इस प्रेम का आभास

लतिका द्वारा अपनी स्मृतियों में लौटने पर होता है। अपने एकाकी जीवन में लतिका अक्सर अतीत की यादों में खो जाती है। वह अपनी स्मृति में देखती है- 'वह मुड़ी और इससे पहले कि कुछ कह पाती, गिरीश ने अपना मिलिट्री वाला हैट धप से उसके सिर पर रख दिया। लतिका मन्त्रमुग्ध-सी वहीं खड़ी रह गई। उसके सिर पर गिरीश का हैट था, माथे पर छोटी-सी बिन्दी, और बिन्दी पर उड़ते हुए बाल। गिरीश ने उस बिन्दी को अपने होंठों से छुआ था। उसने उसके नंगे सिर को दोनों हाथों से थाम लिया था। 'लतिका...' गिरीश ने हँसते हुए उसे चिढ़ाया था- 'मैन ईटर ऑफ कुमाऊँ' (यह उपनाम उसने लतिका को मज़ाक में दिया था)। लतिका हँसने लगी थी। फिर गिरीश ने कहा - 'लतिका... सुनो!' उस वक़्तगिरीश का स्वर कुछ बदल गया था।

'नहीं, मैं कुछ नहीं सुन रही,' लतिका ने कहा।

'लतिका, मैं कुछ महीनों में लौट आऊँगा।'

'नहीं, मैं कुछ नहीं सुन रही।'

लेकिन वह सुन रही थी वह नहीं, जो गिरीश कह रहा था, बल्कि वह, जो नहीं कहा जा रहा था। वह, जो उसके बाद कभी कहा ही नहीं गया। 'लतिका के जीवन में गिरीश नेगी की उपस्थिति एक गहरी रागात्मक स्मृति के रूप में बनी रहती है। कहानी के शिल्प में यह उपस्थिति प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि अतीत की स्मृतियों के सहारे उभरती है। यही रागात्मक स्मृति लतिका के एकाकी जीवन में उसकी मानसिक दुनिया को आकार देती है।

'परिन्दे' कहानी में डॉक्टर मुकर्जी एक भिन्न प्रकृति का पात्र हैं। कहानी में उनका परिचय इस रूप में दिया गया है कि वे आधे बर्मी हैं, जिसकी झलक उनकी हल्की दबी हुई नाक और छोटी-छोटी चंचल आँखों में दिखाई देती है। बर्मा पर जापानियों के आक्रमण के बाद वे इस छोटे पहाड़ी शहर में आ बसे थे। प्राइवेट प्रैक्टिस के साथ वे खाली समय में एक कान्वेंट स्कूल में पढ़ाते भी हैं। डॉक्टर मुकर्जी इस कहानी को एक विशेष धरातल पर ले जाते हैं — जहाँ विस्थापन का वह दर्द है, जो तमाम सुखद परिस्थितियों के बावजूद भी व्यक्ति की चेतना में बना रहता है। भले ही समय के साथ यह पीड़ा मद्धम पड़ती हो, मगर पूरी तरह समाप्त नहीं होती। डॉक्टर मुकर्जी के भीतर भी यही दर्द है। इस पीड़ा का अहसास उनके इस कथन में स्पष्ट झलकता है - 'ह्यूबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी ज़मीन पर मर जाना कितना खौफनाक होता है।' डॉक्टर मुकर्जी के भीतर यह अजनबीयत का बोध लगातार बना रहता है। कहानी में वे लतिका और ह्यूबर्ट के साथ एक दार्शनिक, मित्र और सलाहकार की भूमिका निभाते हैं। लतिका अपने अतीत की स्मृतियों से चिपकी रहती है और उससे मुक्त होने का कोई प्रयास नहीं करती। डॉक्टर मुकर्जी बार-बार लतिका से बहस करके उसे वर्तमान में जीने की प्रेरणा देते हैं। वे लतिका से कहते हैं - 'कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज़ को न जानना यदि ग़लत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, और हमेशा उसे जोंक की तरह चिपकाए रहना भी ग़लत है।' इस पर लतिका चुप रहती है। ह्यूबर्ट, जो अपने अकेलेपन से जूझ रहा है, इसी एकाकीपन के बीच वह उस तत्व की पड़ताल करना चाहता है जो मनुष्य को अपने अतीत की स्मृतियों में बाँधकर रखता है। वह डॉक्टर मुकर्जी से पूछता है - 'डॉक्टर, सब कुछ होते हुए भी वह क्या है, जो हमें चलाता रहता है? हम चाहे रुक जाएँ, पर वह हमें अपने भाव में घसीट ले जाता है?' ह्यूबर्ट अपने अकेलेपन को बाँटने के लिए लतिका को चुनता है। वह उसके प्रति रागात्मक भाव रखता है, और एक प्रेम-पत्र भी लिखता है। हालांकि बाद में वह ग्लानि से भर उठता है। ह्यूबर्ट, डॉक्टर मुकर्जी से लतिका के व्यवहार को लेकर कुछ संकेतों के साथ चर्चा करता है, लेकिन वह नहीं चाहता कि डॉक्टर को उसके मन की भावनाओं का आभास हो। जिस कोमल अनुभूति को वह भीतर सहेजकर रखे है, डॉक्टर उसे मज़ाक या हँसी में उड़ा देगा इस आशंका से वह बचता है। कहानी के एक और क्षण में जब डॉक्टर मुकर्जी ह्यूबर्ट से पूछते हैं - 'क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट?'

तो ह्यूबर्ट थोड़ा घबरा जाता है। 'ह्यूबर्ट दम साधे प्रतीक्षा करता है। उसे मालूम था कि डॉक्टर कोई भी बात कहने से पहले दार्शनिक अंदाज़ में लंबा विचार ज़रूर करेंगे।' सहसा डॉक्टर टैरेस के जंगले के पास जाकर खड़ा

हो जाता है। फीकी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की परछाइयाँ लॉन पर फैल रही होती हैं। कभी-कभी कोई जुगनू अंधेरे में हरा प्रकाश छोड़कर हवा में गायब हो जाता है। यह दृश्य भी कहानी की उदासी और पात्रों के अकेलेपन का प्रतीक बन जाता है।

'परिन्दे' कहानी में एक गौण लेकिन महत्त्वपूर्ण पात्र फादर एलमंड हैं। वे एक पुरातनपंथी, दकियानूसी विचारधारा वाले पादरी के रूप में कहानी में उपस्थित होते हैं। उनकी सोच धर्म की आड़ में समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बनाए रखने की सोच का प्रतिनिधित्व करती है। कहानी में लतिका के हॉस्टल में अकेले रहने पर फादर एलमंड असहजता व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं - 'मिस वुड, पता नहीं आप क्या सोचती हैं। मुझे तो मिस लतिका का हॉस्टल में अकेले रहना कुछ समझ में नहीं आता।' दरअसल, फादर एलमंड की दृष्टि में किसी स्त्री का अकेले रहना अनुचित और संदेहास्पद है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का स्वतंत्र रहना अनेक आशंकाओं और शंकाओं को जन्म देता है। कहानी के भीतर यह विचारधारा फादर एलमंड के चरित्र के माध्यम से व्यक्त की गई है। जब मिस वुडजो स्वयं उसी धर्म-व्यवस्था की अंग हैं — तर्क करती हैं कि 'यह तो कान्वेंट स्कूल का नियम है कि कोई भी टीचर छुट्टियों में अपने खर्चे पर हॉस्टल में रह सकता है,' तो फादर एलमंड इसे मानने से इनकार कर देते हैं। वे मिस वुड को टोकते हुए कहते हैं —'मैं फिलहाल स्कूल के नियमों की बात नहीं कर रहा। मिस लतिका डॉक्टर के संग यहाँ अकेली ही रह जाएँगी और सच पूछिए मिस वुड, डॉक्टर के बारे में मेरी राय कुछ बहुत अच्छी नहीं है।' यह कथन दरअसल उस मानसिकता को उजागर करता है जिसमें एक पुरुष और स्त्री का अकेले रहना कई प्रकार की सामाजिक आशंकाओं और पूर्वग्रहों को जन्म देता है। मिस वुड जब यह कहती हैं 'फादर, आप कैसी बात कर रहे हैं? मिस लतिका बच्चा थोड़े ही हैं,' तो इसमें न केवल लतिका के व्यक्तित्व पर भरोसा है, बल्कि उस दकियानूसी सोच का प्रतिवाद भी है, जिसे फादर एलमंड धर्म और नैतिकता की आड़ में व्यक्त कर रहे होते हैं।

यह पूरा संवाद दरअसल कहानी के शिल्प में धर्म-संस्था के प्रतिनिधि फादर और उसी संस्था की प्रतिनिधि एक स्त्री पात्र मिस वुड द्वारा एक स्त्री (लतिका) के बारे में व्यक्त किए गए भिन्न दृष्टिकोणों का सजीव चित्रण है। जहाँ एक ओर फादर एलमंड धर्म और समाज की पितृसत्तात्मक मर्यादाओं के पैमाने से लतिका को आंकते हैं, वहीं मिस वुड एक आधुनिक, आत्मनिर्भर स्त्री की स्वतंत्रता को स्वीकार करती हैं। यही टकराव 'परिन्दे' की कथा में सामाजिक विचारधारा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संघर्ष का संकेत बनकर उभरता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

- परिन्दे कहानी का प्रकाशन सबसे पहले सन् 1957 में 'हंस' पत्रिका के अर्द्धवार्षिक विशेषांक में अमृतराय द्वारा किया गया था।
- सन् 1960 में यह कहानी 'परिन्दे' नामक कहानी-संग्रह में शामिल हुई।
- 'परिन्द' कहानी की भाषा योजना काव्यात्मक है जो अपने आप में हिन्दी कहानी साहित्य में एक नवीन प्रयोग का प्रमाण है।
- निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' अपने प्रकाशन के समय से ही नयी कहानी आंदोलन की प्रतिनिधि रचना मानी जाती रही है।

8.4 परिन्दे कहनी की भाषा योजना

'परिन्दे' कहानी की भाषा योजना काव्यात्मक है जो अपने आप में हिन्दी कहानी साहित्य में एक नवीन प्रयोग का प्रमाण है। निर्मल वर्मा ने इस कहानी में जिस भाषिक शिल्प का चयन किया है, वह न सिर्फ़ कथा के बहाव में काव्यात्मक लय को रचती है, बल्कि पात्रों के आन्तरिक संसार और उनके अकेलेपन की गूँज को भी

शब्दों के माध्यम से एक संगीतात्मक स्पर्श देती है। कहानी के आरम्भ से ही एक विशेष किस्म की मद्धम, सधी हुई लय पाठक को घेर लेती है। यह लय कभी संवादों में, कभी वर्णन में और कभी पात्रों के मनोभावों की अनुभूतियों में अपनी सुगंध छोड़ती चलती है। यही कारण है कि 'परिन्दे' का पाठक कहानी से अलग नहीं हो पाता। यह भाषा की वह विशेषता है, जिसमें शिल्प और संवेदना दोनों का अद्भुत संयोग दिखाई देता है।

नामवर सिंह ने 'परिन्दे' को नयी कहानी की पहली कृति मानते हुए इसका जो आधार बनाया, उसमें कहानी की भाषा-रचना की नवीनता, उसमें व्याप्त ध्वन्यात्मकता और उसका सांगीतिक प्रभाव ही सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू रहे। उनकी टिप्पणी - 'पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियाँ उसी भाषा की हैं, जिसमें अभी तक शहर, गाँव, कस्बा और तिकोने प्रेम को ही लेकर कहानीकार जूझ रहे हैं। 'परिन्दे' से शिकायत कू हो जाती है कि हिन्दी कथा-साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल पर ही 'मार्कटाइम' कर रहा है। समकालीनों में निर्मल पहले कहानीकार हैं, जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है - बल्कि छोड़ा है, और आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या को उठाया है। 'यह बताती है कि 'परिन्दे' ने हिन्दी कहानी की परम्परागत सामाजिक यथार्थवादी भाषा और विषय को छोड़कर मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या, उसके अकेलेपन और स्मृति-बोध को नए भाषा-संस्कार में ढालने की कोशिश की। यही 'नयी कहानी' का वह प्रस्थान बिन्दु बना। इस कहानी में ध्वनि, छवि और संगीत का ऐसा मेल है कि कथा जैसे एक साँस में अपने संगीतात्मक प्रभाव से पाठक को बहा ले जाती है। इसका उदाहरण है वह दृश्य, जब लतिका चैपल में पियानो की धुन के बीच मोमबत्तियों की धुँधली रोशनी में सब कुछ अनिश्चित, अधसपना-सा महसूस करती है। कहानी का यह ध्वन्यात्मक सौंदर्य और चित्रात्मक लय निर्मल वर्मा की गद्य-संवेदना को विशिष्ट बनाते हैं।

निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' दरअसल हिन्दी कहानी में भाषा की उस नयी सम्भावना का आरम्भ है, जहाँ कथा, कविता और संगीत एक-दूसरे में घुल-मिल जाते हैं। यही वजह है कि यह कहानी अब भी पढ़ी जाती है उसके कथ्य के लिए नहीं, बल्कि उसकी भाषा की वह अनुगूँज सुनने के लिए, जो पढ़ने के बाद भी पाठक के भीतर देर तक गूँजती रहती है।

8.5 परिन्दे का शिल्प

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' अपने प्रकाशन के समय से ही नयी कहानी आंदोलन की प्रतिनिधि रचना मानी जाती रही है। इसका सबसे बड़ा कारण इसकी कथन-शैली, काव्यात्मक भाषा और शिल्प में सघन अनुभूति-प्रवाह है। नामवर सिंह ने इस कहानी को 'व्यक्ति के अकेलेपन की असाधारण अभिव्यक्ति' कहा था। यह अकेलापन कहानी में केवल पात्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण परिवेश, प्रकृति और मौन में भी अनुगूँजता है। 'कहाँ जाने ?' का प्रश्न इस कहानी का केन्द्रीय बिंदु है, जो लतिका के माध्यम से उपस्थित होता है। यह प्रश्न मनुष्य के उस सार्वकालिक अकेलेपन और अनिश्चित नियति-बोध का प्रतीक है, जो हिन्दी साहित्य में तुलसीदास और मुक्तिबोध तक की परम्परा में विद्यमान रहा है। कहानी की सबसे विशिष्ट विशेषता है प्रकृति और परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन और उसका पात्रों के मानसिक संसार से आत्मसात हो जाना। निर्मल वर्मा के गद्य में यह विशेषता है कि उनका वर्णन केवल दृष्य नहीं रचता, बल्कि वह पात्र की मन:स्थितियों का विस्तार भी बन जाता है। 'फीकी-सी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की छायाएँ...', 'छोटे-छोटे बादल रेशमी रुमालों से सूरज के मुँह पर लिपटते' जैसे दृश्य-वर्णन कहानी में काव्यात्मक लय रचते हैं। यह लय पाठक को कहानी के साथ-साथ बहा ले जाती है। प्रकृति यहाँ केवल वातावरण नहीं, बल्कि अकेलेपन, असुरक्षा और इच्छाओं का रूपक बन जाती है। 'परिन्दे' कहानी में प्रतीकात्मकता भी अत्यंत सशक्त है। पहाड़ जहाँ स्थिर और अकेलेपन से भरा जीवन है, वहीं हर साल सर्दियों में उड़ने वाले परिन्दे जीवन की अनिश्चितता और संभावनाओं का बोध कराते हैं। लतिका का उन उड़ते हुए परिन्दों को देखना अपने जीवन की ठहरी हुई दशा और अधूरी आकांक्षाओं का सामना करना है। निर्मल वर्मा की भाषा-शैली का एक बड़ा वैशिष्ट्य उसकी ध्वन्यात्मकता और सांगीतिक प्रवाह है। उनकी कहानियों में

स्वप्न-जैसी अनुभूति, संवादों में अन्तर्निहित द्वंद्व और वातावरण में तैरता मौन — सब एक सुनियोजित शिल्प का हिस्सा होते हैं।

8.6 'परिन्द' की भाषा योजना

'परिन्दे' कहानी की भाषा योजना काव्यात्मक है। कहानी अपने आरम्भ से ही एक खास किस्म की शान्त लय का निर्माण करती है। भाषा की काव्यात्मक लय पाठक को कहानी से अलग होने नहीं देती है। नामवर सिंह ने 'परिन्दे' को नई कहानी की प्रथम कृतिमाना है। उनका मानना था कि यह कहानी नयी कहानी की नई संवेदना, नवीन शिल्प और भाषा की विशिष्टताको पूर्ण रूप से प्रस्तुत करती है। उन्होंने लिखा है कि यह विश्वास करना कठिन लगता है कि 'परिन्दे' जैसी रचनाएँ उसी भाषा में लिखी गई हैं, जिसमें अब तक केवल गाँव, कस्बे या त्रिकोणीय प्रेम जैसी सीमित विषयवस्तुएँ ही दिखाई देती थीं। 'परिन्दे' ने इस संकुचित दायरे को तोड़कर आधुनिक मनुष्य की गहन आंतरिक समस्याओं को सामने लाया है। कहानी की भाषा में संगीतात्मकता और सौंदर्य-बोध की गहराई है। नामवर सिंह द्वारा उद्धृत प्रसंग में यह स्पष्ट होता है कि जब नायिकालतिकाचर्च (चैपल) में संगीत सुनती है, तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो मो मबत्तियों की धुंधली रोशनी में वास्तविकता मिट रही हो, और सब कुछ एकस्वप्निल ध्वनि और प्रकाश के वातावरण में विलीन हो गया हो। निर्मल वर्मा की 'परिन्द' कहानी अपने भाषाई प्रभाव में संगीत का प्रभाव उत्पन्न करती है। इस कहानी में संगीत के सन्दर्भ को देखें जिसे नामवर सिंह भी अपनी उपर्युक्त सन्दर्भित किताब में भी उद्धृत करते हैं कि 'परिन्दे की नायिका लतिका को चैपल में संगीत सुनकर ऐसा लगा कि जैसे मोमबत्तियों के धूमिल आलोक में कुछ भी ठोस, वास्तविक न रहा हो - चैपल की छत, दीवारें, डेस्क पर रखा हुआ डॉक्टर का सुघड़-सुडौल हाथ और पियानो के सुर अतीत की धुंध को भेदते हुए स्वयं उस धुंध का भाग बनते जा रहे हों।' निर्मल वर्मा की कहानी की ध्वन्यात्मकता उनकी नवीन भाषा-योजना में निहित है।

8.7 सारांश

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' मूलत: अतीत की स्मृति और अनकही प्रतीक्षा की कथा है। इस कहानी में हर पात्र किसी न किसी स्मृति के बोझ और प्रतीक्षा की धुंध में घिरा हुआ है। लतिका, जो इस कहानी की मुख्य पात्र है, अपने जीवन में एक अनजाने अकेलेपन से जूझ रही है। वह जानती है कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है, पर किसकी -यह उसे भी स्पष्ट नहीं। यही अनिश्चित प्रतीक्षा उसे पहाड़ों की तरह स्थिर और अकेला बनाए रखती है। कहानी के अन्य पात्र भी स्मृति और प्रतीक्षा के बिम्ब रचते हैं। डॉक्टर मुकर्जी एक ठोस स्मृति का वहन करते हुए दिखाई देते हैं। वह लतिका से जुड़ी स्मृतियों में कहीं अटका हुआ पात्र है। वहीं करीमुद्दीनहर वर्ष सर्दियों के आगमन और बर्फबारी के साथ लौटने वाली वही पुरानी स्मृति का प्रतिनिधि है। 'परिन्दे' की उड़ान इस कहानी में प्रतीक है - जीवन की गति, बदलाव और आकांक्षा का। परिन्दे हर साल सर्दियों में पहाड़ छोड़कर अनजान प्रदेशों की ओर चले जाते हैं, लेकिन लतिका वहीं रहती है, पहाड़ की तरह, अपनी जगह पर जमी हुई। यह ठहराव और गतिशीलता का द्वंद्व इस कहानी की केन्द्रीय संवेदना है। निर्मल वर्मा का शिल्प भी इस कहानी में उतना ही महत्त्वपूर्ण है। चरित्र-सृष्टि, भाषा की काव्यात्मकता और परिवेश का सघन चित्रण -ये सभी मिलकर कहानी को नयी कहानी आंदोलन की प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट उदाहरण बनाते हैं। 'परिन्दे' में संवाद कम और मन की आवाजें ज़्यादा हैं। वातावरण और प्रकृति कहानी के अकेलेपन को और अधिक गाढ़ा बनाते हैं। इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका अकेलापन केवल लतिका का अकेलापन नहीं है, बल्कि समकालीन मनुष्य की नियति का अकेलापन है, जिसे निर्मल वर्मा ने बारीक स्मृति-संदर्भों और प्रतीक्षा के चित्रों के सहारे रचा है। इस दृष्टि से 'परिन्दे' सिर्फ कहानी नहीं, एक मन:स्थिति का शिल्पगत आख्यान है, जो आज भी अपने अकेलेपन और स्मृतियों में डूबे पाठकों को अपने साथ बहा ले जाती है।

K8.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- ''परिन्दे'' कहानी के लेखक निर्मल वर्मा हैं।

प्रश्न 2 का उत्तर- ''परिन्दे'' कहानीनयी कहानी आंदोलन से जुड़ी हुई है।

प्रश्न 3 का उत्तर- ''परिन्दे'' जीवन की गति, परिवर्तन और आकांक्षा के प्रतीक हैं।

प्रश्न 4 का उत्तर- डॉक्टर मुकर्जी के चरित्र में विस्थापन-बोध, दार्शनिक दृष्टि और अजनबीयत की भावना दिखाई देती है।

5 8.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- सिंह, नामवर. (1982). कहानी: नयी कहानी. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- अवस्थी, देवीशंकर. (1973). नयी कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- यादव, राजेन्द्र. (1968). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- केंगरानी, वन्दना. (2007). निर्मल वर्मा के स्त्री विमर्श. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- मधुरेश. (1996). हिन्दी कहानी का विकास. पटना: सुमित प्रकाशन।
- मधुरेश. (2001). निर्मल वर्मा की कहानी-दृष्टि. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
- शुक्ल, शंकर. (2008). निर्मल वर्मा का कथा-संसार. नई दिल्ली: किताब महल।
- जोशी, रमेशचन्द्र. (2010). निर्मल वर्मा: व्यक्ति और साहित्य. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड।
- https://www.tutorialhindi.com/2025/03/Parinde-Kahani-Nirmal-Verma.html

M8.9 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. परिन्दे कहानी के लेखक कौन है?
2. करीमुद्दीन कौन है?
3. परिन्दे कहानी का प्रकाशन सबसे पहले किस पत्रिका में हुआ था?
4. 'परिन्दे' किसका प्रतिक हैं?
5. 'परिन्दे' कहानी के प्रमुख पात्र कौन-कौन हैं?
6. लेखक ने 'परिन्दे' कहानी में प्रतीकात्मकता का प्रयोग किस रूप में किया है?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. ''परिन्दे'' कहानी की पात्र-योजना का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. ''परिन्दे'' कहानी के शिल्प और भाषा-शैली की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
3. लतिका के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए।
4. ''परिन्दे'' कहानी में प्रतीकात्मकता और परिवेश-चित्रण पर चर्चा कीजिए।
5. ''परिन्दे'' को नयी कहानी आंदोलन की प्रतिनिधि रचना क्यों कहा जाता है?
6. कहानी में अकेलेपन और स्मृति-बोध की अभिव्यक्ति को स्पष्ट कीजिए।

****

इकाई-9 एक टोकरी भर मिट्टी

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 कहानीकार 'माधवराव सप्रे' का परिचय
9.4 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार
9.5 कहानी की समीक्षा
9.6 सारांश
9.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
9.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
9.9 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

- कहानीकार माधवराव सप्रे के व्यक्तित्व और कृतित्व से अवगत होंगे।
- माधवराव सप्रे के कहानी साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार समझने में सक्षम होंगे।
- 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी की समीक्षा के माध्यम से समाज के विविध पक्षों को समझ सकेंगे।
- 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी में निहित वर्णभेद को समझने में सक्षम होंगे।
- इस कहानी के माध्यम से विद्यार्थी सामाजिक यथार्थ को आत्मसात करेंगे।

9.2 प्रस्तावना

माधवराव सर्जा का साहित्यिक काल वह युग था जब हिन्दी साहित्य में नई विधाओं का जन्म हो रहा था। कविता और निबंध के साथ-साथ कथा-साहित्य भी आकार ले रहा था। इसी काल में हिन्दी कहानी विधा ने अपने पहले कदम रखे। यद्यपि कहानी की पृष्ठभूमि संस्कृत, अँग्रेज़ी और बांग्ला की मौलिक एवं अनूदित रचनाओं से प्रभावित रही, फिर भी सप्रे जी ने इसे हिन्दी समाज की संवेदना से जोड़ा। उनके लेखन में इन भाषाओं के प्रभाव के कुछ अंश अवश्य दिखाई देते हैं, परंतु उनकी रचनाएँ पूर्णतः भारतीय जीवन और संवेदना से संपृक्त हैं।

9.3 कहानीकार 'माधवराव सप्रे' का परिचय

पं. माधवराव सप्रे का जन्म 19 जून 1871 को मध्यप्रदेश के दमोह ज़िले के पथरिया ग्राम में हुआ था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा बिलासपुर के मिडिल स्कूल में प्राप्त की और रायपुर के सरकारी विद्यालय से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात 1899 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि अर्जित की। स्नातक के बाद उन्हें तहसीलदार के रूप में नियुक्ति मिली, परंतु देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर उन्होंने सरकारी सेवा को त्याग दिया, जैसा कि उस युग के अनेक जागरूक युवाओं की परंपरा थी।

सन् 1900 में उन्होंने बिलासपुर जिले के एक छोटे से गाँव से अपनी पहली पत्रिका ''छत्तीसगढ़ मित्र'' का प्रकाशन प्रारंभ किया। उस समय प्रदेश में मुद्रणालय की सुविधा उपलब्ध नहीं थी, फिर भी यह पत्रिका तीन वर्षों तक निरंतर प्रकाशित हुई। हिंदी लेखकों और कवियों के बीच एकता स्थापित करने हेतु उन्होंने लोकमान्य बाल

गंगाधर तिलक की मराठी पत्रिका 'केसरी' के समान 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन आरंभ किया तथा नागपुर से 'हिंदी ग्रंथमाला' भी प्रकाशित की। उन्हीं की प्रेरणा से 'कर्मवीर' जैसी पत्रिका भी अस्तित्व में आई।

सप्रे जी एक कुशल अनुवादक और विद्वान लेखक थे। उन्होंने मराठी ग्रंथों जैसे 'दासबोध', 'महाभारत मीमांसा', 'दत्त भार्गव', 'श्रीराम चरित्र', 'एकनाथ चरित्र' और 'आत्मविद्या' का हिंदी रूपांतर तैयार किया। छत्तीसगढ़ में सामाजिक जागृति और वैचारिक चेतना को प्रबल बनाने का कार्य उन्होंने उसी निष्ठा से किया, जिस तरह राजा राममोहन राय ने आधुनिक भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया था। वे प्रदेश के प्रथम पत्रकार तथा हिंदी की पहली कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' के रचयिता के रूप में अमर हो गए।

सन् 1900 में स्वतंत्रता सेनानी वामनराव लाखे की सहायता से उन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' का प्रकाशन आरंभ किया। रायपुर में शिक्षा के दौरान वे अपने गुरु पं. नंदलाल दुबे के संपर्क में आए, जिन्होंने 'अभिज्ञान शाकुंतलम' और 'उत्तररामचरित' का हिंदी अनुवाद किया तथा 'उद्यानमालिनी' जैसी मौलिक कृति भी लिखी। इन्हीं गुरु के मार्गदर्शन से सप्रे जी में साहित्यिक अभिरुचि का विकास हुआ, जिसने उन्हें आगे चलकर 'छत्तीसगढ़ मित्र' और 'हिंदी केसरी' के संपादक के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई। राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी उन्हीं के शिष्य रहे।

1921 में सप्रे जी ने रायपुर में राष्ट्रीय विद्यालय और जानकी देवी महिला पाठशाला की स्थापना की, जो आज भी संचालित हैं। वे 1924 में देहरादून में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति चुने गए।

उनके कुछ प्रेरणादायी विचार थे-

''मैं मराठी भाषी अवश्य हूँ, पर हिंदी के प्रति मेरा गर्व किसी भी हिंदी भाषी से कम नहीं।''

''वह शिक्षा व्यर्थ है जिससे आत्मसम्मान की भावना न जागे।''

''विदेशी भाषा में शिक्षा के कारण हमारी बुद्धि भी विदेशी हो गई है।''

शिक्षा और पारिवारिक जीवनः

सन् 1889 में सप्रे जी ने रायपुर के सहायक आयुक्त की पुत्री से विवाह किया, किंतु ससुर द्वारा अनुशंसित नायब तहसीलदार की नौकरी अस्वीकार कर दी। उन्होंने रॉबर्टसन कॉलेज, जबलपुर से पहला डिप्लोमा, विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से स्नातक तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एक और डिप्लोमा प्राप्त किया। पत्नी के निधन से उन्हें शिक्षा के दौरान कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। बाद में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। एल.एल.बी. की पढ़ाई अधूरी छोड़कर वे अपने आदर्शों के अनुरूप छत्तीसगढ़ लौट आए। पुनर्विवाह के बाद बढ़े पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बीच उन्होंने पेंड्रा नरेश के यहाँ अंग्रेजी शिक्षक के रूप में कार्य किया, जिससे आजीविका के साथ-साथ साहित्यिक सेवा जारी रह सकी।

पत्रकारिता और साहित्य सेवाः

मराठी मूल के होने के बावजूद सप्रे जी ने हिंदी के उत्थान के लिए जीवन समर्पित किया। सन् 1905 में उन्होंने हिंदी ग्रंथ प्रकाशक मंडल की स्थापना की, जिसके अंतर्गत श्रेष्ठ रचनाएँ धारावाहिक रूप में 'हिंदी ग्रंथमाला' के रूप में प्रकाशित हुईं। इनमें स्वदेशी आंदोलन और बहिष्कार पर लिखी गई उनकी लेखमाला को बहुत प्रसिद्धि मिली। इसकी लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार ने सन् 1909 में इस पर प्रतिबंध लगाकर प्रतियाँ जब्त कर लीं। 13 अप्रैल सन् 1907 को उन्होंने 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसने पूरे भारत में स्वतंत्रता की चेतना जगाई। पत्र के उग्र स्वरों और औपनिवेशिक नीतियों की तीखी आलोचना के चलते उन्हें 22 अगस्त सन् 1908 को गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय तक वे देश के प्रमुख पत्रकारों में गिने जाने लगे थे।

अन्य कार्य और योगदानः

सन् 1919-1920 के दौरान सप्रे जी जबलपुर गए और 'कर्मवीर' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। उनके उत्साह से राष्ट्रीय हिंदी मंदिर की स्थापना हुई, जहाँ से 'छात्र सहोदर', 'तिलक', 'हकारिणी' और 'श्री शारदा'

जैसी साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित हुईं। उन्होंने देहरादून में आयोजित 15वें अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की और हिंदी पत्रकारिता को नई दिशा दी।

महत्वपूर्ण कृतियाँ और अनुवाद:

उनकी प्रमुख रचनाओं में 'यूरोप के इतिहास से सीखने योग्य बातें', 'स्वदेशी आंदोलन और बहिष्कार', 'हमारे सामाजिक ह्रास के कारण', 'हिंदी दासबोध', 'गीता रहस्य' तथा 'महाभारत मीमांसा' सम्मिलित हैं।

स्मृति और सम्मान:

उनकी स्मृति में 1984 में 'माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय' की स्थापना की गई, जो उनकी पत्रकारिता और राष्ट्र सेवा की विरासत को संरक्षित रखता है। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा काशी के लिए आर्थिक शब्दावली का संकलन किया और सैकड़ों कार्यकर्ताओं को हिंदी, समाज और स्वतंत्रता के लिए समर्पित किया।

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के इस महान पुरोधा पं. माधवराव सप्रे का निधन 23 अप्रैल सन् 1926 को हुआ। उनकी रचनाएँ और विचार आज भी हिंदी समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय' की स्थापना कब हुआ था?

प्रश्न 2. 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन कब हुआ था?

प्रश्न 3. पं. माधवराव सप्रे का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

9.4 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार:

किसी गाँव में एक सम्पन्न, प्रतिष्ठित और अहंकारी ज़मींदार रहता था। उसके आलीशान महल की सीमा के पास ही एक जर्जर सी झोंपड़ी थी, जिसमें एक वृद्ध, निर्धन और असहाय विधवा अपनी पाँच वर्ष की पोती के साथ जीवन व्यतीत कर रही थी। वह झोंपड़ी उसके लिए केवल रहने का स्थान नहीं थी-वह उसके जीवन की स्मृतियों, उसके सुख-दु:ख और उसके बीते हुए परिवार की अंतिम निशानी थी। इसी झोंपड़ी में कभी उसका पति जीवित था, यहीं उसका जवान बेटा बीमारी से चल बसा और कुछ समय बाद उसकी बहू भी संसार से विदा हो गई। बस, उस नन्ही पोती का अस्तित्व ही अब उस बूढ़ी विधवा के जीवन का सहारा था। उसके दिन उस झोंपड़ी की दीवारों और आँगन की यादों में कटते थे।

एक दिन श्रीमान ज़मींदार को विचार आया कि उनका महल अब छोटा पड़ रहा है। वे उसका अहाता बढ़ाना चाहते थे, और दुर्भाग्य से उस विस्तार में वही विधवा की झोंपड़ी आ रही थी। ज़मींदार ने उसे बुलवाकर कहा- ''अम्मा, तुम किसी दूसरी जगह जाकर बस जाओ, बदले में कुछ धन ले लो। यह जगह हमें अपने महल के लिए चाहिए।'' वृद्धा ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया-''मालिक, यह झोंपड़ी मेरा घर नहीं, मेरी जीवन-यात्रा की आखरी शरण है। यहीं मेरे पति, मेरे बेटे और बहू की यादें हैं। इसे छोड़ना मेरे लिए मर जाने के समान है।''

ज़मींदार ने बहुत समझाया, लालच दिया, धमकाया, पर वह वृद्धा अडिग रही। अंतत: ज़मींदार ने अपने वकीलों की सहायता से अदालत के ज़रिए झोंपड़ी पर कब्ज़ा करा लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया। विधवा, जो असहाय और गरीब थी, अपने पड़ोस के किसी दयालु व्यक्ति के आँगन में जाकर रहने लगी। कुछ दिनों बाद जब ज़मींदार अपने नए अहाते के निर्माण का निरीक्षण कर रहे थे, मजदूर ईंट-पत्थर ढो रहे थे, तभी दूर से वही वृद्धा दिखाई दी। उसके हाथ में एक टोकरी थी। उसे देखते ही ज़मींदार ने कठोर स्वर में कहा-''इसे यहाँ से हटा दो! अब यह ज़मीन हमारी है।'' वृद्धा रोती हुई आगे बढ़ी और बोली- ''महाराज, अब यह झोंपड़ी तो

आपकी ही हो चुकी है। मैं कोई झगड़ा करने नहीं आई हूँ, बस एक छोटी-सी विनती लेकर आई हूँ।''

ज़मींदार ने कुछ झुंझलाकर कहा- ''कहो, क्या चाहती हो?'' वह काँपते स्वर में बोली- ''मालिक, जबसे इस झोंपड़ी से निकली हूँ, तबसे मेरी पोती ने खाना-पीना छोड़ दिया है। वह हर समय यही कहती है कि 'दादी, अपने घर चलो, वहीं रोटी खाऊँगी।' मैंने बहुत समझाया, पर वह नहीं मानी। सोचा, अगर इस झोंपड़ी की थोड़ी-सी मिट्टी ले जाकर उससे चूल्हा बना लूँ, तो शायद उसे यह लगे कि वह अपने ही घर की रोटी खा रही है और वह कुछ खा लेगी। कृपा करके मुझे एक टोकरी मिट्टी ले जाने की आज्ञा दीजिए।''

ज़मींदार ने ठंडी साँस भरकर कहा- ''ठीक है, ले जाओ।'' वृद्धा झोंपड़ी के भीतर गई। जैसे ही उसने उस पुराने घर की दीवारों और छप्पर को देखा, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसे अपना अतीत याद आ गया- पति की बातें, बेटे की हँसी, बहू की मुस्कान और वह समय जब यह झोंपड़ी उसका संसार थी। उसने अपने आँसू पोंछे, टोकरी मिट्टी से भरी और काँपते हाथों से बाहर आई। बाहर आकर उसने विनम्र स्वर में कहा- ''महाराज, कृपा करके इस टोकरी को ज़रा हाथ लगाइए, ताकि मैं इसे सिर पर रख सकूँ।'' पहले तो ज़मींदार झल्लाए - ''तुम्हें नौकर उठा देंगे, मुझसे क्यों कहलवाती हो?''

पर वृद्धा गिड़गिड़ाने लगी- ''महाराज, आपकी ही कृपा से मुझे यह मिट्टी मिल रही है, इसलिए आपकी ही हथेली का स्पर्श चाहती हूँ।'' उसकी दीनता देखकर ज़मींदार का कठोर हृदय कुछ पिघल गया। वे स्वयं आगे बढ़े और टोकरी को उठाने लगे। किंतु जैसे ही उन्होंने टोकरी को हाथ लगाया, उन्हें लगा मानो उसमें कोई अदृश्य भार है। उन्होंने पूरी ताक़त लगा दी, पर टोकरी एक इंच भी न हिली।

ज़मींदार हैरान रह गए। वे शर्मिंदा होकर बोले- ''अम्मा, यह टोकरी तो मुझसे नहीं उठाई जाती।'' वृद्धा शांत स्वर में बोली- ''महाराज, यह साधारण मिट्टी नहीं है। इसमें मेरे जीवन की यादें, मेरे अपने लोगों की आत्माएँ और उस घर का आशीर्वाद बसा है। जिस मिट्टी को अन्याय से छीना जाए, वह किसी और से उठ नहीं सकती।''

5 महत्वपूर्ण बिंदु

माधवराव सप्रे का जीवनकाल (1871-1931) उस दौर का था जब भारत अंग्रेजी शासन के अधीन था और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने अभी गति नहीं पकड़ी थी। फिर भी उनकी कहानियों में स्वतंत्रता और राष्ट्रप्रेम की जो चेतना मिलती है, वह अद्वितीय है। छत्तीसगढ़ मित्र जैसी पत्रिका का संपादन करते हुए उन्होंने न केवल सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर लिखा, बल्कि कहानी को जनजागरण का माध्यम भी बनाया। सप्रे का साहित्य उस युग के नवजागरण का प्रतीक कहा जा सकता है। वे पराधीनता के अंधकार में बैठकर स्वतंत्रता की मशाल तैयार कर रहे थे। छत्तीसगढ़ के छोटे से स्थान पेंड्रारोड में रहते हुए उन्होंने जिस राष्ट्रीय चेतना की नींव रखी, वही आगे चलकर हिंदी कथा-साहित्य और स्वतंत्रता आंदोलन दोनों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी।

उनके शब्द सुनकर ज़मींदार का अभिमान चूर-चूर हो गया। उन्हें अपने अन्याय और क्रूरता का गहरा पश्चाताप हुआ। उन्होंने तुरंत वृद्धा से क्षमा माँगी और उसी क्षण उसकी झोंपड़ी वापस उसे दे दी। उस दिन के बाद ज़मींदार का हृदय बदल गया। वे पहले जैसे घमंडी और कठोर नहीं रहे। उन्होंने समझ लिया कि किसी की पीड़ा को धन से नहीं मापा जा सकता, और हर इंसान की भावनाओं का अपना मूल्य होता है। यह कथा हमें सिखाती है कि असली ताक़त धन में नहीं, संवेदना और करुणा में है। दूसरों के दु:ख को समझना ही सच्चा धर्म है।

9.5 कहानी की समीक्षा:

फरवरी 1968 में कमलेश्वर के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'सारिका' ने हिन्दी कहानी के विकास

पर एक विशेष अंक प्रकाशित किया। इस अंक में देवीप्रसाद वर्मा का लेख ''हिन्दी की पहली कहानी: एक महत्वपूर्ण प्रश्न'' छपा, जिसमें उन्होंने यह मत प्रस्तुत किया कि ''एक टोकरी भर मिट्टी'' हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है। आलोचक गोपाल राय ने भी इस दृष्टिकोण का समर्थन किया और कहा कि- ''यदि 1901 में प्रकाशित 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जाए, तो यह हिन्दी साहित्य के लिए गर्व की बात है कि इसका लेखक मराठी भाषी माधवराव सप्रे हैं।'' ''एक टोकरी भर मिट्टी'' आकार में अत्यंत लघु कथा है, किंतु उसका भाव-संदेश गहन और प्रभावशाली है। कहानी का केंद्र एक जमींदार और एक वृद्ध विधवा के संघर्ष पर आधारित है।

यह कहानी केवल एक व्यक्तिगत संघर्ष की नहीं, बल्कि वर्गभेद की मार्मिक प्रस्तुति है। न्याय व्यवस्था, जो अन्याय मिटाने के लिए बनी थी, वही जमींदार के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है। इस दृष्टि से कहानी सामाजिक व्यंग्य बन जाती है। इसके साथ ही, कहानी का प्रतीकात्मक अर्थ और भी व्यापक है। जिस काल में यह लिखी गई, वह भारत में ब्रिटिश उपनिवेश का समय था। जमींदार को अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद का प्रतीक और विधवा को भारतीय जनमानस का प्रतिनिधि माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से कहानी ''मिट्टी'' के प्रति लगाव को मातृभूमि से जुड़ी भावना के रूप में प्रस्तुत करती है।

माधवराव सप्रे की कहानी ''एक टोकरी भर मिट्टी'' एक अत्यन्त सरल मगर रह-गहराई वाला कथानक लिए हुई है। घटना एक अल्पसंख्यक विधवा महिला से जुड़ी है, जिसकी झोपड़ी एक जमींदार के महल के बगल में स्थित है। जमींदार अपनी संपत्ति-शोभा में वृद्धि करना चाहता है और झोपड़ी को उसके अहाते की दृष्टि से अस्वस्थापित तथा अवांछित मानता है। वहीं विधवा उस झोपड़ी से भावनात्मक रूप से बँधी हुई है-वहाँ उसके पति, पुत्र तथा पतोहू की मृत्यु हो चुकी है, और अब उसकी पोती ही उसका एकल सहारा है।

कहानी उस दायरे में घूमती है जहाँ विधवा को विधि और न्याय की मदद से घास की जाली की तरह उजाड़ दिया जाता है-जमींदार अपने वकीलों-द्वारा झोपड़ी पर अधिकार करवा लेता है और विधवा तथा उसकी पोती को बेघर कर देता है। यह सामाजिक अन्याय का दृश्य है, जहाँ संपत्ति-शाली वर्ग अपने बल-बुढ़िया तथा असहाय पड़ोसियों के ऊपर अधिकार जताता है। विधवा ने अपनी पोती की अनुपस्थिति-खिन्नता को देख कर एक गंभीर निर्णय लिया-उसने सोचा कि यदि वह उसी झोपड़ी की मिट्टी से एक चूल्हा बनाकर रोटी पकाएगी, तो उसकी पोती शायद फिर से खाना-पीना शुरू कर देगी। इसलिए उसने जमींदार से अनुमति माँगी-एक टोकरी मिट्टी ले जाने की। जमींदार पहले क्रुद्ध हुआ, पर विधवा की विनम्रता तथा उसकी आवश्यक्ता-दृष्टि ने उसे झुकने पर मजबूर कर दिया। विधवा जब झोपड़ी में गई, तब उसके मन में वर्षों की यादें तैरने लगी-पुत्र-पतोहू की, पति की, झोपड़ी-माटी की, समस्त जीवन की। टोकरी मिट्टी भरने-भरने की इच्छुक वह वास्तव में उस अंत:करण-दर-पक्ष में खड़ी थी जहाँ एक इंसान अपनी जड़ों, अपनी मिट्टी, अपनी पहचान के लिए लड़ रहा हो। जब जमींदार ने स्वयं टोकरी उठाने का प्रयत्न किया, तो वह न उठा सका। तब विधवा ने कहा- ''महाराज, नाराज न हों, आपसे एक टोकरी-भर मिट्टी नहीं उठाई जाती, और इस झोपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी हैं; उसका भार आप जन्म-भर क्योंकर उठा सकेंगे ? यह संवाद कथानक का उत्तम मोड़ है-क्षण में जमींदार का अहंकार टूटता है, और वह अपनी भूल स्वीकार कर विधवा से झोपड़ी वापस लौटाता है।

''एक टोकरी भर मिट्टी'' का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है -हृदय परिवर्तन का सिद्धांत। विधवा किसी हिंसक संघर्ष या विद्रोह से नहीं, बल्कि करुणा और संवेदना के माध्यम से जमींदार के अहंकार को तोड़ती है। यह वही विचारधारा है जो बाद में महात्मा गांधी के सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों में विकसित हुई। सप्रे जी ने बहुत पहले इस नैतिक परिवर्तन की शक्ति को कथा के रूप में प्रस्तुत किया।

पात्र-विश्लेषण

विधवा महिला: मुख्य नायिका है। गरीबी में रहने वाली, पर आत्म-सम्मान से ओत-प्रोत। झोपड़ी उसकी जड़ों-

यादों का स्थान है। उसने अपने पति, पुत्र, बहू (पतोहू) खो दिए, और अब पोती ही उसका सहारा है। उसकी संवेदनशीलता, ममता, और आत्मनिर्णय-शक्ति उसे कमजोर-न बनाकर गौरवपूर्ण बनाती है।

जमींदार: संपन्न, अहंकारी व्यक्ति जिसके लिए महल-आहाता महिमामंडित हैं। सामाजिक-सत्ता का प्रतीक है। शुरुआत में अन्याय का पक्ष लेता है, पर अंत में अपनी गलती स्वीकार कर होता है परिवर्तन-यात्रा का पात्र बन जाता है।

पोती: विधवा की पोती प्रत्यक्ष प्रवक्ता नहीं बनती, पर उसकी मूक पीड़ा-झोपड़ी छूटने के बाद खाना-पीना छोड़ देना-कहानी को एक मानव-संवेदना की गहराई देती है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 4. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी के मुख्य पात्रों के नाम लिखिए।

प्रश्न 5. ''यदि 1901 में प्रकाशित 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जाए, तो यह हिन्दी साहित्य के लिए गर्व की बात है कि इसका लेखक मराठी भाषी माधवराव सप्रे हैं''- यह कथन किसका है?

प्रमुख विषय एवं विचार

1. **सामाजिक अन्याय:** संपत्ति-धारी वर्ग द्वारा कमजोरों का शोषण, न्याय-प्रक्रिया का दुरुपयोग — जमींदार ने वकीलों के ज़रिए विधवा से झोपड़ी छीन ली।
2. **मिट्टी-मूल, जड़-भावना:** झोपड़ी की मिट्टी साधारण नहीं थी; विधवा के लिए वह जीवन-यादें, अस्तित्व-बोध और आत्म-पहचान थी। इस मिट्टी से चूल्हा बना कर रोटी पकाने की तीव्र आकांक्षा, इस भाव-जाल को दर्शाती है।
3. **आत्म-सम्मान एवं साहस:** विधवा सिर्फ अनुरोध करती है, लेकिन अंततः अपने आत्म-सम्मान के लिए खड़ी हो जाती है-सिर्फ विनती नहीं, बल्कि संवाद द्वारा अपनी स्थिति इंगित करती है।
4. **मानवीय परिवर्तन:** अतिशय अहंकारवाले जमींदार के मन में अंत में पश्चाताप और दया जाग उठती है-यह संकेत है कि सामाजिक व्यवस्था में सुधार सम्भव है, यदि इंसान अपने हृदय की सुनने लगे।
5. **कथ्य और निर्देशन-शक्ति:** कथा सरल है-एक झोपड़ी, एक टोकरी, एक जमींदार, एक विधवा लेकिन उसके पीछे निहित संदेश बहुत व्यापक है: सामाजिक न्याय, संवेदना, पारिवारिक बंधन, एवं जीवन के छोटे-छोटे आधार।

भाषा-शैली एवं साहित्यिक मूल्य:

माधवराव सप्रे ने भाषा को कहीं जटिल नहीं किया; वाणी सरल, सहज और अर्थ-पूर्ण है। ग्रामीण-जीवन का दृश्य, पात्रों की मनोस्थिति, उनकी संवेदना-ये सब सीधे पाठक तक पहुँचते हैं। संवाद-शैली में ''महाराज,...'' जैसी विनम्र अपील से पात्रों का सामाजिक स्तर और भाव-मानवीय स्थिति दोनों स्पष्ट होती है। कथा-धारा में गति बनी रहती है, पर विचार-गहराई का अवसर भी मिलता है। यही वजह है कि इस कहानी को हिंदी की प्रारम्भिक कहानियों में मील-पत्थर माना गया है।

सामाजिक एवं शैक्षिक प्रासंगिकता:

आज के समाज में भी ''एक टोकरी भर मिट्टी'' उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कहानी लिखे जाने पर थी। आज भी संपत्ति-वर्चस्व, सामाजिक असमानता, गरिब-विकसित वर्गों की उपेक्षा, और कमजोरों की आवाज दबने की स्थितियाँ मौजूद हैं। इसके साथ-साथ, कहानी हमें यह स्मरण कराती है कि व्यक्तिगत जड़-भावना, आत्म-सम्मान और मानवीय संवेदनाएँ जीवन में कितनी महत्वपूर्ण हैं।

''एक टोकरी भर मिट्टी'' कहानी आकार में छोटी-सी है, पर प्रभाव में विशाल है। माधवराव सप्रे ने रोजमर्रा के जीवन-दृश्यों को उठाकर उनसे सामाजिक चेतना जगाने का कार्य किया है। पात्र-संवेदनाओं का परीक्षण, समाज-ढाँचे का आकलन, और अंत में सुधार-संभावना का दर्शन-ये तीनों इस कहानी का मूल स्वरूप बनाते हैं। विधवा की झोपड़ी, उसकी मिट्टी, पोती की भूख और जमींदार का अहंकार ये सब मिलकर एक ऐसा प्रतीक-दृश्य बनाते हैं जहाँ मानव-मूल्य, न्याय-भाव और अंत:दृष्टि के प्रश्न खड़े होते हैं। यदि हमें समाज में अन्याय-प्रवृत्तियों से लड़ना है, तो सिर्फ कानूनी सुधार नहीं, बल्कि वैचारिक जागरूकता और संवेदनशीलता भी आवश्यक है और यही संदेश इस कहानी ने सदैव से दिया है।

''एक टोकरी भर मिट्टी'' केवल हिन्दी की पहली कहानी नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना, करुणा और नैतिक चेतना का अमर प्रतीक है। सप्रे जी ने बहुत ही छोटे कथानक में समाज, राजनीति और नैतिकता के गहरे प्रश्न समाहित किए हैं। यह कहानी हमें बताती है कि परिवर्तन हिंसा से नहीं, बल्कि करुणा और आत्मबोध से संभव है। माधवराव सप्रे न केवल हिन्दी कहानी के आद्य प्रवर्तक हैं, बल्कि वे हिन्दी समाज में नैतिक पुनर्जागरण के संवाहक भी हैं। उनकी ''एक टोकरी भर मिट्टी'' आज भी हर उस समय को आईना दिखाती है, जब ताकतवर, कमजोर की मिट्टी पर अधिकार जमाना चाहता है और हमें यह याद दिलाती है कि ''जिस मिट्टी में हमारी जड़ें हैं, वही हमारी पहचान है।'' इस प्रकार, साधारण-सी कथावस्तु में मिथकीय-मूल्य छुपा हुआ है, जिसे पाठक-मन सहजता से ग्रहण कर सकता है, पर गहराई से समझ सकता है। हिंदी साहित्य के इस आरंभ-कालीन उपक्रम को हम न सिर्फ पढ़ सकते हैं बल्कि वर्तमान संदर्भ में भी पुन: विचार कर सकते हैं।

हिंदी की पहली कहानी की खोज और माधवराव सप्रे का योगदान:

हिंदी साहित्य के इतिहास में ''पहली कहानी'' कौन-सी मानी जाए, यह प्रश्न लंबे समय तक विवाद और मतभेद का विषय रहा। प्रारंभिक काल में कई विद्वानों ने विभिन्न रचनाओं को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी के रूप में स्वीकार करने के प्रयास किए, किंतु समय के साथ-साथ तथ्य और तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि सन् 1901 में माधवराव सप्रे द्वारा लिखी गई ''एक टोकरी भर मिट्टी'' ही हिंदी की पहली मौलिक कहानी है। इस निष्कर्ष तक पहुँचने में छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ साहित्यकार श्री देवीप्रसाद वर्मा का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

हिंदी कहानी के इतिहास की आरंभिक कड़ी खोजने का कार्य सरल नहीं था। बहुत समय तक सैय्यद इंशा अल्ला खाँ की ''रानी केतकी की कहानी'' को हिंदी की पहली कहानी माना जाता रहा। यह रचना भाषा और शैली की दृष्टि से अरबी-फारसी प्रभाव से निर्मित थी और इसमें मसनवी तथा दास्तान परंपरा का असर साफ दिखाई देता है। कथा-विन्यास की दृष्टि से यह अधिकतर एक भाषाई प्रयोग जैसी थी, जिसमें मौलिक कहानी-तत्वों का अभाव था। इसके पश्चात किशोरीलाल गोस्वामी की ''इंदुमती'' (1900, सरस्वती पत्रिका) को कुछ आलोचकों ने हिंदी की पहली कहानी का दर्जा देने की कोशिश की। किंतु इस रचना पर यह आरोप लगा कि इसका कथानक शेक्सपियर के नाटक ''टेम्पेस्ट'' से लिया गया है। कहानी की नायिका इंदुमती और नाटक की मिराण्डा के चरित्र, घटनाएँ और स्थितियाँ अत्यंत समान थीं-दोनों अपने पिता के साथ वन में रहती हैं, एक राजकुमार से प्रेम करती हैं और अंत में पिता की परीक्षा के बाद विवाह करती हैं। इस कारण यह कहानी मौलिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकी।

इसके बाद कुछ विद्वानों ने मास्टर भगवान दास की ''प्लेग की चुड़ैल'' (1902) और कुछ ने रामचंद्र शुक्ल की ''ग्यारह वर्ष का समय'' (1903) को हिंदी की पहली कहानी के रूप में प्रस्तुत किया। एक अन्य विचारधारा ने बंग महिला की ''दुलाईवाली'' (1907) को पहली मौलिक कहानी कहा। इन सब मतों के बीच हिंदी कहानी के जन्म को लेकर गहरा धुंधलापन बना रहा। यह भ्रम तब तक बना रहा जब तक छत्तीसगढ़ के साहित्यकार देवीप्रसाद वर्मा ने अपने शोध के माध्यम से यह प्रमाणित नहीं किया कि माधवराव सप्रे की कहानी ''एक टोकरी भर मिट्टी'' (1901, पत्रिका छत्तीसगढ़ मित्र) ही हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी है। उन्होंने सन्

1968 में मुंबई से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्रिका ''सारिका'' में ''हिंदी की पहली कहानी'' शीर्षक से विस्तृत लेख लिखा।

इस लेख के प्रकाशन के बाद हिंदी साहित्य-जगत में व्यापक बहस छिड़ गई। लगभग डेढ़ वर्ष तक सारिका के पृष्ठों पर विद्वानों के पक्ष-विपक्ष में लेख छपते रहे। संपादक कमलेश्वर ने इस वाद-विवाद को पूर्ण पारदर्शिता और गंभीरता से प्रस्तुत किया। अंततः अधिकांश विद्वानों ने डॉ. धनंजय जैसे शोधकर्ताओं के तर्कों से सहमति जताई कि ''एक टोकरी भर मिट्टी'' ही हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी कहलाने योग्य है।

सप्रे की अन्य कहानियाँ और उनका स्वरूप

माधवराव सप्रे ने छत्तीसगढ़ मित्र पत्रिका में कुल छह कहानियाँ प्रकाशित कीं-सुभाषित रत्न 1, सुभाषित रत्न 2, एक पथिक का स्वप्न, सम्मान किसे कहते हैं, आजम और एक टोकरी भर मिट्टी। पहली दो रचनाएँ संस्कृत सुभाषित रत्नावली के अनुवादात्मक रूप में थीं और उनमें कथा-तत्व नहीं मिलते। इनमें मुख्यतः नीति और उपदेश की बातें कही गई हैं, इसलिए इन्हें कहानियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

'एक पथिक का स्वप्न' एक लम्बी कथा है जिसमें पथिक नामक व्यक्ति कठिन परिस्थितियों से गुजरते हुए अंततः गजनवी वंश का राजा बन जाता है। इस कहानी में संघर्ष, स्वाधीनता और मानवतावादी दृष्टि के तत्व विद्यमान हैं। समालोचक डॉ. भालचंद्र राव तैलंग ने इसे समाजवादी मानवतावाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण बताया है, क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्मबल का स्वर गूँजता है।

सम्मान किसे कहते हैं' राष्ट्रभक्ति और स्वाभिमान पर आधारित एक सशक्त कहानी है। सन् 1900 के आस-पास जब राष्ट्रीय आंदोलन का कोई स्वर नहीं था, उस समय सप्रे ने इस रचना में स्वतंत्रता के लिए त्याग और बलिदान की भावना व्यक्त की। कहानी का नायक झबेला विदेशी अधिपत्य स्वीकार करने से इनकार करता है और कहता है- ''विश्वासघात का कलंक लेकर पशु-समान जीने से अच्छा है देश के लिए प्राण देना।'' यह कथन उस युग की चेतना से बहुत आगे की बात थी।

9.6 सारांश

उनकी कहानियाँ पारंपरिक ढाँचे की सीमाओं से बाहर जाकर यथार्थ, समाज और मानव मूल्य की बात करती हैं। 'एक टोकरी भर मिट्टी' जैसी कथा न केवल भावनात्मक दृष्टि से सशक्त है, बल्कि यह अन्याय और वर्ग-विरोध के विरुद्ध सामाजिक संदेश भी देती है। यही कारण है कि आज अधिकांश साहित्य-इतिहासकार इसे हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। हिंदी कहानी की यात्रा का आरंभ केवल साहित्यिक प्रयोग से नहीं, बल्कि समाज की संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों से हुआ। इस यात्रा के प्रथम पड़ाव पर माधवराव सप्रे का नाम स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। उन्होंने अपने सीमित संसाधनों और छोटे भौगोलिक क्षेत्र में रहकर भी ऐसा कार्य किया, जिसने हिंदी कथा-साहित्य की नींव रखी।

K3.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तरः सन् 1984 में 'माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय' की स्थापना की गई थी।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तरः 13 अप्रैल सन् 1907 को उन्होंने 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन आरंभ किया गया था।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तरः पं. माधवराव सप्रे का जन्म 19 जून 1871 को मध्यप्रदेश के दमोह ज़िले के पथरिया ग्राम में हुआ था।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तरः विधवा स्त्री और जमींदार 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी के मुख्य पात्रों हैं।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तरः यह कथन आलोचक गोपाल राय का है।

5 9.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सप्रे, माधवराव 1901 एक टोकरी भर मिट्टी. छत्तीसगढ़: ग्राम भारती कॉलेज,
- सिंह,नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई: दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- शुक्ल, संतोष कुमार (1996). माधवराव सप्रे: व्यक्तित्व और कृतित्व. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
- सिंह, नामवर (सं) (2011). माधवराव सप्रे प्रतिनिधि संकलन, नई दिल्ली: नेशनल बुक ऑफ ट्रस्ट,
- वर्मा, देवीप्रसाद (सं). माधवराव सप्रे की कहानियाँ. इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी

M9.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रशों के उत्तर लिखिए

1. 'एक पथिक का स्वप्न' कहानी का मूल विषय किया है?
2. ''महाराज, नाराज न हों, आपसे एक टोकरी-भर मिट्टी नहीं उठाई जाती, और इस झोपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी हैं; उसका भार आप जन्म-भर क्योंकर उठा सकेंगे?''- यह कथन किसका है?
3. पं. माधवराव सप्रे के किन्ही तीन कहानियों के नाम लिखिए।
4. छत्तीसगढ़ मित्र का प्रकाशन कब हुआ था?
5. 'ग्यारहवर्ष का समय' के रचनाकार का नाम लिखिए?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए:

1. हिंदी की पहली कहानी की खोज और माधवराव सप्रे का योगदान पर एक आलेख तैयार कीजिए।
2. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी में चित्रित सामाजिक एवं शैक्षिक प्रासंगिकता को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
3. पं. माधवराव सप्रे जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
4. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी की समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
5. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी में चित्रित मानवीय संवेदना को स्पष्ट कीजिए।

****

इकाई-10 जहाँ लक्ष्मी कैद है (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 कहानीकार 'राजेन्द्र यादव' का परिचय
10.4 राजेन्द्र: साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास
10.5 नई कहानी आन्दोलन और राजेन्द्र यादव का साहित्यिक दृष्टिकोण
10.6 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी का सार
10.7 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की समीक्षा
10.8 सारांश
10.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
10.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
10.11 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- राजेन्द्र यादव के जीवन, व्यक्तित्व और साहित्यिक योगदान का परिचय प्राप्त करेंगे।
- राजेन्द्र यादव के साहित्यिक दृष्टिकोण और उनके यथार्थवादी विचारों के बारे में जानेंगे।
- नई कहानी आंदोलन में राजेन्द्र यादव के महत्वपूर्ण योगदान को जान सकेंगे।
- 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की कथावस्तु और उसके मुख्य विषय को जानेंगे।
- 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी के माध्यम से समाज में धन-लालसा और मानवीय मूल्यों के संबंध को ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी के आधार पर उसके सामाजिक संदेश और आलोचनात्मक पक्ष को समझने का प्रयास करेंगे।

10.2 प्रस्तावना

हिंदी कथा-साहित्य में बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल के बाद जो परिवर्तन दिखाई देता है, वह केवल शिल्प या कथानक का परिवर्तन नहीं बल्कि दृष्टिकोण और संवेदना का भी परिवर्तन है। इस परिवर्तन का सबसे सशक्त रूप नई कहानी आंदोलन के रूप में सामने आया। इस आंदोलन से जुड़े कथाकारों ने परंपरागत कथानकों, रूढ़ सामाजिक मूल्यों और आदर्शवादी दृष्टि से हटकर मनुष्य के वास्तविक जीवन, उसकी मानसिक जटिलताओं तथा मध्यवर्गीय समाज की विडंबनाओं को अपनी कहानियों का आधार बनाया। इसी आंदोलन के प्रमुख और प्रभावशाली रचनाकारों में राजेन्द्र यादव का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है।

राजेन्द्र यादव ने हिंदी कहानी को नई संवेदनशीलता, निर्भीकता और वैचारिक स्पष्टता प्रदान की। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र विचारों वाला, परंपराओं से प्रश्न करने वाला और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाला था। उन्होंने कहानी को किसी निर्धारित सिद्धांत या परंपरा के बंधन में स्वीकार नहीं किया बल्कि जीवन के यथार्थ अनुभवों को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया। उनकी कहानियों और उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज की

कुंठाएँ, सामाजिक विषमताएँ, पारिवारिक तनाव तथा मनुष्य की आंतरिक विडंबनाएँ स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती हैं।

नई कहानी आंदोलन से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण कथाकारों जैसे निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और मोहन राकेश के साथ राजेन्द्र यादव ने हिंदी कहानी को आधुनिक जीवन-बोध से जोड़ा। इन लेखकों ने व्यक्ति की मानसिकता, अस्तित्वगत संघर्ष और बदलते सामाजिक संबंधों को गहराई से अभिव्यक्त किया। विशेष रूप से कस्बाई जीवन से महानगरीय जीवन की ओर बढ़ती नई पीढ़ी की बेचैनी, आक्रोश और आत्ममंथन उनके साहित्य में प्रमुखता से दिखाई देता है।

प्रस्तुत इकाई में राजेन्द्र यादव की प्रसिद्ध कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' का अध्ययन किया जाएगा। यह कहानी मध्यवर्गीय समाज की रूढ़िवादिता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और आर्थिक मानसिकता पर तीखा प्रहार करती है। कहानी में 'लक्ष्मी' केवल एक पात्र नहीं बल्कि उस स्त्री-जीवन का प्रतीक है जो परिवार और समाज की परंपरागत सोच के कारण स्वतंत्रता से वंचित रह जाता है। आर्थिक स्वार्थ और सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर स्त्री की इच्छाओं और भावनाओं को कैद कर दिया जाता है। इस प्रकार यह कहानी स्त्री की पराधीनता, मानसिक घुटन और उससे मुक्ति की आकांक्षा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है।

इस इकाई में कहानीकार राजेन्द्र यादव का संक्षिप्त परिचय, उनके साहित्यिक कृतित्व की चर्चा, 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' का सार, उसके प्रमुख विषय-वस्तु और विविध साहित्यिक पक्षों का विश्लेषण तथा समग्र समीक्षा प्रस्तुत की जाएगी। इस अध्ययन के माध्यम से न केवल राजेन्द्र यादव की कथा-दृष्टि को समझा जा सकेगा बल्कि नई कहानी आंदोलन की वैचारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को भी स्पष्ट रूप से जाना जा सकेगा।

10.3 कहानीकार 'राजेन्द्र यादव' का परिचय

नई कहानी आंदोलन के प्रमुख कथाकार तथा बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त 1929 को उत्तर प्रदेश के ऐतिहासिक नगर आगरा में एक मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार में हुआ। मुगलकालीन स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत से समृद्ध इस शहर ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में भी अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाई। संयुक्त परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची तथा भाई-बहनों का भरपूर स्नेह और संरक्षण प्राप्त हुआ। आगरा के 'रफी अहमद किदवई रोड मण्डी' नामक मोहल्ले में उनका बचपन बीता। परिवार की पहली संतान होने के कारण स्वाभाविक रूप से उन्हें घर के सभी सदस्यों का विशेष स्नेह मिला। पारिवारिक वातावरण में प्रेम, नैतिक मूल्यों और संस्कारों की जो धारा प्रवाहित होती थी उसी ने बचपन से ही उनके व्यक्तित्व को गहराई और संवेदनशीलता प्रदान की।

बाल्यावस्था में घटी एक अप्रत्याशित घटना ने उनके जीवन की दिशा को बदल दिया। स्वभाव से वे अत्यन्त चंचल और मस्तमौला थे। इसी उत्साहपूर्ण स्वभाव के कारण बचपन में खेलते समय एक दुर्घटना हो गई। लगभग नौ वर्ष की आयु में हॉकी खेलते हुए उनकी एक टांग टूट गई और यह चोट इतनी गंभीर सिद्ध हुई कि वे जीवनभर के लिए शारीरिक रूप से विकलांग हो गए। किन्तु इस शारीरिक बाधा को उन्होंने अपनी कमजोरी बनने नहीं दिया। इसके विपरीत उन्होंने अपने मनोबल को और अधिक दृढ़ बनाया। इस मानसिक दृढ़ता के निर्माण में उनके पिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही। चोट लगने के बाद जब वे लंबे समय तक बिस्तर पर रहेतब उनके पिता उन्हें 'अलिफ लैला', 'दास्तान-ए-हम्ज़ा', 'अमीर हम्ज़ा', 'चन्द्रकांता संतति' जैसी रोचक और लोकप्रिय साहित्यिक कृतियाँ सुनाया करते थे। इन कथाओं ने उनके अंतर्मन में साहित्य के प्रति गहरी रुचि और कल्पनाशक्ति का बीजारोपण किया। राजेन्द्र राव द्वारा लिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने अपने जीवन के उस दौर को याद करते हुए कहा था-''यही कोई बीस-पच्चीस की उम्र रही होगी मुझे किसी का डर क्यों हो मैं अपने इस डर से उपर उठना चाहता था। जब आप ईश्वर को मानते हैं तो अपने फैसले ईश्वर पर छोड़ते हैं। मैंने चाहा कि मैं अपने फैसले खुद लूँ। उन दिनों में शरीर की अपंगता के असहाय दर्द से गुजरा। हैण्डीकैप होना सीमा में बंध

जाना है यह मुझे स्वीकार नहीं हुआ। मेरे अन्दर अपनी सीमाओं से उपर उठने की तीव्र आकांक्षा जागी। कल्पना की दुनिया मे ही मैं उससे (अपंगता) से पार पा सकता था। मेरे लेखन की वही शुरूआत थी।''

राजेन्द्र यादव एक शिक्षित और साहित्यिक वातावरण वाले परिवार में पले-बढ़े थे। उनके पिता पेशे से चिकित्सक थे किंतु साहित्य के प्रति उनका गहरा लगाव था। यही कारण था कि घर का वातावरण बौद्धिक और साहित्यिक चर्चाओं से भरा रहता था। संयुक्त परिवार में उनके माता-पिता के अतिरिक्त चार भाई, छह बहनें तथा चाचा-चाचियों के परिवार भी सम्मिलित थे। इतने बड़े परिवार में रहते हुए उनका बचपन और किशोरावस्था सामान्य बालकों की तरह ही हँसी-खुशी में बीती। बाल्यकाल के खेल-कूद, विशेष रूप से पतंगबाजी के शौक ने उनकी कल्पनाशीलता को नई उड़ान दी। किशोरावस्था के अनुभवों को उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है- ''कलाकार अपने किशोरकाल के अपने यथार्थ से असंयुक्त नहीं हो पाता। वह या तो उनमें रस लेता है या उसे जस्टिफाई (विश्लेशित) करता है और जिन्दगीभर कला के नाम पर आत्मकथा के टुकड़े देता है।''

साहित्य-प्रेमी वातावरण में पले होने के कारण उन्हें प्रारम्भ से ही साहित्य सुनने और समझने का अवसर मिला। उनके पिता द्वारा सुनाई जाने वाली कथाएँ और साहित्यिक चर्चाएँ उनके बालमन को गहराई से प्रभावित करती थीं। इसी प्रभाव के कारण उनके भीतर साहित्य के प्रति गहरी रुचि विकसित हो गई। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा से शुरू हुई और यह शिक्षा घर पर ही सम्पन्न हुई। इस संदर्भ में डॉ. सतीश पेठणकर लिखते हैं- ''तत्कालीन समय की मांग के अनुसार राजेन्द्र यादव जी की प्रारम्भिक शिक्षा सूसीर में घर बैठे ही मौलवी से उर्दू भाषा के आलिफ लैला, बे-वे-टे करते-करते शुरू हुई। पिता की प्यारी संतान ने अपने माता-पिता के नक्शे कदम पर पैर जमाये हुये अपनी प्राथमिक शिक्षा 'उर्दू' में पूर्ण कर मवाना गये। मेरठ में अपने चाचा के यहाँ रहते हुये अपनी आगे की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की।''

घर में पढ़ाई के लिए अनुकूल वातावरण न मिलने के कारण आगे की शिक्षा के लिए उन्हें अपने चाचा के पास मेरठ जाना पड़ा। वहाँ रहकर उन्होंने अनुशासित माहौल में अपनी शिक्षा जारी रखी। उच्च शिक्षा के स्तर तक पहुँचते-पहुंचते उनकी बौद्धिक क्षमता और साहित्यिक रुचि दोनों ही परिपक्क हो चुकी थीं। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी और बांग्ला भाषाओं पर भी उनका अच्छा अधिकार था। अध्ययन के साथ-साथ वे लेखन कार्य में भी सक्रिय रहते थे। एम.ए. की परीक्षा से कुछ ही दिन पहले उन्होंने 'खेल-खिलौने' नामक कहानी लिखी जो उनके रचनात्मक उत्साह का प्रमाण है।

साहित्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और लेखन के प्रति निरंतर लगन ने उन्हें आगरा से लेकर कलकत्ता और फिर दिल्ली तक की साहित्यिक यात्रा पर अग्रसर किया। लेखन के प्रति उनकी यह उत्कट आकांक्षा उनके अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त होती है- ''कैसे बताऊँ कि मैं कतई बड़ा लेखक नहीं हूँ, न ही होना चाहता हूँ क्योंकि सचमुच मुझे अभी लिखना है। जो कुछ मैं लिखना चाहता हूँ, या जो भी मैं लिख सकता हूँ, वह तो अभी शुरू ही नहीं हुआ। कभी-कभी डर लगता है कि वह कभी होगा या यों ही जिन्दगी गुजर जायेगी?''

शिक्षा और लेखन के प्रति इसी बेचैनी तथा रचनात्मक समर्पण ने उन्हें हिंदी साहित्य में नई कहानी आंदोलन के प्रमुख और प्रभावशाली हस्ताक्षर के रूप में स्थापित किया। राजेन्द्र यादव का वैवाहिक जीवन भी अपने आप में एक दिलचस्प कहानी है। उनके मस्तमौला और फक्कड़ स्वभाव के कारण परिवार के लोगों को उनके विवाह की विशेष चिंता रहती थी। इसी दौरान उनका परिचय प्रसिद्ध कथाकार मन्नू भण्डारी से हुआ। उस समय मन्नू भण्डारी कलकत्ता के 'बालीगंज शिक्षा सदन' में हिंदी की अध्यापिका थीं और स्वयं भी एक प्रतिष्ठित लेखिका के रूप में जानी जाती थीं। उनकी मुलाकात संयोगवश हुई, किंतु धीरे-धीरे यह परिचय गहरी मित्रता में बदल गया। समय के साथ यह मित्रता प्रेम में परिवर्तित हो गई और दोनों ने जीवनसाथी बनने का निर्णय लिया।

जहाँ राजेन्द्र यादव का परिवार इस विवाह के पक्ष में थावहीं मन्नू भण्डारी के पिता इस संबंध के विरोध में

थे। फिर भी दोनों के प्रेम ने सामाजिक बंधनों और पारिवारिक आपत्तियों को पार कर लिया। अंततः 22 नवम्बर 1956 को दोनों ने कोर्ट मैरिज कर विवाह कर लिया। यह विवाह उस समय की सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के विरुद्ध एक साहसिक कदम था, जिसने नई सामाजिक चेतना का संकेत दिया। इस विवाह ने साहित्यिक जगत में भी काफी चर्चा उत्पन्न की। एक ओर राजेन्द्र यादव थे-मार्कसवादी विचारों से प्रभावित, स्वतंत्र स्वभाव के लेखक और दूसरी ओर मन्नू भण्डारी थीं एक सुसंस्कृत, शिक्षित और प्रतिष्ठित अध्यापिका। विवाह के कुछ वर्षों बाद 17 जून 1961 को उनके घर एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने 'रचना' रखा। पति-पत्नी के स्वभाव, रुचियों और जीवन-शैली में अनेक भिन्नताएँ होने के बावजूद उनके बीच कभी गंभीर मतभेद उत्पन्न नहीं हुए। दोनों ने अपने संबंधों को मित्रता, सम्मान और आपसी समझ के आधार पर निभाया। वे एक-दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मान करते थे और यही सम्मान उनके वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता था। इसी संदर्भ में राजेन्द्र यादव का यह कथन उल्लेखनीय है- ''बच्चा सिर्फ सार्थकता दे सकता है सुरक्षा नहीं।''

राजेन्द्र यादव का जीवन संघर्ष, संवेदना, बौद्धिक जिज्ञासा और साहित्यिक समर्पण का अद्भुत संगम है। शारीरिक विकलांगता जैसी कठिन परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने अपने भीतर की रचनात्मक शक्ति को विकसित किया और हिंदी साहित्य में नई कहानी आंदोलन के एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की।

10.4 राजेन्द्रः साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास

राजेन्द्र यादव ने अपने समूचे साहित्यिक सृजन में मनुष्य के जीवन, उसकी संवेदनाओं और उसके यथार्थ का व्यापक तथा गहन मूल्यांकन किया है। वे लेखन को केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सत्य के प्रति एक नैतिक प्रतिबद्धता मानते थे। इसी कारण उन्होंने अपने लेखन में ईमानदारी को सर्वोच्च महत्व दिया और किसी भी प्रकार के दबाव या संकोच को स्वीकार नहीं किया। उनका स्पष्ट मत था कि लेखक को निर्भीक होकर वही लिखना चाहिए जो उसे सत्य प्रतीत होता हो। स्वयं राजेन्द्र यादव ने कहा है- ''लिखने में किसी का लिहाज मत करो। जो सही लगे वही लिखों पूरी ईमानदारी के साथ।''

राजेन्द्र यादव की आरंभिक रचनात्मक यात्रा काफी पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। उनकी पहली रचना 'प्रतिहिंसा' मानी जाती है, जो सन् 1947 में 'कर्मयोगी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यद्यपि उनकी साहित्यिक यात्रा का प्रारम्भ उपन्यास लेखन से हुआ, परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने कहानी, कविता, निबंध, आलोचना, अनुवाद, संस्मरण, आत्मकथ्य और संपादकीय लेखन जैसे अनेक साहित्यिक क्षेत्रों में भी सक्रिय योगदान दिया। समय के साथ उनकी कहानियाँ 'हंस', 'गुलदस्ता', 'अप्सरा' जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं और साहित्यिक जगत में उन्हें व्यापक पहचान मिलने लगी।

उनका प्रारम्भिक कहानी- संग्रह 'रेखाएँ, लहरें और परछाइयाँ' 1950 से पहले ही प्रकाशित हो चुका था। राजेन्द्र यादव ने हिंदी कथा साहित्य के विभिन्न रूपों में सृजन करते हुए हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। उनके साहित्यिक योगदान की विविधता को उनके उपन्यासों, कहानी-संग्रहों, आलोचनात्मक कृतियों तथा अन्य रचनात्मक कार्यों के माध्यम से समझा जा सकता है।

उनके प्रमुख उपन्यासों में- सारा आकाश (1956)-जो प्रारम्भ में 1951 में 'प्रेत बोलते हैं' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उखड़े हुए लोग (1956), कुलटा (1958), शह और मात (1959), अनदेखे अनजाने पुल (1963), एक इंच मुस्कान (1963)-जिसे उन्होंने मन्नू भंडारी के साथ संयुक्त रूप से लिखा, मंत्रविद्ध और कुलटा (1967), एक था शैलेन्द्र।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक कहानी-संग्रह भी लिखे, जिनमें देवताओं की मूर्तियाँ (1953), खेल-खिलौने (1957), अभिमन्यु की आत्महत्या (1959), छोटे-छोटे ताजमहल (1961), किनारे से किनारे तक

(1962), टूटना (1966), ढोल और अपने पार (1986), चौखटें तोड़ते त्रिकोण (1987), वहाँ तक पहुँचने की दौड़ (1961), श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रिय कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, मेरी पच्चीस कहानियाँ, अब तक की समग्र कहानियाँ, यहाँ तक, पड़ाव-1, पड़ाव-2 आदि उल्लेखनीय हैं।

कविता के क्षेत्र में उनका संग्रह 'आवाज़ तेरी है' (1960) प्रकाशित हुआ। आलोचना और समीक्षा के क्षेत्र में भी उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनके प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथों में कहानी: स्वरूप और संवेदना (1968), प्रेमचन्द की विरासत (1978), अठारह उपन्यास (1981), औरों के बहाने (1981), कांटे की बात (बारह खंड), कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति (1966), उपन्यास: स्वरूप और संवेदना (1968), आदमी की निगाह में औरत (2001), वे देवता नहीं (2001), मुँड़-मुँड़ के देखता हूँ (आत्मकथ्य) (2001) आदि शामिल हैं।

संपादन के क्षेत्र में भी राजेन्द्र यादव ने अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने एक दुनिया समान्तर (1967), कथा दशक, हिन्दी कहानियाँ, मेरे साक्षात्कार, आत्मतर्पण (1964), अभी दिल्ली दूर है (1965), काली सुर्खियाँ (अश्वेत कहानी संग्रह) (1965), कथा-यात्रा (1985), अतीत होती सदी स्त्री का भविष्य (2001), औरत: उत्तरकथा (2002), पितृसत्ता के नये रूप (2003) जैसी कृतियों का संपादन किया।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. राजेन्द्र यादव की कहानियों की मूल विशेषता क्या है?

प्रश्न 2. राजेन्द्र यादव का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न 3. राजेन्द्र यादव किस विचारधारा से प्रभावित थे?

प्रश्न 4. यह कथन किसकी है?

प्रश्न 5. राजेन्द्र यादव की तीन कहानी संग्रह का नाम लिखिए।

अनुवाद के क्षेत्र में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने कई महत्वपूर्ण नाटकों और उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया। उनके द्वारा अनूदित नाटकों में चेखव के तीन नाटक-सीगल, तीन बहनें और चेरी का बगीचा प्रमुख हैं। इसी प्रकार उपन्यासों में टक्कर (चेखव), हमारे युग का एक नायक, प्रथम प्रेम (तुरगेनेव), बसंत प्लावन (तुरगेनेव), एक मछुआ : एक मोती (स्टाइनबेक), अजनबी (कामू) आदि शामिल हैं। ये सभी अनूदित उपन्यास 'कथा-शिखर' शीर्षक से दो खंडों में (1964) तथा 'नरक ले जाने वाली लिफ्ट' (2002) नामक विदेशी कहानी-संग्रह में प्रकाशित हुए हैं।

इन सभी उपन्यासों, कहानी-संग्रहों, आलोचनात्मक ग्रंथों, संपादित कृतियों तथा अनुवादों के आधार पर हम राजेन्द्र यादव के समृद्ध और व्यापक साहित्यिक कृतित्व से परिचित होते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं को अपनी रचनात्मकता का माध्यम बनाकर साहित्य जगत को अमूल्य योगदान प्रदान किया है। हिंदी साहित्य में 1960 के बाद के साहित्य के संदर्भ में 'समकालीनता' की अवधारणा विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगी। 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के COEVAL अथवा CONTEMPORANEITY का हिंदी रूप है। सामान्यत: इसका अर्थ है-एक ही समय या कालखंड में घटित होने वाली घटनाएँ या एक ही युग में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति। अर्थात् जो घटना या व्यक्तित्व जिस काल में सक्रिय होता है, वह उसी काल का समकालीन माना जाता है।

साहित्य समाज की सामूहिक चेतना और जनमानस की भावनाओं का दस्तावेज होता है। यह दस्तावेज अपने समय की परिस्थितियों, संघर्षों और विचारों को अभिव्यक्त करता है। साहित्य के माध्यम से ही हम बीते हुए समय की मानसिकता और सामाजिक परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सकते हैं। इसी आधार पर हिंदी साहित्य में समकालीनता की अवधारणा विकसित हुई है। समकालीन साहित्यकारों के बीच राजेन्द्र यादव का

स्थान एक अत्यंत प्रतिष्ठित और प्रभावशाली कथाकार के रूप में स्थापित है। उनके साथ जिन प्रमुख कथाकारों का नाम लिया जाता है, उनमें मोहन राकेश, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रमुख हैं। ये सभी लेखक हिंदी साहित्य के उस दौर का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे नई कहानी आंदोलन के रूप में जाना जाता है।

समकालीन साहित्यकारों की इस परंपरा में राजेन्द्र यादव का स्थान अत्यंत उज्ज्वल और विशिष्ट है। उनका साहित्य हिंदी कथा-साहित्य की अमूल्य धरोहर है। उनकी रचनाओं में प्रगतिशील चेतना, स्वतंत्रता के बाद जीवन-मूल्यों की खोज, महानगरीय जीवन की जटिलताएँ, मानसिक कुंठाएँ, निराशा, साम्प्रदायिक तनाव, मध्यवर्गीय असमानता, यौन-विसंगतियाँ, विद्रोह, मूल्य-संकट और स्त्री-विमर्श जैसे अनेक यथार्थपरक विषयों का सशक्त चित्रण मिलता है। राजेन्द्र यादव ने साहित्य में ऐसे कई महत्वपूर्ण आयाम स्थापित किए जो उनकी मौलिक दृष्टि और विचारधारा का परिणाम थे। समाज और साहित्य के संबंध को उन्होंने अत्यंत गंभीरता से समझा और अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ को बिना किसी आडंबर के प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उनका साहित्य वास्तविक जीवन के निकट दिखाई देता है।

राजेन्द्र यादव के साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि वे जीवन के सूक्ष्म अनुभवों को गहराई से समझने वाले संवेदनशील लेखक थे। विशेष रूप से स्त्री-मन और मानवीय संबंधों को समझने की उनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। इसी संदर्भ में कहा गया है- ''यह समकालीन स्वातंत्रयोत्तर युग के उपन्यासकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समकालीन जीवन के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण इनकी कथा-कृतियों की प्रमुख विशेषता है। व्यक्तिगत कुण्ठाओं तथा मानसिक विकृतियों की प्रतिक्रिया सम्भावनाएँ इनकी रचनाओं में प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त हुई है।''

समकालीन साहित्यकारों में राजेन्द्र यादव ने अपने साहित्य के माध्यम से उस समय के समाज में व्याप्त समाजवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद, रूढ़िवादिता और वर्गभेद जैसी विसंगतियों का तीखा विरोध किया। मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों, स्त्री के प्रति मानवीय दृष्टिकोण तथा दलितों के पक्ष में उनकी स्पष्ट आवाज उन्हें अन्य समकालीन लेखकों से अलग पहचान देती है। उनकी दूरदर्शी साहित्यिक दृष्टि ने उन्हें समकालीन कहानीकारों में अग्रणी स्थान प्रदान किया। प्रियदर्शन के शब्दों में- ''दरअसल जिसे चरित्रों के भीतर पैठना कहते हैं, उस कला में राजेन्द्र यादव का जबाब नहीं है। उनकी इसी खूबी की वजह से अपने कई समकालीन लेखकों पर उनका लेखन बेहद पठनीय रहा है। शानी, मोहन राकेश, रामविलास शर्मा, धर्मवीर भारती, या उपेन्द्र नाथ अश्क जैसे लेखकों पर उनकी टिप्पणीयाँ यादगार है। 'वे देवता नहीं थे' नाम की किताब में संगृहित इन टिप्पणियों को पढ़ने का अपना सुख है। लेकिन यही राजेन्द्र यादव जब आत्मविश्लेषण का जोखिम मोल लेते हैं तो उन पर गलत विश्लेषण से लेकर गलत बयानी तक के आरोप लग जाते हैं।''

राजेन्द्र यादव का साहित्य केवल कहानियों और उपन्यासों तक सीमित नहीं रहा। उनका साहित्यिक चिंतन आलोचना, समीक्षा, संपादन, अनुवाद और साहित्यिक पत्रकारिता जैसे अनेक क्षेत्रों में भी सक्रिय रहा। हिंदी साहित्य में नई कहानी आंदोलन के प्रमुख स्तंभों में से एक होने के साथ-साथ वे एक अत्यंत सक्षम संपादक भी थे। जब साहित्य सम्राट प्रेमचन्द द्वारा स्थापित प्रतिष्ठित कथा-मासिक 'हंस' को लोग लगभग भुला चुके थे तब राजेन्द्र यादव ने 1986 में उसका पुन र्प्रकाशन कर उसे नया जीवन प्रदान किया। उनके संपादन में 'हंस' पत्रिका ने साहित्यिक जगत में नई ऊर्जा और नई दिशा का संचार किया।

राजेन्द्र यादव के संपादन में 'हंस' निरंतर प्रगति करती रही और उसने साहित्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। इस पत्रिका में कहानी, कविता, लेख, संस्मरण, समीक्षा, लघुकथा, ग़ज़ल आदि अनेक विधाओं की उत्कृष्ट रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। 'हंस' की विशेषता यह थी कि इसके संपादकीय लेखों पर देश की कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में बहस और चर्चा होती थी। पत्रिका में 'समकालीन सृजन संदर्भ' के अंतर्गत भारत

भारद्वाज द्वारा अनेक चर्चित पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं पर चर्चा की जाती थी। 'चर्चा मुक्तसर' स्तंभ में साहित्यिक समाचार दिए जाते थे जबकि 'वो बात बोलेगी' शीर्षक स्तंभ में कार्यकारी संपादक संजीव के विचार पत्रिका को नई धार प्रदान करते थे। इसके अतिरिक्त 'साहित्य में अनामंत्रित' तथा 'जिन्होंने मुझे बिगाड़ा' जैसे स्तंभ भी पत्रिका की लोकप्रियता को बढ़ाने में सहायक बने।

यद्यपि राजेन्द्र यादव ने अपने लेखन की शुरुआत कविता से की थी परंतु 'हंस' के संपादक के रूप में उन्होंने अत्यंत निर्भीकता के साथ सामंती मूल्यों पर प्रहार किया। उन्होंने हिंदी साहित्य में दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श को प्रमुख बहस का विषय बनाया। राजेन्द्र यादव के संपादन काल में 'हंस' ने अनेक नई प्रतिभाओं को सामने लाने का कार्य किया। उन्होंने नवोदित रचनाकारों को मंच प्रदान किया उन्हें प्रोत्साहित किया और साहित्यिक संसार में स्थापित होने का अवसर दिया। यही कारण है कि समय के साथ 'हंस' नवोदित लेखकों और जागरूक पाठकों की प्रिय पत्रिका बन गई।

आज भी अनेक साहित्यकारों की यह आकांक्षा रहती है कि उनकी रचना 'हंस' में प्रकाशित हो। इसी कारण इसके संपादक राजेन्द्र यादव को हिंदी साहित्य में अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में देखा जाता है। जिस समय कई साहित्यिक पत्रिकाएँ बंद हो रही थीं उस दौर में 'हंस' का निरंतर प्रकाशन राजेन्द्र यादव की संपादकीय दक्षता और दूरदर्शिता का प्रमाण है। उनके नेतृत्व में इस पत्रिका ने न केवल साहित्यिक परंपरा को जीवित रखा, बल्कि अनेक नए लेखकों की रचनाओं को भी प्रतिष्ठा दिलाई और हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

10.5 नई कहानी आन्दोलन और राजेन्द्र यादव का साहित्यिक दृष्टिकोण

हिन्दी साहित्य में कहानी एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली साहित्यिक विधा मानी जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विविध प्रकार की साहित्यिक संरचनाएँ और अभिव्यक्तियाँ समाहित होती हैं। समय, परिस्थिति और युग की आवश्यकताओं के अनुसार कहानी ने स्वयं को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। कभी यह महाखण्ड या खण्डकाव्य के रूप में दिखाई देती है तो कभी नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, कथा या गल्प के रूप में अपना स्वरूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार कहानी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रही बल्कि समाज, संस्कृति और मानवीय अनुभवों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त साधन भी बनी।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के पश्चात देश की सामाजिक संरचना में व्यापक और अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिले। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय समाज के विचार, दृष्टिकोण और जीवन–मूल्यों में भी बदलाव आने लगा। इस परिवर्तन का प्रभाव केवल सामाजिक जीवन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि साहित्य के क्षेत्र में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता के बाद कहानी लेखन की दिशा और प्रवृत्तियों में भी एक नया मोड़ आया। कहानीकारों ने परम्परागत ढाँचों और रूढ़ियों से हटकर जनजीवन की वास्तविकताओं, संघर्षों और अनुभवों को नए रूप में अभिव्यक्त करना आरम्भ किया।

इस नई प्रवृत्ति के अंतर्गत कहानी ने पुरानी परम्पराओं को चुनौती देते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया। जीवन के बदलते स्वरूप, मनुष्य की मानसिक जटिलताओं और सामाजिक परिवर्तनों को कथा के केन्द्र में लाया गया। कहानी ने नवीन सरोकारों और नवीन शिल्प के साथ अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। इसी प्रक्रिया से हिन्दी साहित्य में नई कहानी आन्दोलन का उद्भव माना जाता है। डॉ० सुरेश सिन्हा के अनुसार– ''नई कहानी सामयिक सीमाओं के अन्तर्गत अपने यथार्थ, युग, समय, परिवेश और व्यक्ति को देखने परखने और मुल्याकित करने की प्रक्रिया है, जो यथार्थ को उचित सन्दर्भों में सप्राणता के साथ अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न करती है।''

5 महत्वपूर्ण बिंदु

हिन्दी कथा साहित्य में सन् 1950 से लेकर 1962 के बीच का समय नई कहानी के विकास का महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस अवधि में कहानी के विषय, शिल्प और प्रस्तुति में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देने लगे। कहानीकारों ने पारंपरिक कथानक और आदर्शवादी दृष्टिकोण से हटकर मनुष्य के भीतरी जीवन, उसकी संवेदनाओं, द्वंद्वों और सामाजिक परिस्थितियों को केन्द्र में रखा। इस नई चेतना और भावबोध से सम्पन्न कहानी को प्रतिष्ठित करने में जिन साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका रही उनमें राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन तीनों रचनाकारों को नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक और सशक्त हस्ताक्षर माना जाता है।

नई कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसमें व्यक्ति और समाज दोनों को समान रूप से महत्व दिया गया। व्यक्ति की मानसिक स्थिति, उसके अकेलेपन और संघर्ष को समाज की व्यापक संरचना के साथ जोड़कर देखा गया। इस संदर्भ में मधुरेश का यह कथन उल्लेखनीय है- ''राजेन्द्र यादव ने व्यक्ति और समाज की दो धाराओं को मिलाकर जीवन को उसकी समग्रता और संश्लिष्टता में प्रस्तुत किये जाने की बात कही।''

नई कहानी की इस त्रयी-राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर- ने परम्परागत मूल्यों को चुनौती देते हुए कथा साहित्य को नए आयाम प्रदान किए। इन लेखकों ने संवेदनशीलता और यथार्थवादी दृष्टिकोण के माध्यम से ऐसे विषयों को कथा का हिस्सा बनाया, जिन्हें पहले साहित्य में बहुत कम स्थान मिला था। विशेष रूप से राजेन्द्र यादव ने पारंपरिक नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार कर नए जीवन मूल्यों को स्थापित करने का साहसिक प्रयास किया। स्वाभाविक रूप से इस दृष्टिकोण के कारण उन्हें अनेक विरोधों और आलोचनाओं का सामना भी करना पड़ा।

नई कहानी आन्दोलन में मानवीय जीवन के विविध पक्षों को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। इसमें व्यक्ति की आकांक्षाएँ, उसके संघर्ष, स्त्री-पुरुष संबंधों में आने वाले परिवर्तन, मानसिक और शारीरिक कमजोरियाँ तथा सामाजिक दबावों के बीच जीते हुए मनुष्य की वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है। इस दृष्टि से नई कहानी केवल एक साहित्यिक प्रयोग नहीं थी बल्कि हिन्दी साहित्य में एक व्यापक वैचारिक परिवर्तन का प्रतीक भी थी। यह आन्दोलन हिन्दी साहित्य जगत में एक ऐसी नई दिशा के रूप में सामने आया, जिसने कथा साहित्य को निरंतर विकसित होने वाली धारा प्रदान की। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कई साहित्यिक आन्दोलनों का उदय हुआ। इन आन्दोलनों की शुरुआत नई कहानी आन्दोलन से मानी जाती है। इसके पश्चात सचेतन कहानी, अकहानी और समान्तर कहानी जैसे विभिन्न आन्दोलनों ने हिन्दी कथा साहित्य को नई दृष्टि और ऊर्जा प्रदान की। इन सबने मिलकर हिन्दी कहानी को अधिक व्यापक, बहुआयामी और संवेदनशील बनाया।

नई कहानी आन्दोलन को हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा जाता है। स्वतंत्रता के बाद का समय देश के लिए आशाओं, संघर्षों और जटिल यथार्थों से भरा हुआ था। समाज में तेजी से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों के कारण साहित्यकारों के भीतर भी एक नई अभिव्यक्ति की तीव्र आवश्यकता महसूस की जाने लगी। पुरानी कहानी की परंपरा, जो मुख्यत: प्रेमचंद युग से विकसित हुई थी, सामाजिक यथार्थ और आदर्शवाद पर आधारित थी तथा उसका केन्द्र मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद उभरते हुए शहरी मध्यवर्ग की समस्याएँ, मानसिक तनाव, अकेलापन और व्यक्तिगत संबंधों की जटिलताएँ उस परंपरागत शैली में समाहित नहीं हो पा रही थीं। इसी कारण एक नई कथा प्रवृत्ति का जन्म हुआ, जिसे नई कहानी कहा गया।

राजेन्द्र यादव ने अपनी रचनाओं में महानगरीय जीवन की जटिलताओं और उसके बदलते स्वरूप को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। महानगरों में बढ़ती हुई व्यस्तता, जीवन की भागदौड़ और नैतिक

मूल्यों के शिथिल होते बन्धनों को उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी। उन्होंने यह भी दिखाया कि आधुनिक महानगरों में स्त्रियाँ आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए कार्यालयों में कार्य करने लगी हैं और इस प्रक्रिया में वे न केवल आर्थिक बल्कि व्यक्तिगत और दैहिक स्वतंत्रता की भावना को भी स्थापित कर रही हैं। सहकर्मियों के साथ उनके संबंध भी आधुनिक जीवन का एक सामान्य हिस्सा बनते जा रहे हैं। इस संदर्भ में उनके उपन्यास एक इंच मुस्कान में अमर अमला से कहता है- ''परेशानी यही तो है कि उसके अनुसार आदर्श पति दफतर में काम करता है, और दफतर में लड़कियाँ होती ही नहीं-शाम को जितने फार्मल विजिट्स का सम्बन्ध है वह बहन-भाभी के रूप में होती है-मगर तो आजकल दफतर मैं भी .....''

राजेन्द्र यादव के जीवन और उनके साहित्य पर समाजवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ शोषण, असमानता और अन्याय का स्थान न हो। इसी कारण उन्होंने अपनी वैचारिक दृष्टि को स्वतंत्र और उदार बनाए रखा ताकि समाज में 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना स्थापित हो सके। उनका समाजवादी दृष्टिकोण उनके कथा साहित्य के साथ-साथ उनके संपादकीय लेखों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे चाहते थे कि समाज में कोई व्यक्ति शोषक न हो और कोई शोषित न रहे, न कोई शापित हो और न ही कोई पीड़ित।

राजेन्द्र यादव ने जातिगत भेदभाव, स्त्री-पुरुष असमानता और आर्थिक विषमता के विरुद्ध अपनी रचनाओं में सशक्त आवाज उठाई। वे समाज में व्याप्त ऊँच-नीच की भावना को समाप्त करना चाहते थे। जाति के आधार पर दलितों के साथ होने वाले भेदभाव, कार्यक्षेत्र में स्त्रियों के प्रति सामंती मानसिकता तथा आर्थिक व्यवस्था में पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच बढ़ती खाई को समाप्त करने की आकांक्षा उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसी कारण उनकी दृष्टि दलितों और वंचित वर्गों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और समर्थक मानी जाती है।

राजेन्द्र यादव की रचना-प्रक्रिया उनके जीवनानुभवों और सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ी हुई है। उन्होंने अपने समय की परिस्थितियों, घटनाओं और अनुभवों को गहराई से समझकर उन्हें कथा रूप में प्रस्तुत किया। उनके पात्र जीवन के वास्तविक अनुभवों से निर्मित प्रतीत होते हैं। एक ईमानदार कथा लेखक प्राय: अपने पात्रों के माध्यम से ही अपने विचार और अनुभव व्यक्त करता है। यही बात राजेन्द्र यादव की कहानियों में भी दिखाई देती है। कभी यह अभिव्यक्ति घटनाओं और संवादों के माध्यम से सामने आती है तो कभी परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं के रूप में। यथार्थ की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए राजेन्द्र यादव का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है- ''आवश्यकता आज उस भोगे जाने वाले यथार्थ को झटकों और झलकियों में देखने की नहीं बल्कि उसे नये अनुभव-प्रसंगों के रूप में प्रस्तुत करने की है, क्योंकि जो वास्तविकता कल तक चौंका देती थी, जिसके दर्शन-मात्र से कुछ आस्थाएँ-भावनाएँ बन या बिगड़ जाती थी, कहानी का प्रारम्भ और अन्त बन जाती थीं, वे या तो आज जीवन का रोजमर्रा यथार्थ हो गई है अथवा जीवन ने तय कर दिया है कि वे कभी यथार्थ नहीं होंगी।''

राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में स्वतंत्रता के बाद बदलती हुई सामाजिक मानसिकता के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनाओं में पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था के अंतर्विरोधों को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन परिस्थितियों में उनके पात्रों के भीतर विद्रोह की भावना भी विकसित होती दिखाई देती हैजो सामंती मानसिकता को अस्वीकार करते हुए उसके विरुद्ध खड़े होते हैं। उनकी कहानी 'तलवार पंचहजारी' इसका एक सशक्त उदाहरण है। इस कहानी में सामंती मूल्यों के प्रति गहरी बेचैनी और असंतोष व्यक्त किया गया है। कहानी का पात्र लालू सामंती व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। वह उस तलवार से भी घृणा करता है जो सामंती सत्ता का प्रतीक है। वह कहता है- ''लेकिन सच कहूँ मुझे अपने कक्का से रत्तीभर भी प्यार नहीं है। अगर उनके लिए कोई भी भावना मैं अपने हृदय में महसूस करता हूँ तो वह है घृणा। दुनिया में अगर मुझे किसी आदमी से दिली नफरत है तो इस आदमी से।''

राजेन्द्र यादव का उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' भारतीय समाज में व्याप्त पूँजीवादी शोषण को उजागर करने वाली एक महत्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यास में राजनीतिक सत्ता और पूँजीवादी व्यवस्था के बीच मौजूद गहरे संबंधों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास बताता है कि किस प्रकार शासन सत्ता और पूँजीवादी ताकतें एक-दूसरे के पूरक बन जाती हैं और आम जनता को उनके परिणामों का सामना करना पड़ता है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र-शारदा, जया और सूरज—ऐसे ही लोग हैं जो इस कठोर सामाजिक यथार्थ में स्वयं को अस्थिर और संघर्षरत पाते हैं। वे एक ऐसे परिवेश में जी रहे हैं जहाँ उन्हें निरंतर दोहरे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। विशेष रूप से सूरज का चरित्र अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह लंबे समय तक देशबन्धु जैसे पूँजीपतियों के साथ रहकर उनके कार्यों और उनकी मानसिकता को निकट से देखता और समझता रहा है। इस प्रकार राजेन्द्र यादव ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की जटिल संरचना, शोषण की प्रवृत्तियों और बदलते जीवन मूल्यों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है।

राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य का अधिकांश रचनात्मक संसार समाज में विकसित हो रही नई जीवन-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। उनके साहित्य में यह नई दृष्टि केवल विचार के स्तर पर नहीं बल्कि जीवन के विविध आयामों में सक्रिय रूप से दिखाई देती है। इस दृष्टि का मूल आधार रूढ़ियों और जड़ परम्पराओं से मुक्ति प्राप्त करना तथा सामंतवादी मानसिकता से बाहर निकलकर एक स्वतंत्र और आधुनिक सामाजिक चेतना की ओर अग्रसर होना है। इसी नवीन सोच और दृष्टिकोण के आधार पर राजेन्द्र यादव ने अपने लेखन को निरंतर परिष्कृत किया, उसे संवारा और नए सामाजिक अनुभवों की कसौटी पर परखा।

उनकी यह नई दृष्टि किसी एक वर्ग, समुदाय या क्षेत्र तक सीमित नहीं रही। इसके प्रभाव की परिधि अत्यंत व्यापक है। दलित समाज, स्त्री जीवन, धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, पारंपरिक मान्यताएँ, आर्थिक विषमता, निम्नवर्ग, मध्यवर्ग तथा भारतीय सांस्कृतिक परिवेश-इन सभी क्षेत्रों को उनकी रचनात्मक दृष्टि ने स्पर्श किया है। उनके साहित्य में जीवन के विभिन्न वर्गों और परिस्थितियों से जुड़े पात्र दिखाई देते हैं जो पुरानी सामंती मान्यताओं से बंधे रहना नहीं चाहते। वे संघर्ष करने, अपने अस्तित्व को स्थापित करने और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं।

राजेन्द्र यादव के पात्रों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि वे पुराने मूल्यों से चिपके रहने के बजाय समय के साथ परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। उनके चरित्रों में पुरातन को त्यागकर नवीनता को अपनाने की मानसिकता मौजूद रहती है। यह प्रवृत्ति केवल किसी एक वर्ग में नहीं बल्कि विभिन्न सामाजिक स्तरों में दिखाई देती है। समय के परिवर्तन के साथ भारतीय समाज का मध्यवर्ग भी अपनी मुक्ति की संभावनाओं की तलाश करने लगा है। वह परम्परागत सोच को पुनः परखना चाहता है और जहाँ आवश्यक हो उसे अस्वीकार करने का साहस भी दिखाता है। यही नवीन दृष्टिकोण राजेन्द्र यादव की कहानियों की प्रमुख चिंता और सरोकार के रूप में सामने आता है।

नई जीवन-दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि समाज में स्थापित पुरानी मान्यताओं की जगह नए जीवन मूल्यों को स्वीकार किया जाए। भारतीय समाज में विवाह की परंपरा लंबे समय तक एक पवित्र और स्थायी सामाजिक संस्था के रूप में देखी जाती रही है। इसे दो व्यक्तियों के साथ-साथ दो परिवारों और दो आत्माओं के मिलन के रूप में समझा गयाकिंतु आधुनिक समय में विकसित नई चेतना और विचारधारा ने इस परंपरा को भी नए सिरे से देखने का दृष्टिकोण प्रदान किया है। अब विवाह को केवल एक अनिवार्य सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार करने के बजाय उसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता पर भी प्रश्न उठाए जाने लगे हैं। इसी संदर्भ में आशा व्होरा का यह कथन उल्लेखनीय है- 'विवाह जन्म-जन्मांतर का पवित्र अटूट बन्धन है, यह दो शरीरों का नहीं दो आत्माओं का मिलन है' 'मेरेजिज आर मेड इन हेवन' वाली परिभाषाओं से लेकर वर्तमान स्थिति में विवाह संस्था बिल्कुल अनुपयोगी सिद्ध हो चुकी है। यह एक परम्परा नहीं रूढ़ि है। एक सडी गली संस्था अब तो यह जिसे टूटना ही चाहिए।''

परिवर्तन प्रकृति का मूल नियम है। समय के साथ समाज, परिवेश और मानवीय जीवन में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। इसी परिवर्तन की प्रक्रिया में मानवीय संबंधों की संरचना भी बदलती रहती है। आधुनिक समाज में मानवीय संबंधों के स्वरूप में जो परिवर्तन दिखाई देते हैं, उनका एक प्रमुख कारण सामाजिक मूल्यों का विघटन भी है। जब परम्परागत सामाजिक मूल्यों की पकड़ कमजोर पड़ती है तो उनके स्थान पर नए संबंधों और नए जीवन-मूल्यों का निर्माण होता है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की परंपरा लंबे समय तक सामाजिक जीवन का आधार रही है किंतु आधुनिक परिस्थितियों में यह संरचना धीरे-धीरे टूटने लगी और उसकी जगह छोटे या अणु परिवारों का निर्माण होने लगा। इस परिवर्तन ने मानवीय संबंधों की प्रकृति को भी प्रभावित किया। राजेन्द्र यादव ने अपने कथा-साहित्य में इन विघटित सामाजिक मूल्यों और परिवर्तित पारिवारिक संबंधों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'सारा आकाश' में समर का चरित्र संयुक्त परिवार की परंपरागत व्यवस्था से उत्पन्न विडम्बनाओं और दबावों से त्रस्त दिखाई देता है। वह इस वातावरण से निकलकर एक अलग जीवन की ओर आकर्षित होता है। दूसरी ओर इसी उपन्यास में शिरीष भाई का चरित्र आधुनिक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। वह पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार करते हुए नए मानवीय संबंधों का समर्थन करता है। समर को प्रेरित करते हुए वह कहता है- ''संयुक्त परिवार की परम्पराओं को तोड़ना ही होगा। अब आपके लिए ही कहूँ कि अगर आप खुद जिन्दा रहना चाहते हैं या चाहते हैं कि आपकी पत्नी भी जिन्दा रहे तो इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है कि अलग रहिए। जैसा भी हो अलग रहिए.... ।''

राजेन्द्र यादव ने अपने कथा-साहित्य में केवल विषय-वस्तु के स्तर पर ही नहीं बल्कि शिल्प के स्तर पर भी अनेक नवीन प्रयोग किए हैं। उन्होंने कथा संरचना की सूक्ष्म बारीकियों को उभारते हुए कहानी को अधिक प्रभावशाली और जीवंत बनाने का प्रयास किया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कहानी में छोटे-छोटे कथा-दृश्यों के माध्यम से कथा का वातावरण अत्यंत जीवंत बन जाता है। कहानी में लाला रूपाराम के घर में केवल धन-सम्पत्ति की लक्ष्मी ही नहीं बल्कि उनकी बेटी लक्ष्मी भी मानो कैद होकर रह गई है। इस कथा में केवल अंधविश्वास की समस्या ही नहीं बल्कि सामाजिक विसंगतियों और मानवीय विडम्बनाओं का भी सशक्त चित्रण किया गया है। शिल्प की दृष्टि से यह कहानी अत्यंत प्रभावशाली है। कहानी के अंत में गोबिन्द के माध्यम से जो प्रश्न उठाया गया है वह पाठक को भीतर तक झकझोर देता है- ''क्या मैं ही पहला आदमी हूँ, जो इस पुकार को सुनकर इतना व्याकुल हो उठा हूँ, या ओरों ने भी इस आवाज को सुना है, और अन्सुना कर दिया हो, और क्या सचमुच जवान लड़की की आवाज को सुनकर अनसुना किया जा सकता है।''

उनकी कहानी 'खेल खिलौने' में नलिनी की आत्महत्या समाज के सामने एक गम्भीर प्रश्न खड़ा करती है। नलिनी का यह निर्णय केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं है बल्कि उस जड़ और संवेदनहीन समाज की विफलता का प्रतीक भी है जिसमें स्त्री के पास अपने अस्तित्व को बचाने के लिए कोई विकल्प नहीं बचता। उस जड़ समाज में नलिनी के सामने केवल एक ही मार्ग शेष रह जाता है—मृत्यु का मार्ग, चाहे वह शरीर की मृत्यु हो या आत्मा की। नलिनी की आत्महत्या केवल एक व्यक्ति की त्रासदी का अंत नहीं है, बल्कि यह संकेत देती है कि समाज में ऐसी कितनी ही नलिनियाँ होंगी जो इसी प्रकार की परिस्थितियों से गुजर रही हैं। कहानी की शिल्पगत विशेषता यह है कि पाठक नलिनी की पीड़ा को केवल एक पात्र की समस्या के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे अपने ही समाज की पीड़ा के रूप में अनुभव करता है।

राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'कुलटा' में भी शिल्पगत प्रस्तुति अत्यंत प्रभावशाली है। इस उपन्यास में मेजर तेजपाल के सैन्य व्यक्तित्व और उनके पारिवारिक जीवन की घुटन को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। विशेष रूप से उनके ड्राइंग रूम का दृश्य ही उस मानसिक तनाव और दमनकारी वातावरण को प्रकट कर देता है जिसमें वे जी रहे हैं। इस संदर्भ में वर्णित दृश्य अत्यंत मार्मिक है- ''ड्राईंग रूम में बैठे-बैठे-बैचेनी हो रही थी

यहाँ कुछ ऐसा तनाव था कि इच्छा होती थी। उठकर बाहर बरामदे में जाकर खुली सांस लें लेकिन वहाँ वह 'गोलियों का फूल' था जिसे देखने की व्याग्रता भी होती थी और जिसे देखकर डर भी लगता था।''

यह स्पष्ट होता है कि राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य में शिल्प और विषय-वस्तु दोनों स्तरों पर नवीन प्रयोग दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने अनुभव संसार से नई-नई संवेदनात्मक भूमियाँ खोजकर कथा साहित्य को समृद्ध किया है। बिम्ब, प्रतीक, भाषा की अभिव्यक्त क्षमता और अप्रस्तुत विधान जैसे शिल्पगत तत्वों का प्रयोग करते हुए उन्होंने अपने पात्रों के आंतरिक जीवन और मनोवैज्ञानिक गहराइयों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उकेरा है। अत: यह कहा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव का कथा-साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण भर नहीं करता, बल्कि वह आधुनिक समाज की जटिलताओं, संघर्षों और बदलते जीवन मूल्यों को एक नवीन कलात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। उनके शिल्पगत प्रयोग और वैचारिक दृष्टि हिन्दी कथा-साहित्य को नई दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

10.6 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी का सार:

हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव की कहानी लक्ष्मी कैद है आधुनिक समाज की मानसिक जटिलताओं और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करती है। इस कहानी में लेखक ने एक युवक के मन में उठने वाली जिज्ञासा, कल्पना और भावनात्मक द्वंद्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। कहानी का मुख्य केंद्र एक ऐसी लड़की 'लक्ष्मी' है, जो मानो किसी बंधन में फँसी हुई प्रतीत होती है और उसके संकेतों को समझने की कोशिश करता हुआ युवक गोविंद मानसिक रूप से विचलित हो उठता है।

कहानी के इस भाग में गोविंद रात के समय अचानक घबराकर जाग उठता है। उसे ऐसा महसूस होता है जैसे किसी ने दरवाज़े पर दस्तक देकर उससे विनती की हो कि उसे बाहर निकाल लिया जाए। यह आवाज़ इतनी स्पष्ट लगती है कि वह कुछ समय तक यह समझ नहीं पाता कि यह सपना था या वास्तविकता। धीरे-धीरे उसे एहसास होता है कि यह संभवत: उसकी कल्पना का परिणाम है, क्योंकि वह सोने से पहले लक्ष्मी के बारे में ही सोचता रहा था। रात के सन्नाटे में वह मोमबत्ती जलाकर उस पत्रिका को निकालता है, जो उसे लक्ष्मी की ओर से पढ़ने के लिए मिली थी। पत्रिका के कुछ पन्नों पर नीली स्याही से रेखाएँ खींची हुई हैं और उनका कोना मोड़ा हुआ है। जब वह उन पंक्तियों को पढ़ता है तो उसे पता चलता है कि उनमें किसी लड़की की गहरी व्यथा व्यक्त हुई है-वह किसी से प्रेम करती है, उससे यहाँ से भगा ले जाने की प्रार्थना करती है और निराशा में आत्महत्या तक की बात कहती है। इन पंक्तियों को पढ़कर गोविंद का मन अत्यंत विचलित हो जाता है और उसे विश्वास होने लगता है कि यह संकेत उसी के लिए छोड़े गए हैं।

इन शब्दों को पढ़ते-पढ़ते उसकी कल्पना में एक ऐसी युवती का चित्र बनने लगता है जो मानो किसी कैद में बंद हो और सहायता के लिए पुकार रही हो। उसे बचपन में सुनी उस कहानी की याद आती है जिसमें एक राजकुमारी को राक्षस ने क़ैद कर रखा था और एक राजकुमार उसे मुक्त कराने आता है। इसी कल्पना के प्रभाव में वह लक्ष्मी को भी एक असहाय लड़की के रूप में देखने लगता है और उसके मन में उसे बचाने की तीव्र इच्छा जाग उठती है। गोविंद वास्तव में लक्ष्मी को देख भी नहीं पाया है परंतु घर में बार-बार उसका नाम सुनने और उसकी आवाज़ पहचान लेने के कारण उसके मन में उसके प्रति जिज्ञासा और आकर्षण बढ़ता जा रहा है। वह सोचता है कि शायद वही इन संकेतों के माध्यम से उससे सहायता माँग रही है। इस विचार से उसका मन रोमांच, भय और उत्सुकता से भर उठता है।

वह स्वयं इस बात पर पूरी तरह विश्वास नहीं कर पाता कि कोई लड़की वास्तव में उससे इस प्रकार मदद की अपेक्षा कर सकती है। उसे यह भी शंका होती है कि कहीं यह किसी का मज़ाक तो नहीं। फिर भी उन रेखांकित पंक्तियों का प्रभाव इतना गहरा है कि वह बार-बार उन्हें पढ़ता है और उसके मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ जन्म लेने लगती हैं। अंतत: वह उलझन में पड़ जाता है कि इन निशानों का रहस्य क्या है और यह

किसने बनाए हैं।

गोविंद के मन में लक्ष्मी के बारे में अनेक प्रश्न उठते हैं। वह सोचता है कि लक्ष्मी कौन है, कैसी है और उसकी स्थिति क्या है। पत्रिका में रेखांकित पंक्तियों को पढ़कर वह अत्यंत भावुक और व्याकुल हो जाता है। उसके मन में यह कल्पना उठती है कि यदि लक्ष्मी सचमुच उससे सहायता माँग रही है तो वह उसे वहाँ से भगा ले जाए। लेकिन साथ ही उसे अपने भविष्य, पढ़ाई और समाज की प्रतिक्रिया का भी डर सताने लगता है। इसी बीच घर के भीतर से अचानक ज़ोरदार शोर-गुल सुनाई देता है। ऊपर से बर्तन और अन्य वस्तुएँ गिरने लगती हैं और घर में अफरा-तफरी का वातावरण बन जाता है। गोविंद को यह समझ नहीं आता कि आखिर हुआ क्या है। वह चौकीदार और मिस्त्री से पूछता है तब उसे धीरे-धीरे घर की वास्तविक स्थिति का पता चलता है।

चौकीदार बताता है कि लाला रूपाराम बहुत धनी लेकिन अत्यंत कंजूस व्यक्ति है। उसने अपने व्यापार और चालाकी से बहुत धन अर्जित किया है, परंतु वह अत्यधिक लोभी और स्वार्थी स्वभाव का है। उसकी एक बेटी लक्ष्मी है, जिसे वह अत्यंत भाग्यशाली मानता है। उसका विश्वास है कि लक्ष्मी के जन्म के बाद ही उसके जीवन में धन और समृद्धि आई। इसी कारण वह उसे किसी देवी के समान मानता है और इस डर से कि उसके विवाह के बाद उसका भाग्य साथ छोड़ देगा, उसे घर के भीतर ही बंद रखता है। लक्ष्मी को बचपन से ही घर के भीतर सीमित कर दिया गया। उसे न बाहर जाने दिया गया और न ही उसकी पढ़ाई या विवाह की व्यवस्था की गई। धीरे-धीरे यह कैद उसके मानसिक जीवन पर भारी पड़ने लगी। अब कभी-कभी उसे दौरे पड़ते हैं और वह उग्र होकर घर की वस्तुएँ फेंकने लगती है। इसी कारण घर में अक्सर शोर-गुल और अफरा-तफरी मच जाती है। चौकीदार यह भी बताता है कि लक्ष्मी अब लगभग पच्चीस-छब्बीस वर्ष की हो चुकी है, परंतु उसके पिता ने आज तक उसकी शादी नहीं की। वह उसे अपने धन और भाग्य का स्रोत मानकर हर समय उसकी निगरानी करता है और उसे किसी से मिलने-जुलने की अनुमति नहीं देता। इस प्रकार लक्ष्मी एक तरह से अपने ही घर में कैद होकर रह गई है। चौकीदार दिलावर सिंह गोविंद को लाला रूपाराम के जीवन और उसके परिवार के बारे में विस्तार से बताता है। वह बताता है कि रूपाराम बहुत धनी व्यक्ति है, जिसने अपनी चक्की, कारखानों, मकानों और अन्य धंधों के माध्यम से बहुत धन इकट्ठा किया है। लेकिन वह अत्यंत कंजूस और लोभी स्वभाव का है। वह स्वयं साधारण जीवन जीता है और हर समय केवल धन जोड़ने में लगा रहता है।

चौकीदार के अनुसार रूपाराम की समृद्धि का कारण उसकी बेटी लक्ष्मी को माना जाता है। रूपाराम को विश्वास हो गया कि लक्ष्मी के जन्म के बाद ही उसका भाग्य चमका और उसका व्यापार बढ़ता गया। इसी कारण उसने अपनी बेटी को देवी के समान मान लिया। उसे डर था कि यदि लक्ष्मी की शादी हो गई और वह घर से चली गई तो उसका भाग्य भी समाप्त हो जाएगा। इसी अंधविश्वास के कारण उसने लक्ष्मी को घर में ही बंद करके रखना शुरू कर दिया। उसे स्कूल से निकाल लिया गया और किसी से मिलने-जुलने की अनुमति भी नहीं दी गई। वह न बाहर जा सकती थी और न ही उसकी शादी की कोई बात की जाती थी। धीरे-धीरे वर्षों बीतते गए और लक्ष्मी युवावस्था तक पहुँच गई लेकिन उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।

इस बंधन और अकेलेपन के कारण लक्ष्मी का मानसिक संतुलन भी प्रभावित होने लगा। कभी-कभी उसे दौरे पड़ते हैं जिनमें वह रोती-चिल्लाती है, वस्तुएँ फेंक देती है और अपने पिता के प्रति गहरा आक्रोश प्रकट करती है। उसकी इस पीड़ा को देखकर भी रूपाराम अपने अंधविश्वास और लोभ के कारण उसे स्वतंत्र नहीं होने देता। यह सब सुनकर गोविंद के मन में लक्ष्मी के प्रति गहरी करुणा और संवेदना उत्पन्न होती है। उसे पत्रिका में लिखी हुई वे पंक्तियाँ याद आती हैं जिनमें किसी लड़की ने प्रेम और मुक्ति की पुकार की थी- ''मुझे यहाँ से भगा ले चलो।'' अब उसे लगता है कि यह पुकार वास्तव में लक्ष्मी की ही है। वह सोचने लगता है कि क्या वह पहला व्यक्ति है जिसने इस पुकार को गंभीरता से सुना है या फिर पहले भी लोगों ने इसे सुनकर अनदेखा कर दिया है। इस प्रसंग में लक्ष्मी की दुखद स्थिति, रूपाराम का अंधविश्वास और गोविंद की संवेदनशील प्रतिक्रिया स्पष्ट रूप से सामने आती है।

10.7 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की समीक्षा

राजेन्द्र यादव की कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (1957) हिंदी साहित्य की 'नई कहानी' परंपरा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक रचना है। यह कहानी केवल एक पारिवारिक घटना का चित्रण नहीं करती, बल्कि मध्यमवर्गीय समाज की मानसिक संरचना, आर्थिक लालच, पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियों और अंधविश्वासों की गहरी परतों को उद्घाटित करती है। लेखक ने अत्यंत सहज भाषा में एक ऐसी त्रासदी को उकेरा है, जो बाहर से सामान्य दिखने वाले जीवन के भीतर छिपी अमानवीयता को उजागर करती है।

कहानी का केंद्र लाला रूपाराम का परिवार है जो आर्थिक रूप से समृद्ध होते हुए भी मानवीय मूल्यों के स्तर पर अत्यंत निर्धन है। रूपाराम का चरित्र उस मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें धन-संपत्ति के प्रति असीम मोह मनुष्य को संवेदनहीन बना देता है। वह अपनी बेटी लक्ष्मी को 'घर की लक्ष्मी' मानकर उसके अस्तित्व को एक वस्तु में बदल देता है। उसके लिए बेटी एक जीवित मनुष्य नहीं, बल्कि समृद्धि का प्रतीक बन जाती है। इसी सोच के कारण वह उसे घर में कैद कर देता है और उसके जीवन की सारी संभावनाओं को समाप्त कर देता है।

लक्ष्मी का चरित्र इस कहानी का सबसे मार्मिक और प्रभावशाली पक्ष है। वह एक ऐसी युवती है जो अपने स्वाभाविक जीवन, शिक्षा, प्रेम और स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित कर दी जाती है। उसकी पीड़ा प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आती, बल्कि संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से प्रकट होती है। गोविन्द के हाथ लगने वाली पत्रिका में चिन्हित पंक्तियाँ उसके अंतर्मन की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति बनकर उभरती हैं- ''मैं तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ। मुझे यहाँ से भगा ले चलो। मैं फांसी लगाकर मर जाऊँगी।''

इन पंक्तियों में लक्ष्मी का समूचा अस्तित्व बोल उठता है। यहाँ प्रेम केवल किसी व्यक्ति के प्रति आकर्षण नहीं, बल्कि उस कैद से मुक्ति का माध्यम है जिसमें वह वर्षों से जकड़ी हुई है। ''मुझे यहाँ से भगा ले चलो'' में उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा स्पष्ट है जबकि ''मैं फांसी लगाकर मर जाऊँगी'' उसके जीवन की उस अंतिम सीमा को दर्शाता है जहाँ निराशा अपने चरम पर पहुँच जाती है। कहानी में लक्ष्मी के मानसिक परिवर्तन का चित्रण अत्यंत यथार्थवादी ढंग से किया गया है। प्रारंभ में वह प्रतिरोध करती है, गुस्सा करती है, झगड़ती है, लेकिन धीरे-धीरे उसका यह प्रतिरोध टूटने लगता है और वह भीतर ही भीतर घुटने लगती है। यह घुटन अंततः मानसिक विक्षिप्तता का रूप ले लेती है। लेखक ने इस क्रमिक विघटन को बड़ी संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है- ''लक्ष्मी सोलह की हुई, सत्रह की हुई, अठारह, उन्नीस...साल पर साल बीत गए। पहले तो वह सबसे लड़ती थी। बड़ी चिड़चिड़ी और ज़िद्दी हो गई थी। कभी-कभी गाली देती और मार भी बैठती थी, फिर भी मालूम नहीं क्या हुआ कि घंटों रात-रात भर पड़ी ज़ोर-ज़ोर से रोती रहती, फिर धीरे-धीरे उसे दौरा पड़ने लगा...''

''अब क्या उम्र है?'' गोविंद ने बीच में पूछा।

''उसकी ठीक उम्र तो किसी को भी पता नहीं, लेकिन अंदाज से पच्चीस-छब्बीस से कम क्या होगी?''

इन पंक्तियों में समय का प्रवाह केवल आयु का संकेत नहीं देता, बल्कि यह दर्शाता है कि किस प्रकार एक युवती का संपूर्ण यौवन बिना किसी अनुभव, बिना किसी स्वतंत्रता के, एक बंद वातावरण में समाप्त हो जाता है। यह केवल शारीरिक कैद नहीं बल्कि मानसिक और भावनात्मक कैद भी है।

लाला रूपाराम का अंधविश्वास इस कहानी की त्रासदी का मूल कारण है। वह अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर यह मान बैठता है कि बेटी ही उसके धन का स्रोत है और उसके जाने से सब कुछ नष्ट हो जाएगा। यह धारणा धीरे-धीरे उसके भीतर भय का रूप ले लेती है और वह अपनी ही संतान के जीवन को नष्ट करने में संकोच नहीं करता। इस संदर्भ में कहानी का यह कथन अत्यंत सार्थक है- ''यह कहानी विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के बारे में नहीं, लक्ष्मी नाम की एक ऐसी लड़की के बारे में है जो अपनी क़ैद से छूटना चाहती है। इन दो नामो

में ऐसा भ्रम होना स्वाभाविक है जैसा कि कुछ क्षण के लिए गोविंद को हो गया था।''

यहाँ लेखक ने 'लक्ष्मी' के प्रतीक को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से तोड़ा है। समाज जिस 'लक्ष्मी' की पूजा करता है, उसी नाम की एक लड़की को वह कैद में रखता है। यह विडंबना ही कहानी का सबसे तीखा व्यंग्य है। कहानी में शिक्षा और स्वतंत्रता के अधिकार के हनन को भी बहुत मार्मिक रूप में दिखाया गया है। लक्ष्मी को स्कूल जाने से रोक दिया जाता है और उसे पूरी तरह घर में बंद कर दिया जाता है- ''उसे स्कूल से उठा लिया गया और वह दिन सो आज का दिन, बेचारी नीचे नहीं उतरी। घर के भीतर न किसी को आने देता है, न जाने देता है। मास्टर रखकर पढ़ाने की बात पहले उठी थी लेकिन जब सुना कि मास्टर लोग लड़कियों को बहकाकर भगा ले जाते हैं तो वह विचार एकदम छोड़ दिया गया। लक्ष्मी खूब रोई-पीटी, लेकिन इस राक्षस ने उसे भेजा ही नहीं लड़की देखने-दिखाने लायक़..'' यहाँ यह स्पष्ट होता है कि समाज में स्त्री की स्वतंत्रता को नियंत्रित करने के लिए किस प्रकार भय, संदेह और 'इज्जत' जैसे विचारों का सहारा लिया जाता है।

गोविन्द का चरित्र इस कहानी में एक संवेदनशील दृष्टा के रूप में उभरता है। वह लक्ष्मी की पीड़ा को समझता है, उससे प्रभावित होता है, लेकिन उसके भीतर भी एक द्वंद्व चलता रहता है। वह एक ओर लक्ष्मी की सहायता करना चाहता है तो दूसरी ओर अपने भविष्य और सामाजिक परिस्थितियों को लेकर चिंतित रहता है। उसका यह द्वंद्व उस पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो अन्याय को देखकर भी चुप रहता है।

अंततः यह कहानी एक गहरे सामाजिक प्रश्न को सामने रखती है—यदि समाज में व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ में डूबा रहे और अन्याय के विरुद्ध कोई आवाज न उठेतो उस समाज का भविष्य क्या होगा? लेखक का संकेत स्पष्ट है कि जहाँ मानवीय संवेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं, वहाँ संस्कृति और सभ्यता भी टिक नहीं सकती। मूलतः 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' केवल एक कहानी नहीं बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज़ है, जो यह दिखाता है कि अंधविश्वास, लालच और पितृसत्ता मिलकर किस प्रकार एक जीवन को नष्ट कर सकते हैं। लक्ष्मी की कैद एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समाज की मानसिक कैद का प्रतीक बन जाती है।

10.8 सारांश

समग्र रूप से देखा जाए तो राजेन्द्र यादव हिंदी कथा-साहित्य के उन प्रमुख रचनाकारों में हैं जिन्होंने कहानी को परंपरागत सीमाओं से बाहर निकालकर उसे आधुनिक जीवन की जटिलताओं से जोड़ा। नई कहानी आंदोलन के माध्यम से उन्होंने मनुष्य के आंतरिक संघर्ष, मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और बदलते सामाजिक संबंधों को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त किया। उनका लेखन रूढ़ सामाजिक मान्यताओं पर प्रश्न उठाने वाला तथा मानवीय संवेदनाओं को केंद्र में रखने वाला है।

उनकी प्रसिद्ध कहानी जहाँ लक्ष्मी कैद है के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता, आर्थिक स्वार्थ और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से सामने आता है। कहानी यह संकेत करती है कि जब समाज में धन और प्रतिष्ठा को मानवीय संबंधों से अधिक महत्व दिया जाता है तब व्यक्ति विशेषकर स्त्री का जीवन अनेक प्रकार की सीमाओं और बंधनों में घिर जाता है। लक्ष्मी का चरित्र ऐसी ही घुटनभरी परिस्थितियों में संघर्ष करती स्त्री की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बनकर उभरता है।

यह कहानी केवल एक पारिवारिक स्थिति का चित्रण नहीं करती, बल्कि समाज की उस सोच को भी उजागर करती है जो स्त्री की स्वतंत्रता और उसकी भावनाओं को सीमित कर देती है। राजेन्द्र यादव की यह रचना सामाजिक यथार्थ को सामने लाने के साथ-साथ पाठक को चिंतन के लिए भी प्रेरित करती है। इसलिए यह कहानी हिंदी की आधुनिक कथा-परंपरा में एक महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक कृति मानी जाती है।

K 10.9 प्रगति विवरण (केवल रुपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: राजेन्द्र यादव ने हिंदी कहानी को नई संवेदनशीलता, निर्भीकता और वैचारिक स्पष्टता प्रदान की। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र विचारों वाला, परंपराओं से प्रश्न करने वाला और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाला था। उन्होंने कहानी को किसी निर्धारित सिद्धांत या परंपरा के बंधन में स्वीकार नहीं किया बल्कि जीवन के यथार्थ अनुभवों को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया। उनकी कहानियों और उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज की कुंठाएँ, सामाजिक विषमताएँ, पारिवारिक तनाव तथा मनुष्य की आंतरिक विडंबनाएँ स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती हैं।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त 1929 को उत्तर प्रदेश के ऐतिहासिक नगर आगरा में हुआ था।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: राजेन्द्र यादव मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित थे।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: यह कथन राजेन्द्र यादव की है। ''लिखने में किसी का लिहाज मत करो। जो सही लगे वही लिखों पूरी ईमानदारी के साथ।''

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: राजेन्द्र यादव की तीन कहानी संग्रह के नाम हैं- रेखाएँ, लहरें और परछाइयाँ'।

5 10.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई: दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- यादव, राजेन्द्र (1995). जहाँ लक्ष्मी कैद है. नई दिल्ली: अक्षर प्रकाशन
- तिवारी, उषा (1996). आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य और राजेन्द्र यादव का कथा साहित्य. नई दिल्ली: सार्थक प्रकशन
- यादव, राजेन्द्र (2000). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन

M 10.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. राजेन्द्र यादव द्वारा रचित चार उपन्यासों के नाम लिखिए।
2. राजेंद्र प्रसाद द्वारा रचित कविता संग्रह का नाम लिखिए।
3. राजेन्द्र यादव द्वारा रचित पाँच आलोचनात्मक ग्रंथों का नाम लिखिए
4. संपादन और अनुवाद के क्षेत्र में राजेन्द्र यादव का योगदान पर संक्षिप्त लिखिए।
5. 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' के चार पात्रों का नाम लिखिए।

6. समकालीन शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. कहानीकार 'राजेन्द्र यादव' का परिचय विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. राजेन्द्र यादव की साहित्यिक यात्रा और सृजनात्मक विकास पर प्रकाश डालिए।
3. नई कहानी आन्दोलन और राजेन्द्र यादव का साहित्यिक दृष्टिकोण पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
4. 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिए।
5. 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की समीक्षा पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
6. 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी की प्रासंगिकता को विविध पक्षों के माध्यम से चर्चा कीजिए।

****

इकाई-11 'लाल पान की बेगम' (कहानीकार का परिचय, मूल कहानी, कहानी की समीक्षा)

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 कहानीकार 'फणीश्वरनाथ रेणु' का परिचय
11.4 फणीश्वरनाथ रेणु: व्यक्तित्व और जीवन दर्शन
11.5 'लाल पान की बेगम' कहानी का सार
11.6 'लाल पान की बेगम' कहानी की समीक्षा
11.7 सारांश
11.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
11.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
11.10 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन-परिचय एवं व्यक्तित्व के प्रमुख आयामों से परिचित होंगे।
- रेणु के जीवन-दर्शन तथा उनकी मानवीय और आंचलिक दृष्टि को समझ सकेंगे।
- उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियों और उनके महत्व के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- 'लाल पान की बेगम' कहानी के कथानक एवं मुख्य घटनाओं को जान सकेंगे।
- कहानी के पात्रों, विशेषत: बिरजू की माँ के चरित्र को समझने में सक्षम होंगे।
- कहानी की भाषा-शैली, आंचलिकता तथा सामाजिक यथार्थ से परिचित हो सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

फणीश्वरनाथ रेणुकी रचना 'लाल पान की बेगम' पर आधारित यह इकाई उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और साहित्यिक योगदान को समग्र रूप में समझने का अवसर प्रदान करती है। इस इकाई में रेणु के जीवन-परिचय के साथ उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं-जैसे जन-संवेदनशीलता, संघर्षशीलता और लोकजीवन के प्रति गहरा अनुराग-को रेखांकित किया गया है। उनका जीवन-दर्शन मानवीय मूल्यों, सामाजिक समानता और ग्रामीण संस्कृति के संरक्षण पर आधारित रहा, जो उनकी समस्त रचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

इकाई के अंतर्गत उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियों का परिचय देते हुए यह बताया गया है कि रेणु ने आंचलिकता को हिंदी कथा-साहित्य में नई ऊँचाई प्रदान की। उनकी भाषा, शैली और कथ्य में लोकजीवन की सजीवता और यथार्थ का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इसी क्रम में 'लाल पान की बेगम' कहानी को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है जिसमें एक ग्रामीण स्त्री के जीवन-संघर्ष, उसकी आकांक्षाओं और मानवीय भावनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है।

इस इकाई में कहानी का सार प्रस्तुत करते हुए उसके प्रमुख प्रसंगों को स्पष्ट किया गया है वहीं समीक्षा के माध्यम से कथा की भाषा, शैली, पात्र-चित्रण और सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण किया गया है। बिरजू की माँ का चरित्र स्त्री-शक्ति, आत्मसम्मान और संवेदनशीलता का प्रतीक बनकर उभरता है, जो इस कहानी की केन्द्रीय

शक्ति है। यह इकाई केवल एक कहानी का अध्ययन नहीं कराती, बल्कि रेणु के संपूर्ण साहित्यिक दृष्टिकोण, उनके आंचलिक यथार्थ और मानवीय सरोकारों को समझने का सशक्त माध्यम बनती है।

11.3 कहानीकार 'फणीश्वरनाथ रेणु' का परिचय

हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं, संघर्षों और सौंदर्य को जिस जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया, वह उन्हें विशिष्ट बनाता है। उनके लेखन में लोकजीवन की सहजता, भाषा की आंचलिकता और मनुष्य के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है। वे केवल कथाकार ही नहीं, बल्कि जनजीवन के सच्चे चित्रकार थे जिन्होंने समाज के उपेक्षित और हाशिये पर खड़े लोगों को अपनी रचनाओं के केंद्र में स्थान दिया।

रेणु जैसे बहुआयामी प्रतिभा से संपन्न रचनाकार के व्यक्तित्व को शब्दों में समेटना वास्तव में अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। उनके भीतर एक साथ कई रूप जीवित थे-कभी वे देहात की मिट्टी में रचे-बसे नजर आते हैं तो कभी शहरी संवेदनाओं से जुड़ते दिखाई देते हैं। वे रंगीन मिजाज भी थे और संकोची भी एक ओर धरती से गहरे जुड़े हुए तो दूसरी ओर बंजर भूमि में भी सौंदर्य और संभावनाओं के स्वप्न देखने वाले। कथाकार, कलाकार, पत्रकार और शब्दों के चित्रकार के रूप में वे जितने विविध थे उतने ही मानवीयता के पक्षधर भी-मानो उनका उद्देश्य मनुष्य के भीतर छिपे संवेदनशील इंसान को जागृत करना हो। इतने विभिन्न रूपों को एक ही व्यक्ति कैसे साध सकता है यही उनकी विशिष्टता थी। उनके लेखन से उनके जीवन और व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट मिलती है। आत्मपरिचय के संदर्भ में उनका यह कथन उल्लेखनीय है- ''अपने बारे में अथवा आत्म-परिचय देने वाले लेखों में, जहाँ भी मैंने किसी तथ्य को जरा भी तोड़ा-मरोड़ातो वे सभी लोग जो मुझे निकट से जानते हैं, मुझे कठोर शब्दों में कोसेंगे इसलिए मैंने अपने बारे में जब भी लिखा है, पूरी ईमानदारी और बेबाकी से लिखा है।'' यह स्पष्ट करता है कि उनके मित्रों और परिचितों का दायरा कितना व्यापक था-किसान, पहलवान, ठेकेदार, पत्रकार, साहित्यकार, शिक्षक, वकील, दुकानदार, क्रांतिकारी, यहाँ तक कि समाज के हाशिये पर खड़े लोग भी उनके जीवन का हिस्सा थे।

उनके व्यक्तित्व की जटिलता को व्यक्त करते हुए एक कल्पनात्मक टिप्पणी भी कही जाती है- ''यदि चित्रगुप्त को उनकी जीवन-कथा लिखनी पड़े तो उन्हें कभी अमृत मेंतो कभी विष में अपनी लेखनी डुबोनी होगी क्योंकि वे एक साथ देव और दानव, सुंदर और असुंदर, पापी और विवेकी, संत और दुरात्मा-सब कुछ थे।'' वास्तव मेंवे केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरे समाज का प्रतिबिंब थे। उनके भीतर के ये विरोधाभास समाज के अंतर्विरोधों का ही रूप थे, जिनकी झलक उनकी रचनाओं में भी मिलती है। उनका जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले के औराही-हिंगना गाँव में हुआ था। यह स्थान दो अलग-अलग टोलों-औराही और हिंगना-से मिलकर बना है। उनका वास्तविक नाम फणीश्वरनाथ मंडल था जबकि 'रेणु' उनका साहित्यिक नाम बना। नामकरण को लेकर एक रोचक कथा प्रचलित है कि जन्म के समय परिवार आर्थिक संकट में था इसलिए दादी उन्हें ''रिनुआ'' कहकर पुकारती थीं जो धीरे-धीरे परिवर्तित होकर 'रेणु' बन गया। हालांकि उन्होंने स्वयं इस नाम का श्रेय कृष्ण प्रसाद कोइराला को दिया है।

उनके दादा अमृत मंडल और पिता शिलानाथ मंडल थे। पिता एक जागरूक किसान थे, जिन्हें साहित्य और राजनीति में रुचि थी और वे चाहते थे कि उनके बच्चे भी शिक्षित हों। परंतु रेणु का मन औपचारिक पढ़ाई में कम लगता था; उन्हें अपनी दादी से लोककथाएँ सुनने में अधिक आनंद आता था। दादी के स्नेह और उनके द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियों ने उनके मन पर गहरा प्रभाव डाला। वे लिखते हैं- ''दादी शाम होते ही बच्चों को इकट्ठा करतीं और फिर शुरू होता था राजा-रानी, भूत-प्रेत और लोकगीतों का सिलसिला, जो लोरियों के साथ समाप्त होता था।'' यही कारण है कि उनके साहित्य में लोकजीवन की सहजता और गंध इतनी प्रबलता से उपस्थित है ।

परिवार और परिवेश को जीवन की पहली पाठशाला माना जाता है और रेणु इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। किसान परिवार में जन्म लेने के कारण उनका जुड़ाव खेती और ग्रामीण जीवन से गहरा था। वे स्वयं कहते हैं- ''यह कैसे संभव है कि बुवाई या कटाई के समय मैं गाँव न जाऊँ? बचपन में भी ऐसे अवसरों पर स्कूल छोड़कर खेतों की ओर भाग जाता था।'' यह मिट्टी से जुड़ाव उनके उपन्यासों और कहानियों में स्पष्ट झलकता है। उनके पिता का स्वभाव कठोर और अनुशासनप्रिय था जिससे बचने के लिए उन्हें कई बार छिपना या भागना भी पड़ा। इससे उनके भीतर एक प्रकार की विद्रोही प्रवृत्ति विकसित हुई। वहीं माँ और दादा-दादी के स्नेह ने उनके संवेदनशील व्यक्तित्व को आकार दिया। कोइराला परिवार के संपर्क में आने से उनके जीवन में अनुशासन, शालीनता और साहित्यिक रुचि का विस्तार हुआ।

भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा। बीमारी के दौरान उनकी देखभाल करने वाली लतिका देवी से उनका गहरा संबंध बना, जो उनके जीवन का महत्वपूर्ण अध्याय है। इस प्रकार उनके जीवन में व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर विविध अनुभव जुड़े रहे। उनका जीवन दो दुनियाओं के बीच चलता रहा—एक ओर गाँव और दूसरी ओर शहर। वे स्वयं कहते हैं- ''मुझे गाँव में शहर की याद आती है और शहर में गाँव की। गाँव मुझे शांति देता हैऔर वहीं मैं शहर की कहानियाँ लिख पाता हूँ।'' रेणु का व्यक्तित्व बहुआयामी, विरोधाभासी, फिर भी अत्यंत जीवंत और मानवीय था। उनका जीवन और साहित्य दोनों मिलकर उस समाज की सजीव तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिसमें विविधता, संघर्ष और संवेदना एक साथ विद्यमान हैं।

रेणु की प्रारम्भिक शिक्षा घर से ही आरम्भ हुई। उनके अध्ययन की जिम्मेदारी श्री कुसुम लाल मंडल ने संभाली, जो उन्हें घर पर पढ़ाते थे। आधारभूत ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्हें गढ़बनैली के प्राथमिक विद्यालय में भेजा गया किन्तु वहाँ उनका मन नहीं लगा। इसके बाद उन्होंने सिमरबनी और फारबिसगंज जैसे स्थानों पर शिक्षा ग्रहण की। इसी दौरान अपने पिता के मित्र डॉ. पूदो बाबू के परिवार के संपर्कमें आने से उन्होंने बंगला भाषा भी सीख ली। बचपन से ही वे अत्यंत मेधावी और प्रतिभाशाली थे, लेकिन पाठ्य पुस्तकों में उनकी विशेष रुचि नहीं थी। विशेषकर गणित विषय से उन्हें दूरी-सी महसूस होती थी। कई बार वे स्कूल से निकलकर गलियों में घूमते रहते, जिसके कारण उन्हें पिता की डांट भी सहनी पड़ती थी।

माध्यमिक शिक्षा के लिए उनका प्रवेश अररिया स्कूल में हुआ। वहीं उनका संपर्क रामकृष्ण मिशन के कार्यकर्ताओं से हुआ, जिनकी सेवा-भावना का उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव की झलक उनके उपन्यास ''कितने चौराहे'' में देखी जा सकती है। इसके बावजूद पढ़ाई में उनका मन स्थिर नहीं हो सका। पिता की बढ़ती कठोरता से व्यथित होकर वे घर छोड़कर निकल पड़े और संयोगवश श्री एवं श्रीमती कृष्णप्रसाद कोइराला के संपर्क में आए। कोइराला दंपत्ति ने उन्हें पुत्रवत स्नेह दिया और उनकी शिक्षा का दायित्व संभाला।

रेणु ने आगे की पढ़ाई कृष्णप्रसाद कोइराला द्वारा स्थापित आदर्श विद्यालय में की। अपने संस्मरण 'मेरा बचपन' में उन्होंने उल्लेख किया है कि उनका बचपन नेपाल के विराटनगर स्थित कोइराला निवास में बीता जहाँ उनका लालन-पालन हुआ। यह परिवार अत्यंत प्रतिष्ठित था और यहीं से उन्हें राजनीतिक चेतना के प्रारम्भिक संस्कार मिले। उन्होंने नेपाली भाषा पर भी अच्छी पकड़ बना ली। कोइराला निवास के समृद्ध पुस्तकालय और विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की साहित्यिक रुचि ने उनके भीतर सृजनात्मकता को जागृत किया।

उच्च शिक्षा के लिए वे कोइराला बंधुओं के साथ काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी पहुँचे। बनारस का वातावरण उनके व्यक्तित्व के विकास में निर्णायक सिद्ध हुआ। यद्यपि उनकी पढ़ाई में विशेष रुचि नहीं रही, परंतु वे राजनीति की ओर आकृष्ट होने लगे। इस दौरान वे आचार्य नरेंद्र देव, युसुफ मेहरअली, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी नेताओं तथा भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों के विचारों से गहराई से प्रभावित हुए। यहीं से उनके सक्रिय राजनीतिक जीवन की शुरुआत मानी जाती है, जो लगभग 1939 के आसपास प्रारम्भ हुई।

वे किसी एक राजनीतिक दल से बंधे नहीं थे, परंतु विभिन्न सभाओं और संगठनों में सक्रिय भागीदारी निभाते रहे। 1941 के सत्याग्रह आंदोलन में उन्होंने हिस्सा लिया और 1942 में गिरफ्तार भी किए गए। समाजवादी नेताओं के संपर्क ने उन्हें समाजवादी विचारधारा की ओर उन्मुख किया। उन्होंने छद्म नामों से लेखन भी आरम्भ किया और सतीनाथ भादुड़ी की रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण की। उन्होंने समाजवादी विचारों से प्रेरित एक हस्तलिखित पत्रिका का भी प्रकाशन किया। उनके कथा-साहित्य में उस समय के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का यथार्थ चित्रण इसी सक्रियता का परिणाम है।

स्वतंत्रता के बाद उनका ध्यान नेपाल में राणाशाही के विरुद्ध चल रहे जन आंदोलन की ओर गया, जिसका नेतृत्व विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला कर रहे थे। इस संघर्ष में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया और सशस्त्र भूमिका भी निभाई। वे राणाशाही के विरोध और लोकतंत्र के समर्थन में लगातार लेखन करते रहे, जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

राजनीति में उनकी रुचि समय के साथ और प्रबल होती गई। 1972 के विधानसभा चुनाव में उन्होंने स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में भाग लियाकिन्तु सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इसके बाद उन्होंने चुनावी राजनीति से दूरी बना ली परंतु सामाजिक और राजनीतिक सक्रियता में उनकी भागीदारी बनी रही। उनका मानना था कि राजनीति केवल चुनाव लड़ने तक सीमित नहीं है बिना चुनाव लड़े भी समाज के लिए कार्य किया जा सकता है। उनके साहित्य में सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना का सशक्त समन्वय देखने को मिलता है जिसमें गांधीवाद और समाजवाद दोनों की छाप स्पष्ट है।

बिहार आंदोलन में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने अनेक स्थानों पर भाषण दिए, जुलूसों का नेतृत्व किया और अनशन भी किया। वे समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे और उसी के अनुरूप राजनीतिक परिवर्तनों की अपेक्षा रखते थे। निरंतर संघर्षपूर्ण जीवन के कारण वे पेप्टिक अल्सर से पीड़ित हो गए। उपचार के लिए उन्हें पटना मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया, जहाँ वे लंबे समय तक जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष करते रहे। अंततः 11 अप्रैल 1977 को उनका निधन हो गया।

वे अक्सर कहा करते थे कि ''कोई जीतकर भी हार जाता है और मैं हारकर भी जीतूंगा।'' जीवन में उन्होंने कई बार मृत्यु का सामना किया और हर बार विजयी हुए परंतु अंतिम बार वे जीवन की इस लड़ाई में पराजित हो गए। फिर भी उनके विचार, उनका साहित्य और उनकी संघर्षशील चेतना आज भी उन्हें एक विजेता के रूप में स्थापित करती है।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्य की प्रमुख विशेषता क्या है?

प्रश्न 2. रेणु का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न 3. ''यह कैसे संभव है कि बुवाई या कटाई के समय मैं गाँव न जाऊँ? बचपन में भी ऐसे अवसरों पर स्कूल छोड़कर खेतों की ओर भाग जाता था।''-यह कथन किसका है?

प्रश्न 4. रेणु को किस कारण जेल जाना पड़ा?

प्रश्न 5. रेणु का निधन कब हुआ?

11.4 फणीश्वरनाथ रेणुः व्यक्तित्व और जीवन दर्शन

रेणु का व्यक्तित्व अपने भीतर एक विशिष्ट कलात्मक गरिमा समेटे हुए था। उनके लंबे, हल्के झूलते बाल और चेहरे पर खिली संकोची-सी मुस्कान उनके स्वभाव की सहजता और सौम्यता को प्रकट करती थी। उनमें एक प्रकार की जन्मजात अभिजात्यता थीजो किसी सामाजिक वर्ग से नहीं बल्कि उनके संस्कारों से उपजी थी।

यह गरिमा उनके पूरे व्यक्तित्व में एक स्वाभाविक सौंदर्य की तरह व्याप्त थी। वे कम बोलते थे, छोटे-छोटे वाक्यों में अपनी बात रखते और फिर संकोचवश मुस्कुरा देते। उनके व्यक्तित्व का हल्कापन भी विशिष्ट था-ऐसा हल्कापन, जो गहरे अनुभवों और आंतरिक पीड़ा से गुजरकर विकसित हुआ था। वे अपनी पीड़ा का प्रदर्शन नहीं करते थे बल्कि उसे अपनी विनम्रता में छिपाए रखते थे।

उनके स्वभाव में जितनी कोमलता थी उतनी ही दृढ़ता भी विद्यमान थी। अन्याय और शोषण के विरुद्ध वे खुलकर खड़े हो जाते थे। इसी कारण उन्हें जेल की सज़ा भी भुगतनी पड़ी। उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मश्री सम्मान प्रदान किया गया परंतु सरकारी नीतियों के विरोध में उन्होंने उसे लौटा दिया। बिहार सरकार से मिलने वाली आर्थिक सहायता को भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया। जीवन भर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने के बावजूद वे कभी निराश नहीं हुए।

जीविका के लिए उन्होंने विभिन्न कार्य किए-कभी पुस्तकालय में सेवा दी जो वस्तुतः एक निःस्वार्थ योगदान था; कभी होटल प्रबंधक के रूप में काम किया; और बाद में आकाशवाणी में सहायक निर्माता के पद पर भी कार्यरत रहे। हालांकि यह नौकरी उन्हें प्रिय थी, फिर भी लेखन के लिए समय न मिल पाने के कारण उन्होंने उसे छोड़ दिया। इसके बाद उनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होने लगीं।

रेणु अत्यंत जीवंत और जीवन-प्रेमी व्यक्ति थे। उन्हें प्रकृति की सुंदरता-फूल, पत्तियाँ, हवा, बादल-से लेकर संगीत, भोजन, वस्त्र और साज-सज्जा तक हर चीज़ से लगाव था। वे कपड़ों पर इत्र लगाना पसंद करते थे, अच्छा भोजन बनाना जानते थे और मित्रों के साथ बैठकर भोजन करना उन्हें अत्यंत प्रिय था। मिठाइयों के प्रति विशेष रुचि थी और आम उनका प्रिय फल था। खान-पान में वे किसी प्रकार का विशेष संयम नहीं रखते थे हालांकि बाद में स्वास्थ्य समस्याओं के कारण उन्हें कई आदतें छोड़नी पड़ीं।

उनका मन सदैव आम आदमी के साथ जुड़ा रहा। वे जो देखते, सोचते और अनुभव करते, वही अपने लेखन में उतारते थे। उनका विश्वास था कि आदर्श और यथार्थ एक-दूसरे से पृथक नहीं हो सकते। वे जीवन मूल्यों की स्थापना के पक्षधर थे और उनके लेखन में आशा का स्वर सदैव उपस्थित रहता था। उनका व्यक्तित्व समन्वयकारी और प्रगतिशील था-एक ओर वे समर्पित थेतो दूसरी ओर विद्रोही भी। वे अपने संकल्पों के प्रति अडिग रहते और जो ठान लेते, उसे पूरा करके ही मानते। उन्होंने समाज और साहित्य की कई रूढ़ियों को तोड़ा परंतु बिना किसी आडंबर के। वे ऐसे साहित्यकार थे, जो निजी जीवन और व्यापक समाज के बीच सेतु का कार्य करते थे। साधारण जन-मजदूर, किसान, रिक्शाचालक-से सहज संवाद करने वाले रेणु को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि वही व्यक्ति बौद्धिक चर्चाओं में भी उतनी ही दक्षता से भाग लेता है।

आर्थिक दृष्टि से उनका जीवन संघर्षपूर्ण रहा। अपनी प्रसिद्ध कृति के प्रकाशन हेतु उन्हें अपनी संपत्ति तक गिरवी रखनी पड़ी। जीवन के अंतिम समय तक वे गरीबी और बीमारी से जूझते रहे, परंतु कभी झुके नहीं। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था कि उन्होंने जीवन में सुख-दुख दोनों की चरम सीमाएँ देखी हैं और अब कोई आकांक्षा शेष नहीं रही। रेणु स्वभाव से संवेदनशील, सजग और महत्वाकांक्षी थे। ग्रामीण परिवेश से गहरे जुड़े होने के कारण उनके भीतर लोकजीवन की गहरी समझ थी। उन्हें लोकगीत, लोककथाएँ और लोकसंस्कृति के विविध रूपों का व्यापक ज्ञान था। वे घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे और जीवन के विविध रंगों को अनुभव कर उन्हें शब्दों में ढालने की अद्भुत क्षमता रखते थे। दिनभर लोगों के बीच रहकर अनुभवों को संजोते और रात में उन्हें लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त करते।

उनकी रचनाओं में जीवन का यथार्थ अपनी संपूर्णता में उपस्थित है-सौंदर्य और कुरूपता, सुख और दुख, सब कुछ। उन्होंने अपने साहित्य में किसी भी पक्ष से मुँह नहीं मोड़ा। उनका उद्देश्य मानव जीवन के विविध पहलुओं को सामने लाकर समाज को आत्मबोध कराना था ताकि व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बना सके। फणीश्वरनाथ रेणु बहुआयामी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी प्रमुख विधाओं में

अपनी रचनात्मक उपस्थिति दर्ज कराई। आरंभिक दौर में उनकी अभिलाषा कवि बनने की थी और उनकी कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं, किंतु उनका कोई स्वतंत्र काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका। कविता के क्षेत्र में अपेक्षित सफलता न मिलने पर उन्होंने कथा-साहित्य की ओर रुख किया। परिणामस्वरूप उन्होंने हिंदी साहित्य को कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण और कालजयी कृतियाँ प्रदान कीं। इसके साथ ही वे समय-समय पर रिपोर्ताज, निबंध, संस्मरण, स्केच, हास्य-व्यंग्य, नाटक और पटकथा लेखन में भी सक्रिय रहे। उन्होंने न केवल कहानी और उपन्यास को नवीन शिल्प दिया, बल्कि रिपोर्ताज विधा को भी नई सजीवता और ऊर्जा प्रदान की।

उनके जीवनकाल में प्रकाशित प्रमुख कृतियों में मैला आँचल (1954), परती परिकथा (1957), ठुमरी (1959), दीर्घतपा (1964, जो बाद में कलंक मुक्ति नाम से 1972 में प्रकाशित हुई), जुलूस (1965), कितने चौराहे (1966), आदिम रात्रि की महक (1967) तथा अग्निखोर (1972) विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके निधन के पश्चात एक आदमी की रिपोर्टाज तथा नेपाली क्रांतिकथा (दोनों 1977) प्रकाशित हुईं। उनका अधूरा उपन्यास पट्टू बाबू रोड बाद में 1979 में प्रकाशित किया गया। इसके अतिरिक्त भारत यायावर के संपादन में वन तुलसी की गंध, एक श्रावणी दोपहरी की धूप, अच्छे आदमी, कवि रेणु कहे आदि अनेक संकलन प्रकाशित हुए। बाद में उनकी समस्त रचनाओं को पाँच खंडों में रेणु रचनावली के रूप में प्रकाशित किया गया।

रेणु ने चुनावी राजनीति का भी अनुभव किया, किंतु चुनाव हारने के बाद वे ''कागज़ की नाव'' नामक उपन्यास लिखना चाहते थे, जो पूर्ण न हो सका। इसी प्रकार ''तपेद हाथी'' नामक एक अन्य उपन्यास भी लगभग तैयार होने के बावजूद पांडुलिपि चोरी हो जाने के कारण प्रकाशित नहीं हो पाया। यद्यपि उनकी रचनाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है फिर भी उनकी गुणवत्ता अत्यंत उच्च कोटि की है। उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को एक नई दिशा दी, जिसमें आंचलिकता, यथार्थबोध और गहरी संवेदनशीलता का समन्वय मिलता है। रेणु के पात्र प्राय: शोषित, पीड़ित और वंचित वर्ग से आते हैं। वे जीवन की कठिन परिस्थितियों से जूझते अवश्य हैं किंतु उनमें हताशा या कुंठा नहीं होती। उनके संवादों में चुटीलापन और स्थानीय भाषा का माधुर्य उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाता है।

उनकी पहली कहानी ''बटबाबा'' 1945 में प्रकाशित हुई। उनके जीवनकाल में तीन तथा मृत्यु के बाद दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए-ठुमरी (1959), आदिम रात्रि की महक (1967), अग्निखोर (1973), एक श्रावणी दोपहरी की धूप (1984) और अच्छे आदमी (1986)। इन संग्रहों के अतिरिक्त अन्य कहानियाँ भी रचनावली में संकलित हैं। कुल मिलाकर उनकी कहानियों की संख्या भले ही अधिक न हो परंतु उनकी विशिष्टता निर्विवाद है। उनकी कहानियों का मूल स्वर मनुष्य की खोज है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी रचनाएँ दरअसल मनुष्य और उसकी संवेदना की तलाश हैं। उनकी महत्वपूर्ण कहानियों में ''पंचलाइट'', ''तीसरी कसम'', ''लाल पान की बेगम'', ''ठेस'', ''तीर्थोदक'', ''नैना जोगिन'' आदि शामिल हैं।

रेणु मूलत: ग्रामीण जीवन के सूक्ष्म पर्यवेक्षक थे। उन्होंने गाँवों के बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है। साथ ही उन्होंने शहरी मध्यवर्गीय जीवन को भी अपनी कहानियों में स्थान दिया। उनके कथा-साहित्य में सामान्य जनजीवन, विशेष रूप से स्त्रियों की पीड़ा, शोषण और संघर्ष की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। वे एक ओर जनजीवन की त्रासदी को चित्रित करते हैं तो दूसरी ओर अभिजात वर्ग की कृत्रिमता और पाखंड को उजागर करते हैं।

लोक-संस्कृति के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। उनकी कई कहानियाँ लोकजीवन, लोककला और लोकविश्वासों पर आधारित हैं। ''रेखाएँ: वृत्तचक्र'' और ''भित्तिचित्र की मयूरी'' में लोक कलाकारों के शोषण तथा बाज़ारवादी मानसिकता के हस्तक्षेप को उन्होंने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। ''ठेस'' जैसी कहानी मानवीय संवेदनाओं को झकझोरती है, जबकि ''तीसरी कसम'' और ''लाल पान की बेगम'' में लोकजीवन की

सहजता और सौंदर्य का अद्भुत चित्रण मिलता है।

राजनीति से जुड़े रहने के बावजूद उन्होंने राजनीति को केंद्र में रखकर अपेक्षाकृत कम कहानियाँ लिखीं। ''जलवा'', ''आत्मसाक्षी'' और ''पुरानी कहानी: नया पाठ'' में उन्होंने अवसरवादी राजनीति और नेताओं के दोहरे चरित्र पर तीखा व्यंग्य किया है। इन रचनाओं में स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक विडंबनाओं का सजीव चित्रण मिलता है। रेणु की कहानियों के पात्र—जैसे हिरामन, हीराबाई, बिरजू की माँ, पंचकोड़ी मिरदंगिया आदि- अपनी संवेदनशीलता और जीवंतता के कारण पाठकों के मन में स्थायी रूप से बस जाते हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी ये पात्र मानवीय मूल्यों को जीवित रखते हैं। भाषा की दृष्टि से भी रेणु का योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी रचनाओं में बोलचाल की भाषा, आंचलिक शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग किया है। इससे उनके पात्र अधिक सजीव और यथार्थपूर्ण बन जाते हैं। यदि उनके पात्र शुद्ध साहित्यिक भाषा में बोलते, तो उनकी स्वाभाविकता समाप्त हो जाती।

समग्रत: कहा जा सकता है कि रेणु का कथा-साहित्य भारतीय जनजीवन, लोक-संस्कृति, सामाजिक विषमताओं और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त दस्तावेज है। उनकी रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए भी अत्यंत उपयोगी हैं। फणीश्वर नाथ रेणु ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में सृजन किया, कविता को छोड़कर अन्य सभी रूपों में उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की। उनके व्यक्तित्व, शिल्प और भाषा-शैली की ऐसी छाप पड़ी कि वह पाठकों के मन में स्थायी रूप से अंकित हो गई। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में उन्हें जितनी ख्याति मिली, उतनी ही सफलता उन्होंने रिपोर्ताज और संस्मरण लेखन में भी अर्जित की। उनके निबंधों और रिपोर्टों में निष्पक्षता और तटस्थता का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

रेणु के अधिकांश रिपोर्ताज उस समय की छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे, परंतु उन्होंने स्वयं उनका कोई व्यवस्थित संकलन तैयार नहीं किया। परिणामस्वरूप, उनके कुछ रिपोर्ताज आज उपलब्ध नहीं हैं, जबकि कुछ बाद में पुस्तकरूप में सामने आए-जैसे ''ऋणजल-धानजल'' (1977), ''नेपाली क्रांति कथा'' (1977) और ''एकांकी के दृश्य'' (1986)। ''श्रुत-अश्रुत पूर्व'' (1984) में निबंधों और संस्मरणों के साथ कुछ रिपोर्ताज भी संकलित हैं। भारत यायावर द्वारा संपादित ''वन तुलसी की गंध'' में उनके संस्मरणों और रेखाचित्रों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है।

रिपोर्ताज लेखन में रेणु की सफलता असाधारण कही जा सकती है। इसके पीछे कई कारण थेवे एक सजग पत्रकार थे, घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे गहरे संवेदनशील साहित्यकार थे और लोकजीवन के सूक्ष्म पर्यवेक्षक भी। उनके भीतर मानवीय संवेदना कूट-कूटकर भरी थी। धरती, मनुष्य और जीवन के प्रति उनके भीतर गहरा अनुराग, करुणा और आत्मीयता थी। वे जो कुछ लिखते थे, उसमें पूरी तरह डूबकर लिखते थे, इसलिए उनके रिपोर्ताज कभी नीरस नहीं लगते वे अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

उनके रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत को लेकर मतभेद मिलते हैं। कुछ विद्वान ''विदापद नाच'' (1945) को आरंभिक रचना मानते हैं तो कुछ ''डायन कोशी'' को पहला रिपोर्ताज बताते हैं। स्वयं रेणु ने ''जय गंगा'' (1947) को अपनी प्रथम रिपोर्ताज रचना माना है। रेणु के रिपोर्ताजों को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। कुछ रचनाएँ कहानी का आभास देती हैं, जैसे- ''हड्डियों का पुल'', ''नए सवेरे की आशा'', ''जीत का स्वाद'' आदि। ''नेपाली क्रांति कथा'' विशिष्ट शैली में लिखी गई है जबकि ''सरहद के उस पार'' और ''एकलव्य के नोट्स'' रिपोर्टनुमा प्रतीत होते हैं। ''समय की शिला पर सिलाव का आघात'' और ''भूमिदर्शन की भूमिका'' डायरी शैली में लिखे गए हैं। इसी प्रकार ''युद्ध की डायरी'' और ''पटनाजल प्रलय'' भी डायरी शैली के उदाहरण हैं। कुछ रचनाएँ संस्मरणात्मक हैं, जैसे ''तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन''।

रेणु की लेखन शैली के बारे में कहा गया है कि वे जैसे सोचते थे वैसा ही बोलते थे और जैसा बोलते थे, वैसा ही लिखते थे। उनके लेखन को पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है मानो वे स्वयं पाठक से संवाद कर रहे हों। उनकी अवलोकन शक्ति अत्यंत तीव्र थी। बाढ़, अकाल और सूखे जैसी परिस्थितियों को उन्होंने स्वयं अनुभव किया था इसलिए मानव पीड़ा का चित्रण उनके यहाँ अत्यंत मार्मिक रूप में मिलता है। साथ ही उनके लेखन में हास्य और व्यंग्य का संतुलित समावेश भी मिलता है। उनके रिपोर्ताजों में लोकजीवन की झलक, लोकगीतों का प्रयोग और ग्रामीण परिवेश की गंध सहज रूप से उपस्थित रहती है, जिससे उनकी रचनाएँ अधिक जीवंत और प्रभावशाली बन जाती हैं। ''नेपाली क्रांति कथा'' में नेपाल की राजनीतिक क्रांति, भारत की भूमिका और दोनों देशों के संबंधों का सजीव चित्रण मिलता है। ''श्रुत-अश्रुत पूर्व'' में बांग्लादेश मुक्ति संग्राम का संदर्भ है जबकि ''युद्ध की डायरी'' में 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान उनकी मन:स्थिति का चित्रण मिलता है।

''एकलव्य के नोट्स'' में ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्तनों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा गया है, जबकि ''रस के बस में चार रात'' में रामकृष्ण मिशन के प्रति उनकी श्रद्धा व्यक्त होती है। 1965 से 1967 के बीच उन्होंने ''दिनमान'' पत्रिका के लिए संवाददाता के रूप में कार्य किया और उनकी कई महत्वपूर्ण रिपोर्टें बाद में ''एकांकी के दृश्य'' में संकलित हुई।

रेणु ने अपनी रिपोर्टों में सामाजिक विसंगतियों, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक भ्रष्टाचार और अन्यायपूर्ण शक्तियों को बेनकाब किया। वे मानते थे कि लेखन समाज को प्रभावित करता है, इसलिए किसी भी विषय पर लिखने से पहले वे उसका गहराई से परीक्षण करते थे। उनकी पत्रकारिता जनपक्षधरता से जुड़ी हुई थी और उनके लेखन में एक निर्भीक और सजग पत्रकार की स्पष्ट झलक मिलती है। उनकी टिप्पणियाँ और रिपोर्ताज पाठक को सोचने के लिए बाध्य करते हैं और उनमें कहानी जैसा रस भी अनुभव होता है।

11.5 'लाल पान की बेगम' कहानी का सार

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन को उसकी संपूर्ण जीवंतता, जटिलता और मानवीय संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कहानियों में गाँव का परिवेश, लोकभाषा, छोटे-छोटे सुख-दुख, आपसी रिश्ते और सामाजिक विडंबनाएँ बहुत स्वाभाविक रूप में उभरती हैं। 'लाल पान की बेगम' उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कहानियों में से एक है, जिसमें एक साधारण ग्रामीण स्त्री के मनोविज्ञान को अत्यंत सूक्ष्मता और यथार्थ के साथ चित्रित किया गया है। यह कहानी केवल नाच देखने जाने की घटना तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से स्त्री के आत्मसम्मान, सामाजिक प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, आकांक्षाओं और अंतत: संतोष की भावना को उजागर किया गया है।

कहानी की शुरुआत एक सामान्य ग्रामीण दृश्य से होती है परंतु उसके भीतर गहरी मनोवैज्ञानिक हलचल छिपी है। बिरजू की माँ अपने आँगन में बैठी शकरकंद उबाल रही है, लेकिन उसका मन भीतर से अशांत है। उसका गुस्सा किसी एक कारण से नहीं बल्कि कई छोटे-छोटे कारणों के मिलेजुले प्रभाव से पैदा हुआ है। उसका सात वर्ष का बेटा बिरजू शरारत करता है और माँ के हाथों मार खाता है। बेटी चंपिया अभी तक दुकान से नहीं लौटी है, जबकि संध्या का समय हो चुका है। बागड़ बकरा भी उधम मचा रहा है। इन सब कारणों से उसका चिड़चिड़ापन बढ़ता जा रहा है।

लेकिन इन बाहरी कारणों के पीछे एक गहरी वजह है-आज बलरामपुर में नाच होने वाला है और उसने कई दिनों से इस नाच को देखने का सपना संजो रखा है। उसके पति ने वादा किया था कि वे बैलगाड़ी पर बैठाकर उसे नाच दिखाने ले जाएँगे। इस आशा ने उसके मन में उत्साह भर दिया था और उसने गाँव भर में इस बात का उल्लेख भी कर दिया था। अब जब समय बीत रहा है और उसका पति गाड़ी लेकर नहीं लौटा हैतो उसे अपमान और निराशा का भय सताने लगता है।

इसी बीच पड़ोस की मखनी फुआ उसे पुकारकर पूछती है कि क्या वह नाच देखने नहीं जाएगी। यह सवाल बिरजू की माँ के दिल पर तीर की तरह लगता है। वह व्यंग्य में जवाब देती है कि अगर उसके पास सब साधन होते तो अवश्य जाती। इस पर मखनी फुआ अन्य औरतों के सामने उसकी स्थिति का मजाक उड़ाती है। जंगी की पुतोहू भी कटाक्ष करती है और इशारों-इशारों में यह बताती है कि यदि बिरजू की माँ ने अधिकारियों को खुश किया होता, तो उसके पास और भी जमीन-जायदाद होती।

इन तानों से बिरजू की माँ का मन और अधिक आहत हो जाता है। वह भीतर ही भीतर जलने लगती है, लेकिन खुलकर जवाब नहीं दे पाती। वह अपनी बेटी चंपिया को डाँटती है, बेटे बिरजू को झिड़कती है और हर छोटी बात पर गुस्सा निकालती है। दरअसल, यह गुस्सा उसकी असफल होती उम्मीदों का परिणाम है। चंपिया के लौटने पर भी उसे डाँट पड़ती है। वह गुड़ लाने में देर कर देती है, और माँ उसे भी संदेह की दृष्टि से देखती है कि कहीं वह लड़कियों के साथ गाना-बजाना सीखने तो नहीं चली गई थी। इस तरह घर का वातावरण तनावपूर्ण बना रहता है। बिरजू भी थोड़ी मिठास पाने के लिए गुड़ माँगता है पर उसे भी डाँट मिलती है।

धीरे-धीरे शाम ढल जाती है और नाच देखने जाने की उम्मीद क्षीण होने लगती है। बिरजू और चंपिया दोनों निराश हो जाते हैं। वे कल्पना करते हैं कि गाँव के बाकी लोग नाच देखने जा रहे होंगे और वे पीछे रह जाएँगे। बिरजू की माँ भी अब यह मान लेती है कि उसका जाना संभव नहीं है। वह अपने पति को कोसती है और अपने भाग्य को दोष देती है। इस बीच कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ आता है। देर रात बैलों की घंटियों की आवाज सुनाई देती है। पहले तो उन्हें विश्वास नहीं होता लेकिन फिर स्पष्ट हो जाता है कि बिरजू के पिता बैलगाड़ी लेकर लौट आए हैं। वे खेत से धान की बालियाँ भी लाते हैं और बताते हैं कि नाच अभी शुरू नहीं हुआ है।

धान की बालियाँ देखकर बिरजू की माँ का मन बदल जाता है। वह प्रसन्न हो उठती है और उसका सारा गुस्सा शांत हो जाता है। अब वह जल्दी-जल्दी खाना बनाने में लग जाती है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि उसकी नाराज़गी का मूल कारण प्रेम और अपेक्षा था जो अब पूरी होने जा रही है। इसके बाद वे सब नाच देखने के लिए तैयार होते हैं। रास्ते में बिरजू की माँ उन औरतों को भी साथ ले लेती है जो किसी कारणवश नहीं जा पा रही थीं जैसे जंगी की पुतोहू। यह उसका उदार और सहृदय रूप है। पहले जिनसे उसका विवाद हुआ था अब उन्हीं को साथ ले जाना उसके मन के बदलाव को दर्शाता है।

बैलगाड़ी में बैठकर वे लोग चाँदनी रात में यात्रा करते हैं। चारों ओर धान के खेत, ठंडी हवा और प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत दृश्य है। इस वातावरण में सभी के मन में उल्लास भर जाता है। लड़कियाँ गीत गाने लगती हैं और पूरा माहौल आनंदमय हो उठता है। इस समय बिरजू की माँ के मन में एक विशेष परिवर्तन आता है। वह अपने आप को सजी-धजी, सम्मानित और प्रसन्न स्त्री के रूप में अनुभव करती है। उसे लगता है कि वह सचमुच ''लाल पान की बेगम'' है-अर्थात् अपने छोटे-से संसार में खुश, आत्मनिर्भर और गरिमामयी स्त्री। अब उसके मन में कोई शिकायत या दुख नहीं रह जाता। वह पूरी तरह वर्तमान क्षण का आनंद ले रही है। यह कहानी का चरम बिंदु है जहाँ एक साधारण स्त्री अपनी छोटी-सी खुशी में संपूर्ण संतोष प्राप्त कर लेती है।

यह कहानी ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों को उजागर करती है, जहाँ छोटी-छोटी इच्छाएँ और सामाजिक मान-अपमान व्यक्ति के मन को गहराई से प्रभावित करते हैं। बिरजू की माँ के माध्यम से यह दिखाया गया है कि मनुष्य का सुख बाहरी वस्तुओं में नहीं, बल्कि उसके दृष्टिकोण और संतोष में निहित है। 'लाल पान की बेगम' केवल एक नाच देखने की कहानी नहीं बल्कि मानवीय भावनाओं, स्त्री-मन और ग्रामीण समाज की जटिलताओं का सजीव चित्रण है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

फणीश्वरनाथ रेणु की 'लाल पान की बेगम' की भाषा आंचलिक जीवन की सजीव अभिव्यक्ति है। इसमें

पूर्णिया क्षेत्र की ग्रामीण संस्कृति, लोकजीवन और बोलियों का स्वाभाविक समावेश मिलता है, जिसमें मैथिली का हल्का प्रभाव भी झलकता है। कहानी की भाषा अत्यंत सरल, सहज और पात्रानुकूल है, जिससे संवाद बिल्कुल वास्तविक प्रतीत होते हैं। पात्र जिस सामाजिक परिवेश से जुड़े हैं, उसी के अनुरूप उनकी वाणी ढलती है, इसलिए कथानक में कृत्रिमता नहीं आती। लोक-प्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भाषा को प्रभावशाली बनाता है और उसमें गहराई जोड़ता है। साथ ही, वर्णन शैली इतनी चित्रात्मक है कि पाठक के सामने पूरे दृश्य सजीव हो उठते हैं। लेखक ने कई स्थानों पर संकेत और व्यंग्य के माध्यम से भाव व्यक्त किए हैं जिससे अभिव्यक्ति और भी अर्थपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार, यह भाषा केवल कथन का माध्यम नहीं, बल्कि पूरे ग्रामीण वातावरण को जीवंत करने का सशक्त साधन है।

11.6 'लाल पान की बेगम' कहानी की समीक्षा

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के ऐसे कथाकार हैं जिनका रचना-संसार एक मील का पत्थर माना जाता है। उन्होंने अपने कथा-कर्म के माध्यम से ग्रामीण जीवन को उसकी संपूर्ण जीवंतता, जटिलता और यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज का दर्पण हैं जिनमें तत्कालीन जीवन की सच्चाइयाँ, संघर्ष और मानवीय भावनाएँ सजीव रूप में उभरती हैं। 'लाल पान की बेगम' उनकी ऐसी ही प्रमुख कहानी है, जो स्त्री-जीवन के अनेक आयामों को सामने लाती है। यह कहानी मूलत: एक स्त्री-बिरजू की माँ-के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसमें उसके व्यक्तित्व के विविध रूप उभरकर सामने आते हैं-कहीं वह संघर्षशील पत्नी है, कहीं पति को दिशा देने वाली सहधर्मिणी, कहीं झगड़ालू पड़ोसिन, तो कहीं ममतामयी माँ। अंतत: वही स्त्री सभी को साथ लेकर चलने वाली शक्ति के रूप में उभरती है और सच अर्थों में ''लाल पान की बेगम'' बन जाती है।

कहानी का सामाजिक आधार जमींदारी उन्मूलन और सर्वे-सेटलमेंट की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। यह वह समय था जब भूमिहीन किसानों को पहली बार जमीन मिलने की संभावना बनी। इस परिवर्तन ने ग्रामीण समाज में एक नई चेतना जगाई, लेकिन इसके साथ संघर्ष और भय भी जुड़े रहे। कहानी में यह स्थिति अत्यंत यथार्थ रूप में व्यक्त होती है, जब बिरजू के पिता गाँव के लोगों को समझाते हैं- ''ज़िंदगी भर मज़दूरी करते रह जाओगे... सर्वे का समय आ रहा है, लाठीकड़ी करो तो दो-चार बीघे ज़मीन हासिल कर सकते हो।'' यह कथन केवल प्रेरणा नहीं बल्कि उस समय के किसान जीवन की सच्चाई का दर्पण है। यहाँ बिरजू की माँ का चरित्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वही अपने पति को डगमगाने नहीं देती। जब उसका पति भयभीत होकर पीछे हटना चाहता है तब वह उसे दृढ़ता से प्रेरित करती है- ''जोरू-जमीनज़ोर के, नहीं तो किसी और के।'' यह संवाद उसकी व्यावहारिक बुद्धि, साहस और संघर्षशीलता का प्रमाण है। वह केवल घरेलू स्त्री नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय भागीदार है।''

कहानी की शुरुआत ही उसके क्रोध से होती है। मखनी फुआ का साधारण-सा प्रश्न-''क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जाएगी क्या?'' उसके भीतर के आक्रोश को भड़का देता है। वह उत्तर देती है- ''बिरजू की माँ के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न फुआ?'' यह उत्तर उसके आत्मसम्मान की तीखी अभिव्यक्ति है। वास्तव में, नाच देखने जाना उसके लिए केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका है। उसने पूरे गाँव में यह बात फैला दी थी कि वह बैलगाड़ी पर बैठकर नाच देखने जाएगी, इसलिए अब उसका न जाना उसके लिए अपमान का कारण बन सकता है। यही कारण है कि उसका गुस्सा बच्चों पर उतरता है, वह चंपिया को डाँटती है, बिरजू को मारती है और छोटी-छोटी बातों पर भड़क उठती है।

रेणु ने यहाँ स्त्री-मन की जटिलता को बहुत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। बिरजू की माँ केवल क्रोधी नहीं है बल्कि उसके भीतर असुरक्षा, ईर्ष्या और सामाजिक दबाव भी है। गाँव की औरतें उससे जलती हैं क्योंकि उसके पास अपनी जमीन है और उसका पति उसकी बात मानता है। यह जलन अफवाहों के रूप में सामने आती

है- ''चंपिया की माँ के आँगन में रात-रात भर बिजली-बत्ती भुकभुकाती थी...'' यह कथन ग्रामीण समाज की उस मानसिकता को उजागर करता है जिसमें किसी की उन्नति को स्वीकार करने के बजाय उस पर संदेह किया जाता है।

जंगी की पुतोहू का तीखा व्यंग्य- ''फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहन के तू भी भेंटी चढ़ाती...'' उसकी निर्भीकता और सामाजिक कटाक्ष को प्रकट करता है। यह संवाद पात्रों को जीवंत बनाता है और यह भी दर्शाता है कि ग्रामीण जीवन में ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा कितनी गहराई तक व्याप्त है। इन सबके बीच बिरजू की माँ का ममतामयी रूप भी सामने आता है। वह बच्चों को डाँटती है, लेकिन उनके प्रति उसका स्नेह अटूट है। जब बिरजू नया धान खा लेता है, तो वह उसे डाँटती है- ''नवान्न के पहले ही नया धान जुठा दिया...'' यह केवल क्रोध नहीं, बल्कि परंपरा और आस्था का प्रतीक है। किसान जीवन में नई फसल का विशेष महत्व होता है और उससे जुड़ी मान्यताएँ गहरी होती हैं।

कहानी में 'नाच' एक महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में उपस्थित है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि ग्रामीण जीवन के उत्सव का प्रतीक है। बिरजू की माँ के लिए यह उसकी छोटी-सी आकांक्षा है, जिसमें उसका आत्मसम्मान जुड़ा हुआ है। कहानी का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जब देर रात बिरजू का बाप बैलगाड़ी लेकर लौटता है और साथ में खेत की धान की बालियाँ भी लाता है। इन बालियों को देखकर बिरजू की माँ का सारा गुस्सा समाप्त हो जाता है। यह दृश्य अत्यंत मार्मिक है, क्योंकि किसान के लिए उसकी फसल ही सबसे बड़ा सुख होती है। धान की बालियों का धानी रंग उसके मन में उतर जाता है और उसके भीतर का सारा तनाव समाप्त हो जाता है। इसके बाद उसका चरित्र एक नए रूप में सामने आता है। पहले जो स्त्री ईर्ष्या और क्रोध से भरी हुई थी वही अब उदार और सहृदय बन जाती है। वह जंगी की पुतोहू और अन्य स्त्रियों को भी साथ चलने के लिए बुलाती है- ''आ जा झट से कपड़ा पहन कर... सारी गाड़ी पड़ी हुई है!'' यह उसका मानवीय और करुणामय रूप है, जहाँ वह दूसरों के सुख में अपना सुख खोजती है।

कहानी का अंतिम दृश्य अत्यंत सौंदर्यपूर्ण और प्रतीकात्मक है- ''गाड़ी गाँव से बाहर हो कर धान के खेतों के बगल से जाने लगी... खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है...''

यह केवल दृश्य नहीं, बल्कि अनुभूति है। चाँदनी, धान की खुशबू, बैलों की घंटियाँ-ये सब मिलकर एक ऐसा वातावरण रचते हैं जो पाठक को भीतर तक छू लेता है। इसी वातावरण में बिरजू की माँ स्वयं को देखती है और स्वीकार करती है- ''हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है।'' यह उसके आत्मसम्मान, संतोष और पूर्णता का क्षण है। प्रारंभ में जो शब्द व्यंग्य के रूप में प्रयुक्त हुआ थावही अब उसकी पहचान बन जाता है।

पति-पत्नी के संबंधों का चित्रण भी अत्यंत स्वाभाविक है। शुरुआत में जहाँ बिरजू की माँ अपने पति से नाराज़ है, वहीं अंत में उनके बीच एक कोमल स्नेह दिखाई देता है। बिरजू का बाप उसे सजी-धजी देखता है और उसकी आँखों में प्रेम झलकता है। इस प्रकार, 'लाल पान की बेगम' केवल एक स्त्री की कहानी नहीं, बल्कि पूरे ग्रामीण जीवन का सजीव चित्र है। इसमें संघर्ष है, ईर्ष्या है, प्रेम है, उत्सव है और अंततः संतोष है। बिरजू की माँ के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री केवल सहनशील नहीं, बल्कि संघर्षशील, निर्णयक्षम और संवेदनशील भी होती है।

अंत में, चाँदनी रात में बैलगाड़ी पर बैठी, लाल साड़ी में सजी, संतोष से भरी बिरजू की माँ केवल एक पात्र नहीं रह जाती बल्कि वह उस स्त्री-शक्ति का प्रतीक बन जाती है जो अपने छोटे-से संसार में भी गरिमा, प्रेम और आत्मसम्मान के साथ जीना जानती है। यही उसकी वास्तविक ''बेगमी'' है, और इसी अर्थ में वह सचमुच ''लाल पान की बेगम'' बन जाती है।

'लाल पान की बेगम' मूलतः एक ऐसी कहानी है जो ग्रामीण जीवन की सादगी, संघर्ष और मानवीय भावनाओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। फणीश्वरनाथ रेनू ने इस कथा के माध्यम से यह स्पष्ट

किया है कि साधारण जीवन जीने वाली स्त्री भी असाधारण शक्ति, धैर्य और संवेदनशीलता की प्रतीक होती है। बिरजू की माँ का चरित्र इसी सत्य का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपने जीवन में अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरते हुए भी न केवल अपने परिवार को संभालती है बल्कि सामाजिक स्तर पर भी एक मजबूत उपस्थिति दर्ज कराती है।

कहानी यह दर्शाती है कि आर्थिक संघर्ष और सामाजिक विषमताओं के बावजूद मनुष्य के भीतर सपने देखने और उन्हें पूरा करने की इच्छा बनी रहती है। बिरजू की माँ का नाच देखने जाने का सपना केवल मनोरंजन की आकांक्षा नहीं बल्कि उसके आत्मसम्मान और अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। प्रारंभ में उसका क्रोध, असंतोष और व्याकुलता जहाँ उसके भीतर के दबावों को व्यक्त करते हैं, वहीं अंत में उसका संतोष, उदारता और प्रसन्नता उसके व्यक्तित्व के परिपक्क और मानवीय रूप को सामने लाते हैं।

इस कथा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह स्त्री-मन की जटिलताओं को अत्यंत स्वाभाविक रूप में उजागर करती है। ईर्ष्या, क्रोध, प्रेम, ममता और सहानुभूति—ये सभी भाव बिरजू की माँ में एक साथ विद्यमान हैं। यही बहुआयामी स्वरूप उसे जीवंत और यथार्थ बनाता है। साथ ही यह कहानी यह भी संकेत करती है कि सच्चा सुख केवल व्यक्तिगत उपलब्धि में नहीं, बल्कि सामूहिक आनंद में निहित होता है। यही कारण है कि अंत में वह अपने साथ अन्य स्त्रियों को भी नाच देखने के लिए ले जाती है।

अंततः, 'लाल पान की बेगम' स्त्री-सशक्तिकरण, ग्रामीण संस्कृति और मानवीय संबंधों की गहन अभिव्यक्ति है। यह कहानी यह संदेश देती है कि जीवन के छोटे-छोटे सपनों में भी गहरी खुशी छिपी होती है और संघर्ष के बाद प्राप्त संतोष ही मनुष्य को वास्तविक गरिमा प्रदान करता है। बिरजू की माँ इसी गरिमा और आत्मविश्वास के साथ अंत में एक ऐसी प्रतीकात्मक छवि बन जाती है, जो यह सिद्ध करती है कि साधारण स्त्री भी अपने साहस और संवेदना से ''बेगम'' बन सकती है।

11.7 सारांश

फणीश्वरनाथ रेणु की रचना 'लाल पान की बेगम' पर आधारित इस इकाई में उनके व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन और साहित्यिक योगदान के साथ-साथ कहानी के सार एवं समीक्षा का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रेणु हिंदी साहित्य के प्रमुख आंचलिक कथाकार हैं, जिन्होंने ग्रामीण जीवन की सजीवता, बोली-बानी और यथार्थ को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया। उनका जीवन-दर्शन मानवीयता, संघर्षशीलता और लोक-संस्कृति के प्रति गहरे लगाव पर आधारित है जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से झलकता है।

इस इकाई में उनकी प्रमुख कृतियों का परिचय देते हुए यह बताया गया है कि उन्होंने साहित्य को केवल कल्पना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज के वास्तविक जीवन को कथा का आधार बनाया। 'लाल पान की बेगम' कहानी इसी दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें बिरजू की माँ के माध्यम से एक ग्रामीण स्त्री के बहुआयामी व्यक्तित्व को उकेरा गया है। कहानी का सार यह दर्शाता है कि आर्थिक संघर्ष, सामाजिक ईर्ष्या और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच भी स्त्री अपने छोटे-छोटे सपनों को संजोए रखती है।

समीक्षा के स्तर पर यह स्पष्ट होता है कि रेणु ने आंचलिक भाषा, संवादों और वातावरण के माध्यम से कथा को जीवंत बना दिया है। बिरजू की माँ का चरित्र स्त्री-शक्ति, आत्मसम्मान और संवेदनशीलता का प्रतीक बनकर उभरता है। इस प्रकार, यह इकाई न केवल एक कहानी का अध्ययन कराती है, बल्कि रेणु के समग्र साहित्यिक दृष्टिकोण और ग्रामीण जीवन की गहरी समझ को भी प्रभावी रूप में प्रस्तुत करती है।

K 11.8 प्रगति विवरण (केवल रुपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: फणीश्वरनाथ रेणु अपने साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं, संघर्षों और

सौंदर्य को जिस जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया, वह उन्हें विशिष्ट बनाता है। उनके लेखन में लोकजीवन की सहजता, भाषा की आंचलिकता और मनुष्य के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है। वे केवल कथाकार ही नहीं, बल्कि जनजीवन के सच्चे चित्रकार थे जिन्होंने समाज के उपेक्षित और हाशिये पर खड़े लोगों को अपनी रचनाओं के केंद्र में स्थान दिया।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: फणीश्वरनाथ रेणु जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले के औराही-हिंगना गाँव में हुआ था।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: यह कथन फणीश्वरनाथ रेणु का है।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: फणीश्वरनाथरेणु 11 अप्रैल 1977 को उनका निधन हो गया।

5 11.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- कमलेश्वर (1978). नई कहानी की भूमिका. दरियागंज: इशान प्रकाशन,
- मधुरेश (2011). हिंदी कहानी का विकास. कानपुर: सुमित प्रकाशन
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई: दिल्ली: राजकमल
- मदान, इंद्रनाथ (1968). हिंदी कहानी अपनी जबानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी-सन्दर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- तिवारी, उषा (1996). आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य और राजेन्द्र यादव का कथा साहित्य. नई दिल्ली: सार्थक प्रकशन
- यादव, राजेन्द्र (2000). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- यायावर, भारत (सं) (1998), फणीश्वरनाथ रेणु चुनी हुई रचनाएँ, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन

M11.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन की किन्ही तीन विशेषताओं के बारे में लिखिए।
2. रेणु की रचनाओं में जीवन की यथार्थ किस प्रकार परिलक्षित होती है?
3. लाल पान की बेगम कहानी के किन्ही तीन पात्रों के नाम लिखिए।
4. रेणु द्वारा रचित चार उपन्यासों के नाम लिखिए।
5. रेणु द्वारा रचित चार कहानी संग्रह के नाम लिखिए।
6. रेणु द्वारा रचित दो रिपोर्ताज के नाम लिखिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2. फणीश्वरनाथ रेणु के व्यक्तित्व और जीवन दर्शन पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।

3. 'लाल पान की बेगम' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
4. 'लाल पान की बेगम' कहानी की समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
5. रेणु के साहित्य में निहित मानवीय यथार्थ को अपने शब्दों में लिखिए।
6. 'लाल पान की बेगम' कहानी में चित्रित स्त्री मनोदशा के विविध पक्षों को उजागर कीजिए।

****

इकाई-12 ठाकुर का कुआ

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 कहानीकार 'प्रेमचंद का परिचय'
12.4 'ठाकुर का कुआ' का सार
12.5 कहानी की समीक्षा
12.6 सारांश
12.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
12.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप:

- साहित्य के प्रति रुचि और समझ विकसित करने के साथ ही नैतिक मूल्यों को समझने में सक्षम होंगे।
- उपन्यास सम्राट और कहानीकार प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
- प्रेमचंद के जीवन दर्शन का परिचय प्राप्त करेंगे।
- प्रेमचंद के साहित्य में निहित यथार्थ से अवगत होने में सफल होंगे।
- 'ठाकुर का कुआँ' कहानी के कथा से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी में चित्रित तत्कालीन समाज और वर्तमान समाज को जोड़ कर तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- कहानी में निहित विविध बिन्दुओं के माध्यम से विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे।

12.2 प्रस्तावना

प्राचीन काल से लेकर आज तक संसार में अनेक महान विभूतियाँ जन्मी हैं, जिनकी विचारधारा और जीवन दृष्टि ने समकालीन समाज के साथ-साथ भावी पीढ़ियों को भी दिशा दी है। ऐसे महापुरुषों का प्रभाव आम जनमानस पर गहरा पड़ता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रेमचंद ऐसे ही युगद्रष्टा साहित्यकार के रूप में उभरते हैं जिन्होंने न केवल अपने साहित्य के माध्यम से समाज को दिशा दी, बल्कि भविष्य के साहित्यकारों के लिए भी एक आदर्श प्रस्तुत किया।

प्रेमचंद एक सच्चे जनवादी लेखक थे, जिनका साहित्यिक उद्देश्य केवल कला का प्रदर्शन नहीं, बल्कि लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत समाज सेवा था। उनके जीवनदर्शन की केंद्रीय भावना मानवतावाद रही है- एक ऐसा दृष्टिकोण जो न तो केवल भावुकता पर आधारित है, न ही अमूर्त आध्यात्मिकता पर, बल्कि व्यवहारिक और भौतिक यथार्थ की भूमि पर खड़ा है।

उनकी गहरी सहानुभूति के कारण उनका साहित्यिक क्षेत्र अत्यंत विस्तृत बन पड़ा है। प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन की गहराई से जोड़कर देखा-जहाँ कहीं भी जीवन में सत्य, शिव और सौंदर्य का आभास होता है, वहाँ प्रेमचंद उसे अपनी लेखनी से प्रमाणित करते हैं। वे अपने लेखन के माध्यम से मनुष्य के भीतर छिपे देवत्व को

जागृत करना चाहते हैं-यही उनके जीवनदर्शन की सार्थकता है। साथ इस इकाई में उनकी प्रमुख कहानी 'ठाकुर का कुआँ' के माध्यम से समाज के विविध पक्षों से विद्यार्थी अवगत होंगे।

12.3 कहानीकार प्रेमचंद का परिचय

प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद का असली नाम धनपतराय था। वे मूलत: उत्तर प्रदेश के एक सरकारी स्कूल में शिक्षक थे। वे कायस्थ जाति से संबंध रखते थे और चूँकि कायस्थों को सामान्यत: 'मुंशी' कहा जाता था, इस कारण उन्हें 'मुंशी प्रेमचंद' के नाम से प्रसिद्धि मिली। उनका जन्म 31 जुलाई 1880 को काशी (वर्तमान वाराणसी) के पास स्थित लमही गाँव में हुआ था। उनके पिता, अजायब लाल, डाक विभाग में कार्यरत थे और एक विचारशील, धार्मिक प्रवृत्ति के सज्जन थे। वे नियमित रूप से भगवद्गीता का पाठ करते थे। प्रेमचंद की माता आनंदी देवी, पढ़ी-लिखी, समझदार और साहित्य प्रेमी महिला थीं, हालाँकि उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह कभी प्रकाशित नहीं हुआ।

जब धनपतराय की उम्र आठ या नौ वर्ष थी, तभी उनकी माँ का निधन हो गया। इसके कुछ समय बाद पिता ने पुनर्विवाह कर लिया। स्वयं प्रेमचंद के अनुसार, उनके पिता ने जीवन में काफी सतर्कता बरती, लेकिन अंतिम समय में कुछ गलतियाँ कर बैठे। पुनर्विवाह और फिर अपनी दूसरी पत्नी के दबाव में आकर मात्र सोलह वर्ष की उम्र में प्रेमचंद का विवाह करा देना, उनकी बड़ी भूलों में गिना जा सकता है। विवाह के एक साल के भीतर ही पिता का देहांत हो गया, जिससे परिवार की जिम्मेदारियाँ बालक धनपतराय पर आ पड़ीं। उस समय वे केवल नवीं कक्षा के छात्र थे। इस कठिन परिस्थिति में उन्होंने ट्यूशन से गुज़ारा किया और पढ़ाई जारी रखी। बीस वर्ष की उम्र में उन्हें बहराइच के एक स्कूल में शिक्षक की नौकरी मिली। इसी दौरान उन्होंने लेखन में रुचि ली और 'नवाबराय' नाम से लघु पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित करने लगे।

प्रेमचंद का पहला विवाह असफल रहा। उनकी पत्नी का स्वभाव कटु और झगड़ालू था। 1906 में वे पति से अलग होकर मायके चली गईं और फिर कभी वापस नहीं लौटीं। प्रेमचंद जी ने वर्षों तक उन्हें आर्थिक सहायता भेजी, पर दोनों का कोई संपर्क नहीं रहा। बाद में उन्होंने एक विधवा महिला, शिवरानी देवी से दूसरा विवाह किया, जो स्वयं लेखिका थीं। यह वैवाहिक जीवन सुखद और सफल रहा। प्रेमचंद के जीवन के अंत तक शिवरानी देवी ने उनका साथ निभाया।

मुंशी प्रेमचंद समाज के विविध वर्गों के अनुभवों से सीधे परिचित थे। मध्यवर्ग से आने के कारण वे इस वर्ग की मानसिकता, संघर्ष और विचारों को अच्छी तरह समझते थे। सरकारी नौकरी, साहित्य लेखन, बंबई में फिल्म उद्योग से जुड़ाव और संपन्न वर्ग के संपर्क में आने के कारण वे समाज के हर तबके को जानने-समझने लगे थे। यही कारण है कि उनके लेखन में समाज, विवाह, नारी स्वतंत्रता, परिवार और सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर गहराई से विचार किया गया है। अपने मित्रों और समान सोच वाले लोगों से बातचीत करके वे अपने विचारों को परिष्कृत करते थे और जब ये विचार स्पष्ट हो जाते, तो उन्हें शब्दों में ढाल देते। ऐसा लगता है कि हर विचारशील लेखक की यही रचना-प्रक्रिया होती है। यही आत्मविश्वास और निडरता उन्हें लगातार लेखन के लिए प्रेरित करती रही।

प्रेमचंद का जीवन आर्थिक समृद्धि से दूर और स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों से घिरा रहा, लेकिन उनके भीतर समाज को सुधारने और देश को बेहतर बनाने की अदम्य इच्छा बनी रही। गांधीवादी और समाजवादी विचारधाराओं से प्रेरित होकर उन्होंने एक विशाल साहित्यिक संसार रचा, जिसमें कहानियाँ और उपन्यास दोनों शामिल हैं। प्रेमचंद की लोकप्रियता जितनी तेजी से बढ़ी, उतने ही आलोचक भी उनके विरुद्ध सक्रिय हुए। कुछ लोगों ने उन्हें 'ब्राह्मण विरोधी', 'अस्वतंत्र लेखक' और 'पश्चिमी साहित्य की नकल करने वाला' तक कहने की कोशिश की। लेकिन दूसरी ओर, विद्वान आलोचक जैसे रामचंद्र शुक्ल, रामदास गौड़ और जनार्दन प्रसाद झा

'द्विज' ने उनके साहित्य की गहराई से सराहना की।

प्रेमचंद पारिवारिक व्यक्ति थे और उन्हें अपने बच्चों से विशेष लगाव था। वे यात्रा करना पसंद नहीं करते थे और परिवार से दूर रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। लेखक अमृत राय के अनुसार, उनके जीवन की धुरी उनके बच्चे थे, जिनसे उनका जुड़ाव अत्यंत गहरा था। राजनीति में भी उनकी रुचि थी, किंतु वे सक्रिय राजनीति में शामिल नहीं हुए। उनके मन में अंग्रेजों के प्रति विरोध और स्वाधीनता की भावना स्पष्ट थी। वे कांग्रेस की बैठकों में भाग लेते, किंतु पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण कभी प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में नहीं कूदे। अमृत राय ने उन्हें किसान की तरह मेहनती व्यक्ति कहा, जिसके हाथ में हल नहीं, बल्कि कलम थी।

प्रेमचंद अपने एक पत्र में लिखते हैं-

''मेरे जीवन का एक ही उद्देश्य रहा है-काम, काम और सिर्फ काम।''

उन दिनों लेखन में भी देशभक्ति को राजद्रोह माना जाता था। 1908 में जब उन्होंने 'सोजे वतन' नामक देशभक्ति से ओतप्रोत कहानी संग्रह प्रकाशित किया, तो सरकारी कार्रवाई का सामना करना पड़ा। सौभाग्य से उनके एक अधिकारी ने उन्हें बचा लिया, लेकिन इसके बाद से उन्होंने 'मुंशी प्रेमचंद'नाम से लिखना शुरू कर दिया। 1920 में, गांधीजी से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी और एम.ए. की पढ़ाई का विचार भी त्याग दिया। बाद में एक स्कूल में प्रधानाध्यापक बने, लेकिन वह नौकरी भी छोड़ दी। फिल्म लेखन के लिए बंबई गए, परंतु वहां की परिस्थितियाँ उन्हें रास नहीं आईं। अंतत: वे वापस काशी लौटे और वहाँ उन्होंने 'गोदान' जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की।

बंबई प्रवास के दौरान उन्हें भाषाई एकता का विचार आया, जिससे 'भारतीय साहित्य परिषद' की स्थापना हुई। इसके लिए महात्मा गांधी की अध्यक्षता में बैठक हुई और प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका को परिषद का मुखपत्र बनाने का सुझाव दिया। वे 'हंस' के संपादक भी बने। लेकिन समय के साथ उनकी सेहत गिरने लगी और 'हंस' में प्रकाशित एक नाटक को सरकार ने राजद्रोही मानते हुए एक हजार रुपए की जमानत माँगी। जमानत भर दी गई, लेकिन अंतत: पत्रिका का प्रकाशन बंद करना पड़ा। इससे वे मानसिक रूप से आहत हुए और उनकी हालत और बिगड़ गई।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वे 'मंगलसूत्र' नामक उपन्यास लिख रहे थे, जो अधूरा रह गया। प्रेमचंद, जिन्होंने दलितों, स्त्रियों, किसानों और पीड़ितों की आवाज़ को कलम के माध्यम से जीवंत किया, और जिन्होंने अपने साहित्य से देशभक्ति का संदेश दिया, उन्होंने 8 अक्टूबर 1936 को इस दुनिया को अलविदा कह दिया। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है कि गहराई से पढ़ने पर हर रचना में विचार और भावना का एक नया मोती मिलता है।

जीवन से प्राप्त अनुभवों का प्रभाव

प्रेमचंद के जीवनदर्शन को आकार देने में उनके स्वयं के जीवन संघर्षों की अहम भूमिका रही है। बाल्यकाल से मृत्यु तक उनका जीवन कठिनाइयों से भरा रहा, पर उन्होंने कभी पराजय को स्वीकार नहीं किया। अपने उपन्यास रंगभूमि में सूरदास के माध्यम से वे कहते हैं - ''जीवन एक खेल है, सच्चे खिलाड़ी कभी हार से नहीं घबराते।'' यह कथन उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को प्रकट करता है। विचारों में ऊँचाई और जीवनशैली में सादगी, यही प्रेमचंद के व्यक्तित्व की विशेषताएँ थीं। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण इतना व्यापक था कि समाज के हर तबके -दलितों, गरीबों, किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, यहां तक कि वेश्याओं तक-को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया। क्योंकि उन्हें पाप से घृणा थी, पापी से नहीं।

रंगभूमि के सूरदास-जीवनदृष्टि के संवाहक

रंगभूमि के सूरदास में प्रेमचंद अपनी ही जीवन दृष्टि को व्यक्त करते हैं। सूरदास अंधा है, पर उसकी अंतर्दृष्टि अत्यंत प्रखर है। वह नि:स्वार्थ है, द्वेषहीन है, निर्धन है पर ईमानदार है। समाज उसे एक चमत्कारिक

देवता मानता है, क्योंकि उसकी चेतना साधारण मानवों से कहीं अधिक परिष्कृत है। प्रेमचंद ईश्वर की अवधारणा को नहीं मानते थे, पर उन्होंने धर्म के मूल्यों-जैसे सेवा, समता, त्याग, सत्य-को अत्यंत महत्व दिया। वे कर्मकांड और आडंबर के विरोधी थे, और अपने पात्रों के माध्यम से यही संदेश देते हैं कि जीवन का उद्देश्य केवल धर्म या धन नहीं, बल्कि मनुष्यता का संवर्धन होना चाहिए।

गोदान और प्रोफेसर मेहता के विचार:

गोदान के प्रो. मेहता प्रेमचंद के जीवनदर्शन को प्रतिध्वनित करते हैं। वे कहते हैं कि वे प्रकृति के पूजक हैं, और मनुष्य को उसी के अंग के रूप में देखते हैं-जो हँसता है, रोता है, क्रोधित होता है। उनके लिए जीवन एक आनंदमयी खेल है, और अतीत या भविष्य की चिंता उन्हें कमजोर नहीं बनाती। वे वर्तमान को सर्वोपरि मानते हैं। यही सोच प्रेमचंद की भी थी-कि मनुष्य की ऊर्जा को वर्तमान की सेवा में लगाना चाहिए, न कि बीते या आने वाले समय की चिंता में व्यर्थ करना। प्रेमचंद मानते थे कि समाज का सुधार तब तक संभव नहीं जब तक उसके नेतृत्वकर्ता कथनी और करनी में एकरूप न हों। उन्होंने यह आदर्श न केवल अपने साहित्य में, बल्कि निजी जीवन में भी निभाया-सरकारी नौकरी छोड़ी, आर्थिक संकट सहे, पर अपने मूल्यों से कभी समझौता नहीं किया।

मनुष्य के भीतर की दुर्बलताएँ और उसकी दिव्यता:

प्रेमचंद मनुष्य की कमजोरियों से परिचित थे, पर वे इन कमज़ोरियों को उसकी नियति नहीं मानते थे। वे मानते थे कि वर्षों की साधना और अनुभव ने मानव को सेवा, दया, क्षमा और सौंदर्य जैसी सद्गुणों की ओर अग्रसर किया है। उनके पात्र -सेवासदन की सुमन, रंगभूमि के सूरदास, गबन की जालपा और गोदान के होरी- सभी अपनी कमजोरियों के बावजूद उच्च आदर्शों की ओर बढ़ते हैं। प्रेमचंद समाज में व्याप्त शोषण को खत्म करना चाहते थे। उनके लिए मानवता सर्वोपरि थी और साहित्य उस विचार का वाहक। उनका मानना था कि साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं होना चाहिए, बल्कि वह जीवन को दिशा देने वाला सशक्त उपकरण होना चाहिए। वे कहते हैं - ''साहित्य का काम है जीवन का संस्कार करना।''

आदर्श और यथार्थ का समन्वय:

प्रेमचंद पर यह आरोप कई बार लगाया गया कि उन्होंने आदर्शों को अधिक महत्व दिया, यथार्थ को कम। परंतु यदि उनके जीवनदर्शन को समझा जाए, तो स्पष्ट हो जाता है कि उनका आदर्शवाद जीवन के धरातल से जुड़ा था। विशेषत: उनकी उत्तरकालीन रचनाओं-गोदान जैसी कृतियों-में यथार्थवाद की गहरी छाप है। उन्होंने आदर्श और यथार्थ के बीच संतुलन बनाकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना की। उनके लिए साहित्य का उद्देश्य केवल ज्ञान या भक्ति नहीं था, बल्कि सेवा था। सेवासदन में वे कहते हैं- ''कलियुग में मनुष्य की मुक्ति का मार्ग केवल सेवा है।'' उनके साहित्य में यह सेवाभावना गहराई से प्रतिबिंबित होती है।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में जिस मानवदृष्टि को स्थान दिया, वह केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि जीवन के ठोस अनुभवों पर आधारित थी। वे जीवन की वास्तविकताओं को समझते थे और मानते थे कि साहित्यकार का कर्तव्य है दलितों, वंचितों और पीड़ितों की वकालत करना। यही कारण है कि उनके साहित्य में गाँव की झोंपड़ी से लेकर शहर की कोठी तक, भिखारी से लेकर साहूकार तक-सभी का चित्रण मिलता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रेमचंद को जनता की आत्मा का स्वर मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि उत्तर भारत की आम जनता के जीवन को समझना हो, तो प्रेमचंद से बेहतर मार्गदर्शक कोई नहीं। उन्होंने किसानों, स्त्रियों, दलितों, मजदूरों-सबकी पीड़ा को अपने साहित्य में स्थान दिया और यह दिखाया कि सच्ची मनुष्यता कहाँ पाई जाती है।

प्रेमचंद का साहित्य केवल लेखन नहीं, एक सामाजिक और नैतिक आंदोलन है-जो मनुष्य को उसकी महानता की ओर ले जाता है।

उपन्याकार और कहानीकार के रूप में प्रेमचन्द:

प्रेमचंद ने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना, बल्कि उसे समाज सुधार और लोकहित का

सशक्त माध्यम बनाया। वे साहित्य को 'जीवन की आलोचना' के रूप में स्वीकार करते थे। इसी सोच के चलते उन्होंने न केवल कहानियाँ लिखीं, बल्कि समाज की गहरी समस्याओं को उजागर करने वाले उपन्यास भी रचे। उनके उपन्यासों में जीवन के सत्य, शिव और सौंदर्य का संतुलन देखने को मिलता है, जो उच्च कोटि के साहित्य की पहचान माने जाते हैं।

1905 से 1936 के बीच प्रेमचंद ने ग्यारह प्रमुख उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों की प्रेरणा उन्हें उस समय के समाज में फैली कुरीतियों और विषमताओं से मिली-जैसे पराधीनता, पूँजीपतियों द्वारा किसानों का शोषण, अंधविश्वास, अशिक्षा, अस्पृश्यता और स्त्री जीवन की दुर्दशा। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के हर वर्ग को स्थान दिया और उपन्यास को सामाजिक परिवर्तन का औजार बना दिया। प्रेमचंद अपने समय के निर्भीक और जनपक्षधर लेखक के रूप में उभरे। हिंदी उपन्यास का एक महत्वपूर्ण कालखंड उनके नाम पर आधारित है। इस युग में प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त जैसे लेखक भी सक्रिय रहे। प्रेमचंद के 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'प्रेमा', 'प्रतिज्ञा', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' जैसे उपन्यास विशेष रूप से लोकप्रिय हुए। 'मंगलसूत्र' उनका अंतिम उपन्यास था, जो अधूरा रह गया। प्रेमचंद गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे और उनके साहित्य में राष्ट्रप्रेम की भावना गहराई से समाई हुई थी। उनकी भाषा सरल, मधुर और प्रभावशाली थी। उनके उपन्यास आदर्श और यथार्थ के बीच संतुलन बनाकर चलते हैं।

उनके उपन्यासों के विषय कुछ इस प्रकार हैं—

सेवासदन में वेश्यावृत्ति, कुलीनता और दहेज जैसे सामाजिक मुद्दों को उठाया गया है।

निर्मला में नारी की पीड़ा, बेमेल विवाह और दहेज की समस्या को दर्शाया गया है।

गोदान में एक गरीब किसान की जिंदगी की सच्चाई उजागर की गई है।

गबन में मध्यवर्ग की मानसिक स्थिति और स्त्री के आभूषण प्रेम को चित्रित किया गया है।

रंगभूमि में पूँजीवाद और नैतिक मूल्यों के ह्रास को विषय बनाया गया है।

कहानी लेखन में योगदान:

प्रेमचंद कहानी जगत में भी उतने ही प्रभावशाली सिद्ध हुए जितने कि उपन्यासों में। उनके कारण हिंदी कहानी को नया जीवन और दिशा मिली। इसीलिए हिंदी कहानी का एक पूरा युग 'प्रेमचंद युग' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने लगभग 300 से अधिक कहानियाँ लिखीं, जो 'मानसरोवर' नामक संग्रह के आठ खंडों में प्रकाशित हैं। प्रारंभ में प्रेमचंद उर्दू में लेखन करते थे और उनकी कहानियाँ 'जमाना' पत्रिका में छपती थीं। 'सोज़े वतन' उनकी पहली कहानी-संग्रह थी, जिसे देशभक्ति से ओतप्रोत होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया।

प्रेमचंद जनता के लेखक थे। उन्होंने आम जन के दु:ख-दर्द, भूख, अत्याचार, अन्याय और सामाजिक विसंगतियों को अपनी कहानियों में जीवंत रूप में प्रस्तुत किया। उनके पास जीवन का अनुभव था, जिससे उनकी कहानियाँ पाठकों को यथार्थ के बहुत करीब लगती थीं। उनकी कहानियों में न केवल समाज का प्रतिबिंब मिलता है, बल्कि वे सामाजिक चेतना जगाने का कार्य भी करती हैं।

उनकी प्रमुख कहानियाँ- 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', बड़े भाई साहब', 'सद्गति', 'दो बैलों की कथा', 'सवा सेर गेहूँ' 'गुल्ली-डंडा', 'जुलूस' 'शतरंज के खिलाड़ी', 'कफन', 'ईदगाह'—इन्हीं विशेषताओं से युक्त हैं।

प्रेमचंद की भाषा में सहजता, प्रांजलता, मुहावरेदारी और संवादों में गहराई है, जो पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। उन्होंने साहित्य को केवल किताबों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे जनता के जीवन का

दर्पण बना दिया।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

'कफन'(1936) प्रेमचंद द्वारा रचित कहानियों में प्रसिद्ध कहानी है। प्रेमचंद द्वारा रचित 'कफ़न' एक ऐसी गूढ़ कथा है, जो समाज की असंवेदनशीलता, वर्ग भेद और मानवीय मूल्यों के क्षरण को उजागर करती है। कहानी के दो मुख्य पात्र-घीसू और माधव दयनीय आर्थिक स्थिति और सामाजिक हाशिए पर टिके जीवन के प्रतीक हैं। जब माधव की पत्नी बुधिया प्रसव पीड़ा से तड़पती है, तब दोनों पुरुष निष्क्रिय बैठे रहते हैं, और उसकी मृत्यु के बाद शोक के बजाय कफ़न के नाम पर मिली सहायता को शराब में उड़ा देते हैं।

यह कहानी धार्मिक दिखावे, सामाजिक तंत्र की निष्क्रियता और इंसानी संवेदनाओं की समाप्ति पर गहरी चोट करती है। इसमें निहित व्यंग्य यह दर्शाता है कि निर्धनता केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि नैतिक और भावनात्मक दिवालियापन को भी जन्म देती है। 'कफ़न' न सिर्फ व्यक्ति के, बल्कि पूरे तंत्र के पतन की गवाही देती है, जो आज भी उतनी ही मार्मिक और प्रासंगिक है।

12.4 'ठाकुर का कुआ' का सार

कहानी 'ठाकुर का कुआँ'(1932) प्रेमचंद द्वारा रचित प्रसिद्ध कहानियों में से एक है। इस कहानी में समाज में व्याप्त छुआछूत, वर्गभेद और सामाजिक शोषण की पीड़ा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। यह कहानी एक दलित परिवार की प्यास और आत्मसम्मान की त्रासदी को केंद्र में रखती है।

कहानी की शुरुआत होती है जोखू नामक एक निर्धन और बीमार दलित व्यक्ति से, जो प्यास से व्याकुल होकर पानी पीना चाहता है। उसकी पत्नी गंगी, जो रोज़ कुएँ से पानी भरती है, आज के पानी में बदबू पाकर चकित हो जाती है। उन्हें समझ में आता है कि शायद कुएँ में कोई जानवर गिरकर मर गया है, जिससे पानी सड़ गया है। समस्या यह है कि गांव में अन्य कुएँ ठाकुरों और साहूकारों के हैं, जिनसे तथाकथित 'नीच जातियों' को पानी भरने की अनुमति नहीं है। इस वर्गीय और जातीय भेदभाव के कारण गंगी जैसे लोग गंदा और अस्वास्थ्यकर पानी पीने को मजबूर हैं। जोखू की प्यास बेकाबू होती जा रही है, परंतु गंगी उसे सड़ा हुआ पानी नहीं पीने देती। उसे चिंता है कि इससे जोखू की बीमारी और बढ़ जाएगी। पर उसे यह नहीं मालूम कि उबालने से पानी शुद्ध किया जा सकता है। वह ठान लेती है कि किसी भी तरह साफ पानी लाकर रहेगी, चाहे इसके लिए ठाकुर के कुएँ से पानी क्यों न भरना पड़े, जो उनके लिए निषिद्ध है।

रात को जब गांव सो चुका होता है, गंगी चुपचाप ठाकुर के कुएँ की ओर जाती है। कुएँ पर ठाकुर और उनके साथी बैठे अपने 'कानूनी बहादुरी' के किस्से सुना रहे होते हैं-कैसे उन्होंने रिश्वत देकर या चालाकी से कानून को अपने पक्ष में कर लिया। गंगी यह सब सुनकर सोचती है कि ये लोग ऊँच जाति के कहलाते हैं, लेकिन उनके कर्म कितने नीच हैं-चोरी, भ्रष्टाचार, हिंसा, शोषण सब कुछ इन्हीं के हिस्से है। फिर भी समाज उन्हें 'ऊँचा' मानता है, और हमें नीचा। उसका मन इस अन्याय के खिलाफ विद्रोह से भर उठता है।

कुछ देर तक गंगी कुएँ की आड़ में छुपी रहती है, जब तक कि वहां बैठकी कर रहे लोग चले नहीं जाते। फिर वह धीरे-धीरे कुएँ के पास जाती है और पानी भरने की कोशिश करती है। जैसे ही वह घड़ा ऊपर खींचती है, ठाकुर का दरवाज़ा खुल जाता है और वह घबरा जाती है। डर के मारे उसके हाथ से रस्सी छूट जाती है और घड़ा पानी में गिर जाता है। ठाकुर 'कौन है' चिल्लाते हुए बाहर आते हैं और गंगी वहाँ से जान बचाकर भाग जाती है। घर लौटने पर वह देखती है कि उसका पति जोखू वही गंदा, बदबूदार पानी पी रहा है-वही पानी जिसे पीने से गंगी ने उसे रोका था। यह दृश्य गंगी को भीतर तक झकझोर देता है।

कहानी सामाजिक भेदभाव, विशेषत: जातिगत छुआछूत के कारण उत्पन्न पीड़ा और विषमता को उजागर करती है। गंगी का संघर्ष सिर्फ पानी भरने का नहीं है, बल्कि वह सामाजिक बराबरी और मानवीय गरिमा के लिए भी लड़ रही है। ठाकुरों और उच्च जातियों का ढोंग, भ्रष्टाचार और अमानवीयता स्पष्ट दिखाई देती है, वहीं गंगी जैसे पात्र साहस, संवेदनशीलता और आत्मसम्मान के प्रतीक बनकर उभरते हैं। कहानी यह प्रश्न उठाती है कि क्या जन्म के आधार पर ऊँच-नीच तय किया जा सकता है? क्या हर इंसान को पीने के पानी जैसा बुनियादी अधिकार नहीं मिलना चाहिए?

'ठाकुर का कुआँ' एक सामाजिक प्रतिरोध की कहानी है, जो न केवल जातिवाद पर चोट करती है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि ग़रीब और वंचित वर्ग भी आत्मसम्मान और अधिकार की भावना रखते हैं। यह प्रेमचंद की संवेदनशील दृष्टि और यथार्थवादी लेखन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. प्रेमचंद का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न 2. 'सोजे वतन' का प्रकाशन कब हुआ था?

प्रश्न 3. प्रेमचंद चार उपन्यासों के नाम लिखिए।

प्रश्न 4. प्रेमचंद के चार प्रमुख कहानियों के नाम लिखिए।

प्रश्न 5. प्रेमचंद के कहानियों का मूल विषय क्या है?

12.5 कहानी की समीक्षा

'ठाकुर का कुआँ' कहानी के माध्यम से तत्कालीन समाज के विविध बिन्दुओं को उजागर किया है। जिसे हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

सामाजिक असमानता और भेदभाव-

'ठाकुर का कुआं' केवल एक घटना नहीं, बल्कि दलित जीवन की पीड़ा और जातिगत भेदभाव की त्रासदी को उजागर करने वाली कथा है। इस कहानी में अछूतों को ऊँची जातियों के कुएं से पानी लेने का अधिकार नहीं है। जोखू बीमार है और गंगी गंदे पानी से उसकी हालत और बिगड़ने के डर से ठाकुर के कुएं से रात में पानी भरने जाती है, लेकिन डर के मारे घड़ा वहीं छोड़कर भाग जाती है। प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से दिखाया कि कैसे दलितों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी सवर्णों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है। कहानी यह भी सवाल उठाती है कि धर्म और धार्मिक ग्रंथों ने किस तरह जाति व्यवस्था को वैधता दी है। पुनर्जन्म, भाग्य और कर्मफल जैसी अवधारणाओं ने दलितों को शोषण झेलने के लिए मजबूर किया।

मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने दलितों के साथ यौन, आर्थिक और सामाजिक शोषण को धार्मिक रूप से जायज़ ठहराया। दलित महिलाओं पर हो रहे अत्याचार और दलितों की गरीबी, दोनों का मूल कारण यही सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था है। यह कहानी उस अन्यायपूर्ण तंत्र की ओर इशारा करती है, जिसने सदियों से दलितों को उनके अधिकारों से वंचित रखा है।

दलित समाज का संघर्ष:

भारतीय समाज में दलितों के प्रति सवर्णों का व्यवहार अत्यंत क्रूर, अमानवीय और असंवेदनशील रहा है। इतिहास के कई प्रसंग इस कटु सत्य की गवाही देते हैं। सदियों से दलित समुदाय को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित कर समाज के हाशिये पर धकेल दिया गया। भोजन और जल जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी यह वर्ग सवर्णों पर आश्रित रहा, क्योंकि उत्पादन के सभी साधनों-जैसे ज़मीन, जल, जंगल-पर

हमेशा सवर्णों का नियंत्रण रहा। जिनके पास संसाधनों की सत्ता थी, उनके ही अधीन रहकर दलितों को अपना जीवन बिताना पड़ा।

दलितों के इस पीड़ादायक यथार्थ को साहित्य में सबसे पहले प्रभावशाली रूप में उठाने का श्रेय प्रेमचंद को जाता है। प्रेमचंद न केवल हिंदी साहित्य में प्रगतिशील चेतना के अग्रदूत रहे, बल्कि उन्होंने दलितों के साथ हो रहे अन्याय और भेदभाव को अपनी रचनाओं में उकेर कर एक नई दृष्टि प्रदान की। जब प्रेमचंद अपनी चर्चित कहानी 'ठाकुर का कुआं' लिख रहे थे, उसी दौर में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने दलित चेतना को जगाने और समानता की लड़ाई के लिए एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का आरंभ कर दिया था।

1927 सन् में महाराष्ट्र के महाड कस्बे में चवदार तालाब सत्याग्रह के माध्यम से डॉ. आंबेडकर ने दलितों के मानवाधिकारों की लड़ाई छेड़ी। इसके बाद नासिक में कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए भी उन्होंने एक ऐतिहासिक आंदोलन किया, जिसमें हजारों दलितों ने भाग लिया। इन आंदोलनों ने पूरे भारत में एक नई सामाजिक चेतना का संचार किया। प्रेमचंद की कहानियों में इस बदलाव का असर स्पष्ट दिखाई देता है। दलित विषयों पर उनकी कहानियों में जो संवेदनशीलता और विद्रोही स्वर उभरकर आते हैं, वे संभवत: इस सामाजिक क्रांति से प्रभावित थे। प्रेमचंद ने 'ठाकुर का कुआ' (1932), 'दूध का दाम' (1934) और 'सद्गति' (1937) जैसी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन की पीड़ा, संघर्ष और उत्पीड़न को रचनात्मक रूप दिया।

धार्मिक भेदभाव:

'ठाकुर का कुआँ' प्रेमचंद की एक ऐसी कहानी है, जो समाज में व्याप्त छुआछूत, जातीय भेदभाव और अछूतों की दयनीय स्थिति को उजागर करती है। कहानी के केंद्र में अछूत दंपति - जोखू और गंगी-हैं, जो पानी जैसी बुनियादी जरूरत के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं। जोखू बीमार है और प्यास से बेहाल है, लेकिन गंगी द्वारा लाया गया पानी सड़ांध मार रहा है। संभवत: किसी जानवर के कुएँ में गिर जाने से वह दूषित हो गया है। गाँव में सभी कुएँ सवर्णों के अधिकार में हैं-ठाकुर, साहू और ब्राह्मणों के। अछूतों को वहाँ से पानी लेने की इजाजत नहीं है। गंगी जानती है कि गंदा पानी पीने से बीमारी बढ़ सकती है, लेकिन अशिक्षा के कारण यह नहीं जानती कि पानी उबालने से उसका असर कम किया जा सकता है। वह साफ पानी लाने की ठानती है, लेकिन जोखू डराता है कि ठाकुर के कुएँ पर गई तो पिटकर आएगी। कहानी में प्रेमचंद दिखाते हैं कि अछूतों की इतनी खराब आर्थिक स्थिति है कि वे अपना कुआँ भी नहीं खुदवा सकते। समाज की ऊँची जातियाँ अछूतों की पीड़ा, उनकी मौत और जीवन के संघर्षों से पूरी तरह बेपरवाह हैं। जोखू कहता है, ''मर भी जाएँ तो कोई झाँकने नहीं आता।''

गंगी के मन में विद्रोह उठता है- ''हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँचे?'' वह सवर्णों की धार्मिक आड़ में छुपी पाखंडपूर्ण जीवनशैली पर सवाल उठाती है। वह चाहती है कि बदलाव हो, लेकिन अंत में ठाकुर के कुएँ से बिना पानी लिए लौट आती है-यह समाज की क्रूर सच्चाई के आगे उसके विवश समर्पण को दर्शाता है। प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से अछूतों की पीड़ा, जातीय अन्याय और सामाजिक व्यवस्था की अमानवीयता को बेहद प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

स्त्री की स्थिति:

'ठाकुर का कुआं' में एक महत्वपूर्ण दृश्य है, जहाँ गंगी कुएँ के पीछे छिपकर पानी लेने का सही समय देखती है। इसी दौरान, दो सवर्ण महिलाएँ बेझिझक कुएँ पर चढ़कर पानी निकाल रही होती हैं। वे पुरुषों के अन्यायपूर्ण व्यवहार पर गुस्सा जाहिर करती हैं, जो महिलाओं को दासता जैसी स्थिति में रखते हैं। इन सवर्ण स्त्रियों के लिए कुएँ से पानी निकालना उनका अधिकार है, परन्तु वे भी विवाह और समाज में पुरुष प्रधानता से असंतुष्ट हैं। एक महिला कहती है, ''जब ताज़ा पानी पीने का हुक्म आता है, तो लगता है जैसे हम नौकरानी हों।'' यह बात उनकी पीड़ा और अपमान की गवाही देती है, पर वे खुलकर विरोध नहीं कर पातीं। उनका मानना है कि पुरुषों को महिलाओं की स्वतंत्रता से जलन होती है। यह पूरी स्थिति सवर्ण पुरुष वर्ग की सत्ता और उत्पीड़न को

दर्शाती है, जो महिलाओं को सिर्फ गुलाम बनाना चाहता है।

इसके विपरीत, गंगी एक अस्पृश्य स्त्री है, जिसे कुएँ को छूना भी अपराध माना जाता है। उसकी जातिगत स्थिति उसे समाज में बहिष्कार और अपमान का शिकार बनाती है। जन्म से तय जाति व्यवस्था के कारण गंगी को सवर्णों के साथ बराबरी का अधिकार नहीं मिलता। ब्राह्मणवादी सोच में अछूत को पशुओं से भी नीचा माना गया है। धार्मिक ग्रंथ और मनुस्मृति ने जाति और स्त्री के अधिकार जन्म से निर्धारित कर दिए हैं, जिससे वे सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक रूप से बाधित रहती हैं। महात्मा गांधी भी जाति-प्रथा को जन्म से तय व्यवस्था मानते थे और इसे तोड़ने के खिलाफ थे। यह प्रसंग जाति और लिंग के दोहरे शोषण को दर्शाता है, जहाँ स्त्रियाँ सामाजिक नियमों और पुरुष सत्ता के दवाब में दबकर जीने को मजबूर हैं। प्रेमचंद ने इसे इस तरह प्रस्तुत किया है कि पाठक समाज की इन कड़वी सच्चाइयों को समझ सकें।

K 12.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तरः 31 जुलाई, 1880 ई. काशी के पास स्थित लमही गाँव में प्रेमचंद का जन्म हुआ था।

प्रश्न 2 का उत्तरः 'सोजे वतन' सन् 1908 में प्रकाशित हुआ था।

प्रश्न 3 का उत्तरः प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यास हैं- गोदान, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन।

प्रश्न 4 का उत्तरः प्रेमचंद के प्रमुख कहानियों के नाम हैं- ईदगाह, कफन, पूस की रात, नमक का दरोगा।

प्रश्न 5 का उत्तरः उन्होंने आम जन के दु:ख-दर्द, भूख, अत्याचार, अन्याय और सामाजिक विसंगतियों को अपनी कहानियों में जीवंत रूप में प्रस्तुत किया।

5 12.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- श्रीवास्तव, शिवनारायण (1969). उपन्यास सम्राट प्रेमचंद. नई दिल्ली: सूचना और प्रसारण विभाग, भारत सरकार.
- पाठक, जितेन्द्रनाथ (1955). कथाकार प्रेमचंद. बनारस: सरस्वती मंदिर.
- शर्मा, श्रीपति (1948). कहानी कला और प्रेमचंद. काशी: विद्या मंदिर.
- दीक्षित, डॉ. त्रिलोक नारायण (1952). प्रेमचंद. कानपुर: साहित्य निकेतन.
- गुरु, डॉ. राजेश्वर (1961). प्रेमचंद: एक अध्ययन. भोपाल: मध्यप्रदेशीय प्रचार समिति.
- शर्मा, डॉ. रामविलास (1952). प्रेमचंद: आलोचनात्मक परिचय. नई दिल्ली: मेंहरचंद मुंशीराम.
- शर्मा, डॉ. रामविलास (1952). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: मेंहरचंद मुंशीराम.
- गुप्त, डॉ. श्रीमती शीला (1972). प्रेमचंद और उनका साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन.
- कोहली, डॉ. नरेंद्र (1966). प्रेमचंद के साहित्य सिद्धांत. दिल्ली: अशोक प्रकाशन.
- प्रेमचंद (1953), मानसरोवर-समस्त कहानियों के आठ भागों का संकलन संपादन. बनारस: सरस्वती प्रेस.

M 12.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. 'ठाकुर का कुआँ' कहानी का प्रकशन कब हुआ था?
2. 'ठाकुर का कुआँ' कहानी के प्रमुख पात्र कौन-कौन से है?

3. ''साहित्य का काम है जीवन का संस्कार करना''–यह कथन किसका है?
4. प्रेमचंद के साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय किस प्रकार हुआ है?
5. जीवन से प्राप्त अनुभवों का प्रभाव में प्राप्त अनुभव प्रेमचंद के साहित्य में किस प्रकार प्रभावित करता है?

(ख) निम्नलिखित प्रशों का उत्तर लिखिए

1. उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में प्रेमचंद पर तैयार कीजिए।
2. प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।
3. प्रेमचंद के साहित्य में निहित सामाजिक यथार्थ को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
4. ठाकुर का कुआँ कहानी के सारांश को अपने शब्दों में लिखिए।
5. ठाकुर का कुआँ कहानी की समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
6. ठाकुर का कुआँ कहानी किस प्रकार सामाजिक यथार्थ को उजागर करता है, वर्तमान प्रसंग के साथ जोड़कर लिखिए।

****

इकाई-13 कानों में कंगना

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 कहानीकार का परिचय
13.4 कहानी का सार
13.5 कहानी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
13.6 'कानों में कंगना' कहानी का सार
13.7 'कानों में कंगना' कहानी की प्रमुख संवेदनाएँ
13.8 सारांश
13.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
13.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप—

- 'कानों में कंगना' कहानी के कथानक और विषय-वस्तु को समझ सकेंगे।
- कहानी में निहित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पात्रों के माध्यम से स्त्री-जीवन की समस्याओं और संवेदनाओं को जान पाएंगे।
- कहानी के प्रतीकात्मक अर्थ और उसके संदेश को समझ सकेंगे।
- लेखक की शैली, भाषा और शिल्पगत विशेषताओं का मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

हिंदी कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है, और आधुनिक काल में कई कहानीकारों ने इसे अधिक गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है, जिनमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का विशेष स्थान माना जाता है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह उन रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त असमानताओं, विशेष रूप से स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं को अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे केवल बाहरी घटनाओं का वर्णन नहीं करते, बल्कि व्यक्ति के भीतर चल रहे भावनात्मक संघर्ष, उसकी इच्छाओं, कुंठाओं और सामाजिक दबावों के बीच उसके टूटते-बनते व्यक्तित्व को गहराई से प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ पाठक को केवल कहानी सुनाती नहीं हैं, बल्कि उसे सोचने और महसूस करने के लिए भी प्रेरित करती हैं, और लेखक की यही संवेदनशील दृष्टि उन्हें हिंदी कथा-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

इसी संदर्भ में स्त्री जीवन राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के साहित्य का एक महत्वपूर्ण केंद्र बनकर उभरता है, जहाँ वे यह दिखाते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री को लंबे समय तक सीमित भूमिकाओं में बाँधकर उसकी स्वतंत्रता, उसकी सोच और उसकी पहचान को किस प्रकार नियंत्रित किया गया है। उनके लेखन में स्त्री के जीवन में उपस्थित दमन, उपेक्षा, अकेलापन और आत्म-अभिव्यक्ति की कमी जैसी स्थितियाँ अत्यंत

संवेदनशील ढंग से सामने आती हैं। 'कानों में कंगना' कहानी इसी दृष्टि से उनकी एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें उन्होंने कंगन जैसे सामान्य प्रतीक के माध्यम से स्त्री के जीवन पर लगाए गए अदृश्य बंधनों को उजागर किया है, और यह दिखाया है कि जब किसी स्त्री को उसके व्यक्तित्व के बजाय केवल उसके बाहरी रूप और सजावट के आधार पर आँका जाता है, तो उसका अस्तित्व धीरे–धीरे सीमित होकर रह जाता है, और वह अपने ही जीवन में स्वतंत्र निर्णय लेने में असमर्थ हो जाती है, जिससे यह कहानी केवल एक घटना का चित्रण न रहकर एक गहरे सामाजिक और मानवीय सत्य का उद्घाटन बन जाती है।

3.3 कहानीकार का परिचय

'कानों में कंगना' के लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिंदी साहित्य के उन संवेदनशील और यथार्थवादी रचनाकारों में गिने जाते हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की गहराई में छिपी सच्चाइयों को अत्यंत सरल, सहज और प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया। उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी कृत्रिमता या बनावटीपन से दूर रहकर सीधे जीवन के अनुभवों से जुड़ता है, जिसके कारण उनकी रचनाएँ पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। विशेष रूप से उन्होंने मानव जीवन की भावनात्मक जटिलताओं, रिश्तों की उलझनों और स्त्री जीवन की विडंबनाओं को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में स्त्री केवल एक पात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है जो अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है, और इसी कारण उनकी रचनाएँ सामाजिक चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का जन्म एक साधारण परिवेश में हुआ, जहाँ उन्होंने जीवन की वास्तविकताओं को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया, यही कारण है कि उनके साहित्य में जीवन की सच्चाई बिना किसी आडंबर के स्वाभाविक रूप में दिखाई देती है। उन्होंने समाज में व्याप्त असमानताओं, वर्गभेद, पितृसत्तात्मक सोच और मानवीय संबंधों में बढ़ती जटिलताओं को अपने लेखन का विषय बनाया और उन्हें गहरी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया। उनकी रचनाओं में व्यक्ति के भीतर चलने वाले मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबावों के कारण उत्पन्न संघर्ष और संबंधों की बदलती प्रकृति का सजीव चित्रण मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे केवल कहानीकार ही नहीं बल्कि समाज के सजग और संवेदनशील निरीक्षक भी थे, जिनकी दृष्टि जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को पहचानने और उन्हें साहित्य के माध्यम से सामने लाने में सक्षम थी।

13.4 कहानी का सार

'कानों में कंगना' कहानी एक ऐसे स्त्री जीवन की मार्मिक कथा प्रस्तुत करती है, जो बाहर से सुसज्जित, सम्पन्न और व्यवस्थित दिखाई देता है, किंतु भीतर से गहरी पीड़ा, अकेलेपन और असंतोष से भरा हुआ है। कहानी की नायिका को परिवार और समाज द्वारा आभूषणों से सजाया जाता है, विशेष रूप से उसके कानों में कंगन पहनाए जाते हैं, जो उसके सौंदर्य और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माने जाते हैं, लेकिन धीरे–धीरे यही आभूषण उसके लिए एक अदृश्य बंधन का रूप ले लेते हैं। वह स्वयं को इस सजावट के बीच घुटता हुआ महसूस करती है, क्योंकि उसके जीवन के निर्णय उसके अपने नहीं होते, बल्कि दूसरों द्वारा तय किए जाते हैं, और इस प्रक्रिया में उसकी इच्छाएँ, भावनाएँ और आकांक्षाएँ कहीं पीछे छूट जाती हैं।

कहानी आगे बढ़ते हुए यह स्पष्ट करती है कि नायिका का जीवन केवल बाहरी दिखावे तक सीमित कर दिया गया है, जहाँ उसे एक सजावटी वस्तु की तरह देखा जाता है, न कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में। उसके भीतर एक गहरा द्वंद्व चलता रहता है—एक ओर वह अपने सामाजिक कर्तव्यों और परंपराओं से बंधी हुई है, और दूसरी ओर उसके मन में स्वतंत्र जीवन जीने की तीव्र इच्छा जागती रहती है। यह संघर्ष उसे भीतर ही भीतर तोड़ने लगता है, और वह अपने अस्तित्व की तलाश में खुद से प्रश्न करने लगती है कि क्या उसका जीवन केवल दूसरों

की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए ही है। उसके मन की यह बेचैनी और असंतोष कहानी में एक गहरी संवेदनात्मक धारा के रूप में प्रवाहित होता है, जो पाठक को उसके दर्द से जोड़ देता है।

कहानी इस स्थिति को सामने लाती है जहाँ नायिका को यह अहसास होने लगता है कि बाहरी आभूषण और सामाजिक प्रतिष्ठा उसके जीवन की सच्ची खुशी नहीं दे सकते, क्योंकि उसके भीतर की स्वतंत्रता और आत्मसम्मान ही उसके अस्तित्व का वास्तविक आधार हैं। कंगन, जो प्रारंभ में केवल सौंदर्य का प्रतीक प्रतीत होते हैं, अब उसके लिए बंधन और कैद के प्रतीक बन जाते हैं, और वह इस सत्य को समझने लगती है कि जब तक उसे अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता नहीं मिलती, तब तक कोई भी बाहरी वैभव उसके जीवन को पूर्ण नहीं बना सकता। इस प्रकार कहानी एक गहरे सामाजिक प्रश्न को उठाते हुए पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि वास्तविक सुख और सम्मान केवल बाहरी सजावट में नहीं, बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्मस्वीकृति और उसके अपने अस्तित्व की पहचान में निहित होता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

'कानों में कंगना' कहानी आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की उस संवेदनशील धारा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें स्त्री जीवन की आंतरिक पीड़ा, सामाजिक बंधनों और उसके अस्तित्वगत संघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। यह कहानी उस समाज की मानसिकता को उजागर करती है, जहाँ स्त्री को उसके व्यक्तित्व, उसकी इच्छाओं और उसकी स्वतंत्र सोच के बजाय उसके बाहरी सौंदर्य और आभूषणों के आधार पर आँका जाता है, और इसी प्रक्रिया में उसका वास्तविक अस्तित्व कहीं पीछे छूट जाता है। कहानी में 'कंगन' का प्रतीक इस विडंबना को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है, जो एक ओर स्त्री की सजावट और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर उसके जीवन पर लगाए गए अदृश्य बंधनों और उसकी सीमित स्वतंत्रता का भी संकेत देता है।

13.5 कहानी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

'कानों में कंगना' कहानी भारतीय समाज की उस मानसिकता को दर्शाती है जहाँ स्त्री को उसके आभूषणों और बाहरी सौंदर्य से आँका जाता है, और यही दृष्टिकोण आगे चलकर उसके पूरे जीवन को प्रभावित करता है, क्योंकि वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं बल्कि एक सजी-संवरी छवि के रूप में देखी जाने लगती है, जिससे उसके अस्तित्व, उसकी भावनाओं और उसकी इच्छाओं का महत्व धीरे-धीरे कम होता चला जाता है; इसी आधार पर यह कहानी पितृसत्तात्मक समाज, स्त्री की स्वतंत्रता के अभाव, सामाजिक परंपराओं के बंधन और भावनात्मक उपेक्षा जैसे अनेक गंभीर मुद्दों को गहराई से सामने लाती है।

1. **पितृसत्तात्मक समाज:**

   इस कहानी में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की वह कठोर सच्चाई सामने आती है, जहाँ स्त्री के जीवन का नियंत्रण उसके अपने हाथों में न होकर समाज और परिवार के पुरुषों के हाथों में होता है। नायिका की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि उसके जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय—चाहे वे व्यक्तिगत हों या सामाजिक—उसकी इच्छा के बिना ही तय कर दिए जाते हैं, और उसे उन निर्णयों को स्वीकार करना ही पड़ता है। इस व्यवस्था में स्त्री की भूमिका केवल परंपराओं को निभाने और परिवार की मर्यादा को बनाए रखने तक सीमित कर दी जाती है, जिससे उसका अपना व्यक्तित्व और उसकी स्वतंत्र सोच धीरे-धीरे दब जाती है और वह एक निर्धारित ढाँचे में बंधकर जीने के लिए विवश हो जाती है।

2. स्त्री की स्वतंत्रता का अभाव:

कहानी में नायिका का जीवन इस बात का सजीव उदाहरण है कि किस प्रकार स्त्री को अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती। वह अपने मन की इच्छाओं, सपनों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने की चाह तो रखती है, लेकिन सामाजिक दबाव और पारिवारिक नियंत्रण उसे ऐसा करने से रोकते हैं। परिणामस्वरूप उसके भीतर एक गहरा मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है, जिसमें वह एक ओर अपने कर्तव्यों को निभाने की कोशिश करती है और दूसरी ओर अपनी स्वतंत्रता की आकांक्षा से जूझती रहती है, और यही द्वंद्व उसके जीवन को धीरे–धीरे भीतर से खोखला कर देता है।

3. सामाजिक परंपराएँ और बंधन:

इस कहानी में यह भी दिखाया गया है कि सामाजिक परंपराएँ किस प्रकार स्त्री के जीवन को नियंत्रित करती हैं और उसे एक निश्चित सीमा के भीतर बाँध देती हैं। ये परंपराएँ इतनी मजबूत होती हैं कि उनका विरोध करना या उनसे अलग हटकर सोच पाना भी कठिन हो जाता है। नायिका भी इन्हीं परंपराओं के दबाव में अपना जीवन व्यतीत करती है, जहाँ उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं और विचारों के लिए कोई स्थान नहीं बचता, और वह समाज द्वारा निर्धारित नियमों और मर्यादाओं के भीतर ही अपने अस्तित्व को ढूँढ़ने का प्रयास करती रहती है, चाहे इसके लिए उसे अपनी भावनाओं का त्याग ही क्यों न करना पड़े।

4. भावनात्मक उपेक्षा:

कहानी का एक अत्यंत संवेदनशील पक्ष यह है कि नायिका को बाहरी रूप से सुसज्जित और सुंदर बनाने पर तो ध्यान दिया जाता है, लेकिन उसकी भावनाओं, उसकी मानसिक स्थिति और उसके भीतर के दर्द को समझने का प्रयास नहीं किया जाता। वह अपने ही घर और समाज के बीच होते हुए भी अकेलापन और उपेक्षा का अनुभव करती है, क्योंकि कोई भी उसकी वास्तविक समस्याओं और उसके आंतरिक संघर्ष को गंभीरता से नहीं लेता। इस भावनात्मक उपेक्षा के कारण उसका जीवन केवल एक औपचारिकता बनकर रह जाता है, जहाँ वह दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करती रहती है, लेकिन स्वयं के लिए जीने का अवसर उसे नहीं मिल पाता।

5. कंगन का प्रतीकात्मक अर्थ:

कहानी में 'कंगन' एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में उभरता है, जो स्त्री के जीवन की दोहरी स्थिति को एक साथ व्यक्त करता है। एक ओर यह उसके सौंदर्य, उसकी सजावट और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर यह उसके ऊपर लगाए गए बंधनों और उसकी सीमित स्वतंत्रता का भी संकेत देता है। नायिका के लिए ये कंगन धीरे–धीरे एक ऐसे बंधन में बदल जाते हैं, जो उसे यह एहसास कराते हैं कि जिस सजावट को उसकी पहचान बनाया गया है, वही उसकी स्वतंत्रता को भी सीमित कर रही है, और इसी विरोधाभास के माध्यम से कहानी स्त्री जीवन की गहरी विडंबना को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. कहानी का मुख्य विषय क्या है?

प्रश्न 2. कंगन का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?

प्रश्न 3. नायिका का चरित्र किन विशेषताओं को दर्शाता है?

13.6 'कानों में कंगना' कहानी की प्रमुख संवेदनाएँ

'कानों में कंगना' कहानी की प्रमुख संवेदनाएँ स्त्री जीवन की उस गहरी और अनकही पीड़ा से जुड़ी हुई हैं, जो बाहरी चमक-दमक के पीछे छिपी रह जाती है, जहाँ नायिका सुसज्जित, व्यवस्थित और सामाजिक रूप से स्वीकार्य दिखाई देती है, किंतु उसके भीतर एक ऐसा खालीपन और असंतोष लगातार बना रहता है जिसे कोई देख नहीं पाता। उसके जीवन में जो कुछ दिखाई देता है वह वास्तविकता नहीं, बल्कि समाज द्वारा निर्मित एक आडंबर है, जिसमें उसकी अपनी इच्छाएँ, भावनाएँ और संवेदनाएँ दबकर रह जाती हैं, और इसी कारण वह अपने ही जीवन में एक मौन उपस्थिति बनकर रह जाती है, जहाँ उसकी पहचान उसके व्यक्तित्व से नहीं बल्कि उसके बाहरी रूप और सजावट से निर्धारित की जाती है।

कहानी में एक गहरी संवेदना उस मानसिक द्वंद्व के रूप में भी उभरती है, जो नायिका के भीतर लगातार चलता रहता है, जहाँ एक ओर वह सामाजिक परंपराओं, मर्यादाओं और अपेक्षाओं को निभाने के लिए बाध्य है, वहीं दूसरी ओर उसके भीतर स्वतंत्र जीवन जीने, अपने अस्तित्व को पहचानने और अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने की आकांक्षा भी उतनी ही प्रबल है। यह संघर्ष उसे भीतर ही भीतर तोड़ता रहता है और वह अपने ही जीवन से असंतुष्ट होने लगती है, क्योंकि वह यह महसूस करती है कि उसके निर्णय उसके अपने नहीं हैं, बल्कि दूसरों द्वारा निर्धारित किए गए हैं, और इस प्रक्रिया में उसकी व्यक्तिगत पहचान धीरे-धीरे समाप्त होती चली जाती है।

इसके साथ ही कहानी में भावनात्मक उपेक्षा की संवेदना अत्यंत मार्मिक रूप में सामने आती है, जहाँ नायिका को बाहरी रूप से साज-सज्जा और सामाजिक सम्मान तो प्राप्त होता है, लेकिन उसकी भावनाओं, उसके अकेलेपन और उसके भीतर चल रहे संघर्ष को समझने वाला कोई नहीं होता। उसके आसपास संबंध तो हैं, लेकिन उनमें आत्मीयता और संवेदनशीलता का अभाव है, जिसके कारण वह भीड़ में रहते हुए भी स्वयं को अकेला महसूस करती है, और उसका जीवन धीरे-धीरे एक औपचारिकता बनकर रह जाता है, जहाँ वह दूसरों की अपेक्षाओं को निभाती रहती है, किंतु अपने लिए जीने का अवसर उसे नहीं मिल पाता, और यही संवेदनात्मक स्थिति इस कहानी को अत्यंत गहराई और प्रभाव प्रदान करती है।

13.7 'कानों में कंगना' कहानी की समीक्षा

विषय-वस्तुः

कानों में कंगना' कहानी की विषय-वस्तु मूलतः स्त्री जीवन की उस जटिल और विडंबनापूर्ण स्थिति को सामने लाती है, जहाँ वह बाहरी रूप से सम्मानित, सुसज्जित और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित दिखाई देती है, लेकिन उसके भीतर स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय और व्यक्तिगत इच्छाओं का गहरा अभाव होता है। यह कहानी समाज की उस संरचना को उजागर करती है, जिसमें स्त्री को एक निश्चित भूमिका में बाँध दिया जाता है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह उसी दायरे में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करे। नायिका का जीवन इस व्यवस्था का सजीव उदाहरण बन जाता है, जहाँ उसके जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय—चाहे वे व्यक्तिगत हों या सामाजिक—उसकी इच्छा के अनुसार नहीं, बल्कि परिवार और समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप तय किए जाते हैं। इस प्रकार उसकी पहचान धीरे-धीरे उसके अपने व्यक्तित्व से हटकर एक सामाजिक छवि तक सीमित हो जाती है, और वह अपने ही जीवन में एक ऐसी भूमिका निभाने लगती है जो वास्तव में उसकी अपनी नहीं होती। यह स्थिति केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस व्यापक सामाजिक मानसिकता की प्रतीक है जिसमें स्त्री को उसके वास्तविक अस्तित्व के बजाय उसके बाहरी स्वरूप और निर्धारित कर्तव्यों के आधार पर आँका जाता है, जिससे उसका आत्मसम्मान और उसकी स्वतंत्र सोच दोनों प्रभावित होते हैं।

कहानी की विषय-वस्तु का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह केवल बाहरी परिस्थितियों या सामाजिक संरचना का चित्रण नहीं करती, बल्कि स्त्री के भीतर चलने वाले उस गहरे मानसिक और भावनात्मक संघर्ष को

भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है, जो उसके जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाता है। नायिका के भीतर एक निरंतर द्वंद्व चलता रहता है, जहाँ एक ओर वह सामाजिक मर्यादाओं, पारिवारिक दायित्वों और परंपराओं को निभाने के लिए बाध्य है, वहीं दूसरी ओर उसके भीतर स्वतंत्र रूप से जीने, अपने निर्णय स्वयं लेने और अपने अस्तित्व को पहचानने की तीव्र आकांक्षा भी विद्यमान रहती है। यह आंतरिक संघर्ष उसे भीतर ही भीतर विचलित करता है और धीरे-धीरे उसके जीवन को एक गहरी मानसिक पीड़ा में परिवर्तित कर देता है, क्योंकि वह न तो पूरी तरह अपने कर्तव्यों से मुक्त हो पाती है और न ही अपनी इच्छाओं को पूर्ण रूप से जी पाती है। इस प्रकार कहानी यह स्पष्ट करती है कि स्त्री का संघर्ष केवल बाहरी बंधनों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उसके मन और उसकी चेतना के स्तर पर भी गहराई से व्याप्त है, और यही संघर्ष उसे एक ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है जहाँ वह अपने ही अस्तित्व को खोजने के लिए निरंतर प्रयासरत रहती है, जिससे यह कहानी एक व्यापक सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करते हुए पाठक को गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करती है।

प्रतीकात्मकता:

'कानों में कंगना' कहानी की सबसे प्रभावशाली विशेषताओं में इसकी प्रतीकात्मकता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, जो इस कहानी को केवल एक साधारण कथानक से आगे बढ़ाकर गहरे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों से जोड़ देती है। यहाँ 'कंगन' केवल एक आभूषण के रूप में उपस्थित नहीं है, बल्कि यह स्त्री के जीवन पर लगाए गए उन अदृश्य बंधनों का सशक्त प्रतीक बन जाता है, जो उसे एक ओर सजाते और संवारते हैं, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की क्षमता को सीमित भी करते हैं। बाहरी दृष्टि से यह कंगन उसकी सुंदरता, उसके स्त्रीत्व और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है, लेकिन जब इसके भीतर छिपे अर्थों को समझा जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि यही आभूषण उसके जीवन की सीमाओं और बंधनों को भी दर्शाता है। इस प्रकार कंगन एक द्वंद्वात्मक प्रतीक के रूप में सामने आता है, जिसमें आकर्षण और नियंत्रण, सौंदर्य और बंधन—दोनों एक साथ उपस्थित रहते हैं, और यही विरोधाभास इस कहानी की गहराई को और अधिक बढ़ा देता है।

कहानी में यह प्रतीक इस तथ्य को अत्यंत मार्मिक ढंग से उजागर करता है कि समाज में स्त्री को सजाने और उसके बाहरी रूप को महत्व देने की जो प्रवृत्ति है, वही कई बार उसके बंधन का कारण बन जाती है। जो वस्तुएँ देखने में सुंदर, आकर्षक और मूल्यवान प्रतीत होती हैं, वे ही धीरे-धीरे उसके लिए एक ऐसी कैद का रूप ले लेती हैं, जिससे वह स्वयं भी अनभिज्ञ रह जाती है। नायिका के संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि वह जिस सजावट को अपनी पहचान समझती है, वही उसकी स्वतंत्रता को सीमित कर रही है, और वह इस विरोधाभास को पूरी तरह समझ भी नहीं पाती। इस प्रकार कंगन का प्रतीक केवल एक व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह पूरे सामाजिक ढाँचे की उस मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है जहाँ स्त्री की पहचान उसके आभूषणों, उसके बाहरी स्वरूप और उसकी सामाजिक भूमिका से जुड़ी होती है, न कि उसके वास्तविक व्यक्तित्व, उसकी इच्छाओं और उसकी स्वतंत्रता से। यही कारण है कि यह प्रतीक कहानी को एक व्यापक अर्थ प्रदान करता है और पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि समाज में स्थापित अनेक मान्यताएँ वास्तव में किस प्रकार व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करती हैं।

पात्र-चित्रण:

'कानों में कंगना' कहानी में नायिका का चरित्र अत्यंत संवेदनशील, यथार्थवादी और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ नायिका को हम सुशीला के रूप में देख सकते हैं, जो केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि उस समूचे स्त्री समाज का प्रतिनिधित्व करती है, जो बाहरी रूप से सुसज्जित, संतुलित और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित दिखाई देती हैं, किंतु भीतर से गहरे मानसिक बंधनों और संघर्षों से गुजरती रहती हैं। सुशीला का जीवन इस बात का सजीव उदाहरण बन जाता है कि किस प्रकार एक स्त्री अपने ही जीवन में अपनी इच्छाओं,

आकांक्षाओं और सपनों को दबाकर दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार जीने के लिए विवश हो जाती है। उसके आसपास उपस्थित पात्र जैसे उसके पति रामनाथ और परिवार के अन्य सदस्य भी उसी सामाजिक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ स्त्री को समझने के बजाय उसे एक निश्चित भूमिका में देखने की आदत बन चुकी होती है, और इसी कारण सुशीला का व्यक्तित्व धीरे-धीरे सीमित होता चला जाता है।

सुशीला के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसके भीतर चलने वाला वह गहरा मानसिक द्वंद्व है, जो उसे एक ओर अपने सामाजिक कर्तव्यों और पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए प्रेरित करता है, वहीं दूसरी ओर उसके भीतर अपने अस्तित्व को पहचानने और स्वतंत्र रूप से जीने की तीव्र इच्छा भी बनी रहती है। वह अपने पति रामनाथ और परिवार की अपेक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करती है, लेकिन साथ ही उसके भीतर यह प्रश्न भी उठता रहता है कि क्या उसका जीवन केवल दूसरों के लिए ही है या उसका अपना भी कोई अस्तित्व है। यही आंतरिक संघर्ष उसके चरित्र को जीवंत और प्रभावशाली बनाता है, क्योंकि वह केवल परिस्थितियों का शिकार नहीं है, बल्कि वह उन्हें समझने और उनसे बाहर निकलने की एक मौन कोशिश भी करती है।

कहानी में अन्य पात्र भी इस चरित्र-चित्रण को और अधिक स्पष्ट और प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रामनाथ का चरित्र उस सामान्य पुरुष मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है, जो स्त्री को प्रेम और सम्मान देने के बावजूद उसे पूर्ण स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं होता, जबकि परिवार के अन्य सदस्य समाज की उन परंपराओं और मान्यताओं को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं, जो स्त्री के जीवन को सीमित कर देती हैं। इन पात्रों के बीच सुशीला का चरित्र और अधिक उभरकर सामने आता है, जहाँ वह बाहरी रूप से सब कुछ स्वीकार करती हुई दिखाई देती है, लेकिन भीतर से लगातार एक संघर्ष का अनुभव करती रहती है।

सुशीला का चरित्र केवल एक स्त्री की कहानी नहीं रह जाता, बल्कि वह उन असंख्य स्त्रियों का प्रतीक बन जाता है, जो समाज में रहते हुए अपने अस्तित्व की पहचान के लिए संघर्ष कर रही हैं। उसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री का जीवन केवल बाहरी परिस्थितियों से ही प्रभावित नहीं होता, बल्कि उसके भीतर चलने वाले मानसिक और भावनात्मक संघर्ष भी उसकी वास्तविक स्थिति को निर्धारित करते हैं, और यही बात इस कहानी के पात्र-चित्रण को अत्यंत गहराई और यथार्थता प्रदान करती है।

भाषा-शैली:

'कानों में कंगना' कहानी की भाषा-शैली इसकी सबसे सशक्त विशेषताओं में से एक है, जो पूरी कथा को स्वाभाविकता, आत्मीयता और प्रभावशीलता प्रदान करती है। लेखक ने यहाँ अत्यंत सरल, सहज और जीवन के निकट भाषा का प्रयोग किया है, जिससे कहानी पढ़ते समय किसी प्रकार की जटिलता या कृत्रिमता का अनुभव नहीं होता, बल्कि पाठक सीधे कथा के वातावरण में प्रवेश कर जाता है। इस भाषा में न तो अनावश्यक अलंकारों का बोझ है और न ही दुरूह शब्दावली का प्रयोग, बल्कि यह सामान्य बोलचाल की उस शैली के करीब है जो दैनिक जीवन में स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त होती है। इसी कारण पाठक को यह कहानी केवल पढ़ी हुई नहीं लगती, बल्कि वह इसे अपने आसपास घटित होती हुई महसूस करने लगता है, और यही विशेषता इसे अधिक प्रभावशाली बना देती है।

इस कहानी की भाषा में भावनाओं की अभिव्यक्ति अत्यंत स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण है, जहाँ हर वाक्य अपने आप में एक अनुभव की तरह सामने आता है। लेखक ने संवादों, वर्णनों और मनोभावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे कृत्रिम न लगकर जीवन की वास्तविकता से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। नायिका सुशीला के मन में उठने वाले विचार, उसकी मौन पीड़ा और उसके भीतर चलने वाला द्वंद्व भाषा के माध्यम से इतने सहज ढंग से व्यक्त हुआ है कि पाठक उसके अनुभवों से स्वत: जुड़ जाता है। इस प्रकार भाषा केवल कथा को आगे बढ़ाने का माध्यम नहीं रहती, बल्कि वह स्वयं संवेदना का वाहक बन जाती है, जो पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है और उसे कहानी के भावात्मक संसार में पूरी तरह डुबो देती है।

भाषा-शैली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता उसकी सजीवता और आत्मीयता है, जो कहानी को केवल पठनीय ही नहीं बल्कि स्मरणीय भी बना देती है। लेखक ने जिस प्रकार से छोटे-छोटे वाक्यों, स्वाभाविक अभिव्यक्तियों और भावनात्मक सूक्ष्मताओं का प्रयोग किया है, उससे कथा में एक निरंतर प्रवाह बना रहता है और पाठक बिना किसी रुकावट के अंत तक उससे जुड़ा रहता है। इस भाषा में एक प्रकार की सहज ऊष्मा है, जो पाठक को यह अनुभव कराती है कि यह केवल एक कहानी नहीं, बल्कि जीवन का ही एक अंश है, जिसे वह स्वयं भी किसी न किसी रूप में जी चुका है या महसूस कर सकता है। यही कारण है कि इस कहानी की भाषा-शैली उसकी संवेदनात्मक शक्ति को कई गुना बढ़ा देती है और उसे साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली बनाती है।

सामाजिक संदेशः

'कानों में कंगना' कहानी अपने भीतर एक अत्यंत गहरा और विचारोत्तेजक सामाजिक संदेश समाहित किए हुए है, जो पाठक को समाज की स्थापित मान्यताओं, परंपराओं और सोच पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। यह कहानी स्पष्ट रूप से यह दिखाती है कि किस प्रकार समाज में स्त्री को उसके बाहरी सौंदर्य, आभूषणों और सामाजिक स्थिति के आधार पर आँकने की प्रवृत्ति आज भी गहराई से मौजूद है, जिसके कारण उसके वास्तविक व्यक्तित्व, उसकी सोच और उसकी भावनाओं को उचित महत्व नहीं मिल पाता। नायिका सुशीला के माध्यम से यह अनुभव होता है कि जब किसी व्यक्ति की पहचान उसके बाहरी रूप तक सीमित कर दी जाती है, तब उसका आंतरिक अस्तित्व धीरे-धीरे दबने लगता है, और वह स्वयं भी अपने जीवन की वास्तविक संभावनाओं से दूर होती चली जाती है।

कहानी यह भी संकेत करती है कि स्त्री को केवल सामाजिक मर्यादाओं और परंपराओं के भीतर बाँधकर रखना न केवल उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करता है, बल्कि उसके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को भी प्रभावित करता है। सुशीला के जीवन में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि वह अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को व्यक्त करने में असमर्थ रहती है, क्योंकि उसे यह सिखाया गया है कि उसका कर्तव्य केवल दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करना है। इस स्थिति में वह धीरे-धीरे अपने ही जीवन से अलग-थलग पड़ने लगती है, और उसका अस्तित्व केवल एक औपचारिकता बनकर रह जाता है, जो समाज के नियमों का पालन करता है लेकिन स्वयं के लिए जी नहीं पाता।

इस कहानी का एक महत्वपूर्ण संदेश यह भी है कि समाज को स्त्री को एक स्वतंत्र और संपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करना होगा, जिसके अपने विचार, अपनी इच्छाएँ और अपने निर्णय लेने का अधिकार है। जब तक स्त्री को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, तब तक उसके जीवन में वास्तविक सुख और संतोष की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती। कहानी इस बात को गहराई से स्थापित करती है कि बाहरी सजावट और सामाजिक प्रतिष्ठा कभी भी किसी व्यक्ति के आंतरिक सुख का विकल्प नहीं बन सकती, और यदि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता नहीं मिलती, तो उसका जीवन अधूरा ही रह जाता है।

यह कहानी केवल एक कथा के रूप में सीमित नहीं रहती, बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक चेतना को जन्म देती है, जो पाठक को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती है। यह कहानी यह प्रश्न उठाती है कि क्या हमारा समाज वास्तव में स्त्री को उसके अधिकारों, उसकी स्वतंत्रता और उसके व्यक्तित्व के साथ स्वीकार करने के लिए तैयार है, या हम अभी भी उसे केवल एक निश्चित भूमिका में बाँधकर देखने के आदी हैं। यही प्रश्न इस कहानी की सबसे बड़ी शक्ति है, क्योंकि यह केवल समस्या को प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि पाठक को उसके समाधान की दिशा में सोचने के लिए भी प्रेरित करता है, और इसी कारण यह कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक और प्रभावशाली बनी हुई है।

W अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 4. कहानी का सामाजिक संदेश क्या है?

प्रश्न 5. लेखक की भाषा-शैली की विशेषताएँ लिखिए।

13.8 सारांश

'कानों में कंगना' एक अत्यंत मार्मिक और विचारोत्तेजक कहानी है, जो स्त्री जीवन की उन गहरी वास्तविकताओं को उजागर करती है, जो प्राय: बाहरी आडंबर और सामाजिक दिखावे के पीछे छिपी रह जाती हैं, जहाँ एक ओर स्त्री को सजाया और सम्मानित दिखाया जाता है, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता, उसकी इच्छाएँ और उसका आत्मनिर्णय धीरे-धीरे सीमित कर दिए जाते हैं; कहानी में 'कंगन' का प्रतीक इसी विडंबना को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से सामने लाता है, जो एक साथ सौंदर्य और बंधन दोनों का संकेत देता है, और यह स्पष्ट करता है कि कई बार वही सजावट, जिसे स्त्री की पहचान माना जाता है, उसकी स्वतंत्रता के हनन का माध्यम भी बन जाती है; इस प्रकार यह कहानी केवल एक व्यक्तिगत अनुभव का चित्रण नहीं करती, बल्कि समाज की उस मानसिकता को भी उजागर करती है जो स्त्री को उसके वास्तविक व्यक्तित्व के बजाय बाहरी रूप में देखने की आदी हो चुकी है, और अंतत: यह पाठक को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती है कि वास्तविक सम्मान और सुख बाहरी आडंबर में नहीं, बल्कि स्वतंत्रता, आत्मस्वीकृति और व्यक्तित्व की पूर्णता में निहित होता है।

K 13.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: 'कानों में कंगना' कहानी का मुख्य विषय स्त्री जीवन की जटिलताओं, उसकी स्वतंत्रता के अभाव और सामाजिक बंधनों की समस्या को उजागर करना है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि समाज में स्त्री को उसके वास्तविक व्यक्तित्व के बजाय बाहरी स्वरूप और निर्धारित भूमिकाओं के आधार पर आँका जाता है, जिसके कारण उसका जीवन एक सीमित दायरे में सिमटकर रह जाता है और वह अपने ही अस्तित्व को पूरी तरह विकसित नहीं कर पाती।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: कहानी में 'कंगन' का प्रतीकात्मक अर्थ अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। यह केवल एक आभूषण नहीं, बल्कि स्त्री के जीवन पर लगाए गए सामाजिक बंधनों और नियंत्रण का प्रतीक है, जो एक ओर उसकी सजावट और सौंदर्य को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता के हनन और उसके सीमित अस्तित्व को भी प्रकट करता है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: कहानी की नायिका का चरित्र संवेदनशीलता, आंतरिक संघर्ष और सहनशीलता की विशेषताओं को दर्शाता है। वह उन सभी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज में बाहरी रूप से संतुलित दिखाई देती हैं, लेकिन भीतर से अनेक प्रकार की मानसिक पीड़ा और द्वंद्व से गुजर रही होती हैं, और अपने अस्तित्व तथा स्वतंत्रता की खोज में निरंतर संघर्षरत रहती हैं।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: इस कहानी का सामाजिक संदेश यह है कि स्त्री को केवल बाहरी सौंदर्य, आभूषणों या सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं आँकना चाहिए, बल्कि उसे एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है, जिसकी अपनी इच्छाएँ, भावनाएँ और निर्णय लेने का अधिकार होता है, और जब तक समाज इस दृष्टिकोण को नहीं

अपनाएगा, तब तक वास्तविक समानता और संतुलन संभव नहीं हो सकता।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: लेखक की भाषा-शैली सरल, सहज और प्रभावशाली है, जो सीधे पाठक के मन को प्रभावित करती है। इसमें किसी प्रकार की जटिलता या कृत्रिमता नहीं है, बल्कि सामान्य जीवन के निकट अभिव्यक्ति के माध्यम से गहरी संवेदनाओं को व्यक्त किया गया है, जिससे कहानी अधिक सजीव, प्रभावशाली और पाठक के लिए सहज रूप से बोधगम्य बन जाती है।

5 13.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- मधुरेश (2011). आधुनिक हिंदी कहानी. कानपुर: सुमित प्रकाशन.
- तिवारी, उषा (1996). स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- कमलेश्वर (1978). नई कहानी आंदोलन. दरियागंज: इशान प्रकाशन.
- राय, डॉ. गोपाल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- यादव, राजेन्द्र (2000). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- भंडारी, मन्नू (2005). श्रेष्ठ कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- नगेन्द्र, डॉ. (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स.
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- प्रियंवदा, उषा (2010). हिंदी कहानी और स्त्री चेतना. नई दिल्ली: ज्ञानपीठ प्रकाशन.
- पुष्पा, मैत्रेयी (2012). स्त्री लेखन और समाज. नई दिल्ली: किताब घर.
- वर्मा, निर्मल (2001). कहानी और आधुनिकता. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- राकेश, मोहन (1995). प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स.
- भारती, धर्मवीर (1998). साहित्य और समाज. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.

M13.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रशों के उत्तर लिखिए

1. कानों में कंगना' कहानी का मुख्य विषय लिखिए।
2. कहानी में प्रयुक्त प्रतीकों की व्याख्या कीजिए।
3. नायिका की मनोस्थिति का वर्णन कीजिए।
4. 'कानों में कंगना' कहानी के सामाजिक संदेश पर प्रकाश डालिए।
5. कहानी की भाषा-शैली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. 'कानों में कंगना' कहानी का सार विस्तार से लिखिए।
2. कहानी की सामाजिक प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. कहानी के प्रतीकात्मक पक्ष का विश्लेषण कीजिए।
4. कहानी के प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण पर प्रकाश डालिए।

5. कहानी की भाषा-शैली एवं शिल्पगत विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।

****

इकाई-14 भेड़िया

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 कहानीकार का परिचय
14.4 कहानी का कथानक
14.5 कहानी का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य
14.6 'भेड़िया' कहानी की भाव-प्रवृत्तियाँ
14.7 'भेड़िया' कहानी की समीक्षा
14.8 सारांश
14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
14.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप—

- 'भेड़िया' कहानी के कथानक और विषय-वस्तु को समझ सकेंगे।
- कहानी में निहित सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पात्रों के माध्यम से मानव प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के प्रभाव को समझ सकेंगे।
- कहानी के प्रतीकात्मक अर्थ और उसके संदेश को पहचान सकेंगे।
- लेखक की भाषा-शैली और शिल्पगत विशेषताओं का मूल्यांकन कर सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

हिंदी कथा-साहित्य की परंपरा में अनेक ऐसी कहानियाँ रची गई हैं, जो केवल घटनाओं का वर्णन भर नहीं करतीं, बल्कि उन घटनाओं के माध्यम से मनुष्य के भीतर छिपी प्रवृत्तियों, उसकी मनोवृत्तियों और उसके वास्तविक स्वभाव को उजागर करती हैं, और इसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले महत्वपूर्ण कहानीकारों में भुवनेश्वर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनकी रचनाओं में जीवन के यथार्थ का अत्यंत गहरा और संवेदनशील चित्रण मिलता है। 'भेड़िया' कहानी इसी दृष्टि से एक सशक्त और प्रभावशाली रचना के रूप में सामने आती है, जिसमें लेखक ने एक साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटना को आधार बनाकर जीवन के जटिल और बहुस्तरीय यथार्थ को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। भुवनेश्वर की विशेषता यह है कि वे सामान्य परिस्थितियों के भीतर छिपे असामान्य अनुभवों को पहचानते हैं और उन्हें इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि पाठक उन स्थितियों से गहराई से जुड़ने लगता है। इस कहानी में भी बाहरी रूप से भले ही एक जंगली जीव और मनुष्य के बीच संबंध या टकराव दिखाई देता हो, लेकिन इसके भीतर मनुष्य के मन में बसे भय, असुरक्षा और जीवन-संघर्ष का व्यापक चित्र उभरकर सामने आता है, जो यह संकेत करता है कि बाहरी परिस्थितियाँ किस प्रकार व्यक्ति की मानसिक संरचना और उसके व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

भुवनेश्वर की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक गहराई और यथार्थवादी दृष्टिकोण का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है, और 'भेड़िया' कहानी इसका सशक्त उदाहरण है, जहाँ 'भेड़िया' एक अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुस्तरीय

प्रतीक के रूप में उभरता है। यह केवल किसी बाहरी खतरे या जंगली जीव का संकेत नहीं देता, बल्कि यह मनुष्य के भीतर छिपे भय, असुरक्षा और संघर्ष की गहरी अनुभूति का प्रतिनिधित्व करता है, जो परिस्थितियों के अनुसार सक्रिय होती रहती है। जब व्यक्ति कठिन और अनिश्चित परिस्थितियों में घिर जाता है, तब उसका व्यवहार और उसकी सोच दोनों बदलने लगते हैं और वह अपने अस्तित्व की रक्षा को सर्वोपरि मानने लगता है, जिसके कारण कई बार वह अपनी मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों से भी दूर होता चला जाता है। भुवनेश्वर ने इस मनोवैज्ञानिक स्थिति को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 'भेड़िया' केवल एक कथा नहीं, बल्कि मानव जीवन की उन जटिल अवस्थाओं का सशक्त चित्रण है, जहाँ बाहरी और आंतरिक दोनों स्तरों पर संघर्ष निरंतर सक्रिय रहता है और व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

14.3 कहानीकार का परिचय

'भेड़िया' के लेखक भुवनेश्वर हिंदी साहित्य के उन प्रमुख और संवेदनशील कहानीकारों में गिने जाते हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से जीवन के कठोर यथार्थ और मानव स्वभाव की जटिलताओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे साधारण और सामान्य प्रतीत होने वाली घटनाओं के भीतर छिपे गहरे और बहुस्तरीय अर्थों को पहचानने की अद्भुत क्षमता रखते हैं और उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उन अनुभवों से सहज रूप से जुड़ जाता है। उनकी रचनाएँ केवल घटनाओं का क्रम नहीं होतीं, बल्कि वे जीवन के उन सूक्ष्म और गहन पक्षों को सामने लाती हैं, जिन्हें सामान्यत: हम अनदेखा कर देते हैं, और इसी कारण भुवनेश्वर का साहित्य पाठक को भीतर तक प्रभावित करता है। उनकी कहानियों में जीवन के विविध आयामों—विशेष रूप से भय, संघर्ष, असुरक्षा, अकेलापन और मानसिक तनाव—का अत्यंत सजीव और मार्मिक चित्रण मिलता है, और लेखक इन तत्वों के माध्यम से मानव जीवन की गहरी परतों को उद्घाटित करते हैं।

भुवनेश्वर जी अपने पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का जीवन केवल बाहरी परिस्थितियों से संचालित नहीं होता, बल्कि उसके भीतर चलने वाले विचार, भावनाएँ और मानसिक स्थितियाँ भी उसके व्यवहार को गहराई से प्रभावित करती हैं। उनकी भाषा अत्यंत सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण होती है, जो जीवन के निकट होने के कारण पाठक के मन में तुरंत उतर जाती है, और बिना किसी जटिलता के गहरी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम होती है, जिससे उनकी रचनाएँ प्रभावशाली और स्मरणीय बन जाती हैं। लेखक की यह विशेषता उनकी कहानियों को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती है, जहाँ भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहती, बल्कि वह संवेदना का भी वाहक बन जाती है। लेखक का दृष्टिकोण केवल यथार्थवादी ही नहीं, बल्कि गहन मनोवैज्ञानिक भी है, जहाँ भुवनेश्वर मनुष्य के व्यवहार, उसकी प्रतिक्रियाओं और उसके भीतर चलने वाले सूक्ष्म द्वंद्व का अत्यंत गहराई से विश्लेषण करते हैं। वे केवल घटनाओं का बाहरी वर्णन करने तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उन घटनाओं के पीछे छिपे कारणों, परिस्थितियों और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भी समझने का प्रयास करते हैं, जिससे उनकी रचनाएँ एक विशेष गहराई प्राप्त करती हैं। इस दृष्टिकोण के कारण उनकी कहानियाँ पाठक को केवल घटनाओं से परिचित नहीं करातीं, बल्कि उसे उन घटनाओं के भीतर छिपे अर्थों को समझने और उनके प्रभावों पर विचार करने के लिए भी प्रेरित करती हैं।

भुवनेश्वर जी की रचनाओं में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे मनुष्य को केवल एक सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक जटिल और परिवर्तनशील मानसिक संरचना के रूप में देखते हैं, जो परिस्थितियों के अनुसार निरंतर बदलती रहती है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठक को केवल मनोरंजन नहीं देतीं, बल्कि उसे आत्ममंथन और आत्मविश्लेषण के लिए प्रेरित करती हैं, जिससे वह जीवन की वास्तविकताओं को एक नए दृष्टिकोण से देखने लगता है। इस प्रकार उनका साहित्य न केवल कथा-साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि वह मानव जीवन और समाज की गहरी समझ प्रदान करने में भी अत्यंत सहायक सिद्ध होता है, और इसी

कारण उनका योगदान हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी माना जाता है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'भेड़िया' कहानी का मुख्य विषय क्या है?

प्रश्न 2. 'भेड़िया' का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?

प्रश्न 3. कहानी के पात्रों की मनोस्थिति किन विशेषताओं को दर्शाती है?

14.4 कहानी का कथानक

'भेड़िया' कहानी का कथानक एक ऐसे वातावरण में विकसित होता है, जहाँ भय, असुरक्षा और जीवन-संघर्ष की गहरी छाया हर समय विद्यमान रहती है और यही वातावरण पूरी कथा की दिशा, उसके घटनाक्रम तथा पात्रों के व्यवहार को गहराई से प्रभावित करता है। कहानी की शुरुआत ही एक ऐसे परिवेश से होती है, जहाँ जीवन सामान्य नहीं है, बल्कि हर क्षण एक अनिश्चितता और संकट की आशंका से घिरा हुआ है। यहाँ 'भेड़िया' केवल एक जंगली जीव के रूप में उपस्थित नहीं होता, बल्कि वह एक ऐसे स्थायी खतरे का रूप ले लेता है, जो मनुष्य के जीवन में लगातार हस्तक्षेप करता रहता है और उसकी दिनचर्या, उसकी सोच और उसके संबंधों को भी प्रभावित करता है। इस भय की उपस्थिति धीरे-धीरे इतनी गहरी हो जाती है कि यह केवल बाहरी परिस्थिति न रहकर पात्रों के भीतर भी घर कर जाती है, जिससे उनका पूरा मानसिक संसार प्रभावित होने लगता है और वे हर समय किसी अनदेखे संकट के प्रति सजग और आशंकित बने रहते हैं।

कहानी में यह भय एक स्थायी मानसिक अवस्था का रूप ले लेता है, जो पात्रों के व्यवहार और उनके निर्णयों को नियंत्रित करने लगता है। वे अपने जीवन के हर छोटे-बड़े कार्य को इस दृष्टि से देखने लगते हैं कि कहीं उसमें कोई खतरा तो नहीं छिपा है। इस प्रकार उनका जीवन स्वाभाविकता से दूर होता चला जाता है और एक निरंतर सतर्कता और चिंता की स्थिति में बदल जाता है। इस वातावरण में उनके संबंध भी प्रभावित होते हैं, क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं असुरक्षित महसूस करता है, तो वह दूसरों के प्रति भी पूरी तरह सहज नहीं रह पाता। इस प्रकार कहानी यह संकेत करती है कि भय केवल एक व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संबंधों और सामूहिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित करता है, जिससे पूरा वातावरण एक प्रकार की मानसिक अस्थिरता से भर जाता है। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, यह स्पष्ट होता जाता है कि यह संघर्ष केवल मनुष्य और भेड़िये के बीच का बाहरी टकराव नहीं है, बल्कि यह उस व्यापक मानवीय स्थिति का प्रतीक है, जहाँ व्यक्ति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। भेड़िया यहाँ उस हर परिस्थिति का प्रतिनिधित्व करता है, जो मनुष्य के जीवन में असुरक्षा और भय उत्पन्न करती है, चाहे वह प्राकृतिक हो, सामाजिक हो या मनोवैज्ञानिक। इस संघर्ष के दौरान व्यक्ति के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने जीवन को सुरक्षित रखना होती है, और इसी कारण वह कई बार अपने भीतर की संवेदनाओं, सहानुभूति और मानवीय मूल्यों को भी पीछे छोड़ देता है। यह स्थिति इस बात को उजागर करती है कि जब जीवन संकट में होता है, तब नैतिकता और संवेदनशीलता जैसे मूल्य पीछे छूटने लगते हैं और अस्तित्व की रक्षा ही सर्वोपरि हो जाती है।

इस प्रक्रिया में पात्रों के भीतर एक गहरा आंतरिक परिवर्तन भी देखने को मिलता है, जहाँ वे धीरे-धीरे अपने स्वाभाविक स्वरूप से दूर होते चले जाते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालने लगते हैं। वे जो पहले सहज, संवेदनशील और संतुलित थे, अब अधिक सतर्क, चिंतित और कई बार कठोर भी हो जाते हैं। यह परिवर्तन केवल उनके बाहरी व्यवहार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उनके सोचने-समझने के तरीके को भी प्रभावित करता है। वे हर स्थिति को भय और असुरक्षा के दृष्टिकोण से देखने लगते हैं, जिससे उनके निर्णय भी उसी मानसिक अवस्था के अनुसार होने लगते हैं। इस प्रकार कहानी यह गहराई से दिखाती है कि

परिस्थितियाँ केवल व्यक्ति के जीवन को ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व को भी पुन:निर्मित करती हैं।

कहानी का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इसमें बाहरी संघर्ष के साथ-साथ आंतरिक संघर्ष भी समान रूप से उपस्थित है। पात्र केवल बाहरी खतरे से ही नहीं जूझ रहे होते, बल्कि वे अपने भीतर चल रहे द्वंद्व से भी गुजर रहे होते हैं। एक ओर वे अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके भीतर मानवीय संवेदनाएँ भी सक्रिय रहती हैं, जो उन्हें पूरी तरह कठोर बनने से रोकती हैं। यही द्वंद्व उन्हें मानसिक रूप से विचलित करता है और उनके भीतर एक प्रकार की अस्थिरता उत्पन्न करता है। इस प्रकार कहानी यह स्पष्ट करती है कि वास्तविक संघर्ष केवल बाहरी नहीं होता, बल्कि वह व्यक्ति के भीतर भी उतनी ही तीव्रता से चलता है।

कथानक का विकास इस प्रकार किया गया है कि पाठक धीरे-धीरे उस वातावरण में प्रवेश करता है और पात्रों की मानसिक स्थिति को महसूस करने लगता है। कहानी में घटनाएँ भले ही सीमित हों, लेकिन उनका प्रभाव अत्यंत गहरा होता है, क्योंकि वे सीधे मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से जुड़ी होती हैं। लेखक ने किसी प्रकार के अनावश्यक विस्तार या जटिलता के बजाय ऐसी शैली अपनाई है, जिसमें प्रत्येक घटना अपने आप में एक अर्थपूर्ण संकेत बनकर सामने आती है और पाठक को उसके भीतर छिपे गहरे अर्थों को समझने के लिए प्रेरित करती है। यह कथानक इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि जीवन की कठिन और तनावपूर्ण परिस्थितियाँ मनुष्य के स्वभाव, उसकी सोच और उसके आचरण को गहराई से प्रभावित करती हैं, और कई बार उसे इस हद तक बदल देती हैं कि वह स्वयं अपने भीतर आए परिवर्तन को पूरी तरह समझ नहीं पाता। 'भेड़िया' इस परिवर्तन का एक सशक्त प्रतीक बनकर सामने आता है, जो यह संकेत देता है कि भय और असुरक्षा केवल बाहरी नहीं होते, बल्कि वे व्यक्ति के भीतर भी गहराई से समा जाते हैं और उसके पूरे अस्तित्व को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार यह कहानी केवल एक घटना का वर्णन न रहकर जीवन के गहरे यथार्थ का एक सशक्त और मार्मिक चित्रण बन जाती है, जो पाठक को सोचने, समझने और अपने आसपास के संसार को नए दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित करती है।

14.5 कहानी का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

'भेड़िया' कहानी का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य अत्यंत व्यापक, बहुस्तरीय और गहन अर्थों से परिपूर्ण है, जिसमें उन परिस्थितियों का सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है जहाँ भय, असुरक्षा और अनिश्चितता केवल क्षणिक अनुभव नहीं रह जाते, बल्कि जीवन का स्थायी और अनिवार्य हिस्सा बन जाते हैं। यह कहानी केवल किसी एक बाहरी खतरे या जंगली जीव की उपस्थिति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उस समूचे सामाजिक वातावरण को सामने लाती है जहाँ व्यक्ति हर समय किसी न किसी अदृश्य या संभावित संकट की छाया में जीने के लिए विवश होता है। ऐसे परिवेश में जीवन अपनी सहजता और स्वाभाविकता खो देता है और एक निरंतर संघर्ष की स्थिति में बदल जाता है, जहाँ व्यक्ति का प्रत्येक निर्णय उसके अस्तित्व की सुरक्षा से जुड़ जाता है। सामाजिक दृष्टि से यह स्थिति उस व्यवस्था की ओर संकेत करती है, जहाँ असुरक्षा और भय का वातावरण केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभव बन जाता है, और इस प्रकार पूरा समाज एक प्रकार की मानसिक दबाव और अस्थिरता की स्थिति में जीने लगता है, जिससे व्यक्ति का व्यवहार, उसके संबंध और उसका दृष्टिकोण गहराई से प्रभावित होते हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह कहानी अत्यंत सूक्ष्मता और गहराई के साथ यह स्थापित करती है कि भय केवल बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली एक क्षणिक प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि यह धीरे-धीरे व्यक्ति के मन में स्थायी रूप से स्थान बना लेता है और उसके समूचे मानसिक ढाँचे को प्रभावित करने लगता है। जब व्यक्ति लगातार भय और असुरक्षा के वातावरण में जीवन व्यतीत करता है, तो वह हर समय सतर्क, चिंतित और मानसिक रूप से तनावग्रस्त बना रहता है, जिससे उसकी सोच, उसकी प्रतिक्रियाएँ और उसके निर्णय लेने की प्रक्रिया पूरी तरह बदल जाती है। वह सामान्य परिस्थितियों में लिए जाने वाले संतुलित

और विवेकपूर्ण निर्णयों के स्थान पर तत्कालिक और सुरक्षा-केन्द्रित निर्णय लेने लगता है, जो कई बार उसके स्वाभाविक व्यक्तित्व और मूल्यों से भिन्न होते हैं। इस प्रकार कहानी यह स्पष्ट करती है कि भय एक ऐसी मनोवैज्ञानिक अवस्था है, जो व्यक्ति के भीतर गहराई से प्रवेश कर उसके व्यवहार और जीवन-दृष्टि को परिवर्तित कर देती है।

इस कहानी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक पक्ष यह भी है कि यह सामाजिक परिस्थितियों और मनोवैज्ञानिक प्रभावों के बीच के गहरे और अंतर्संबंधित रिश्ते को उजागर करती है। जब समाज में असुरक्षा, भय और संघर्ष का वातावरण व्याप्त होता है, तो उसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक जीवन पर पड़ता है, जिससे उसके भीतर अस्थिरता, संदेह, अविश्वास और असुरक्षा की भावना विकसित होने लगती है। यह स्थिति व्यक्ति को न केवल बाहरी रूप से बल्कि आंतरिक रूप से भी प्रभावित करती है, और वह अपने ही परिवेश तथा संबंधों के प्रति एक प्रकार की दूरी और सतर्कता का भाव रखने लगता है। इस प्रकार कहानी यह स्थापित करती है कि मनुष्य का व्यवहार केवल उसकी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों या स्वभाव का परिणाम नहीं होता, बल्कि वह उन सामाजिक परिस्थितियों का भी प्रतिफल होता है जिनमें वह जीवन व्यतीत कर रहा होता है, और इसी कारण यह रचना केवल एक कथा न रहकर एक गहन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन के रूप में सामने आती है, जो पाठक को जीवन की जटिलताओं को समझने के लिए प्रेरित करती है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

'भेड़िया' कहानी मानव जीवन की उन जटिल परिस्थितियों को सामने लाती है, जहाँ भय, असुरक्षा और अनिश्चितता केवल बाहरी अनुभव नहीं रहते, बल्कि वे व्यक्ति के भीतर गहराई से प्रवेश कर उसके व्यवहार, उसकी सोच और उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करने लगते हैं। यह कहानी इस बात को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है कि जब मनुष्य ऐसे वातावरण में जीवन व्यतीत करता है जहाँ हर क्षण किसी संभावित खतरे की आशंका बनी रहती है, तो उसका जीवन एक निरंतर संघर्ष में बदल जाता है और वह अपनी स्वाभाविकता खोकर सतर्कता और चिंता की स्थिति में जीने लगता है। 'भेड़िया' यहाँ केवल एक जंगली जीव नहीं, बल्कि उस निरंतर उपस्थित भय और असुरक्षा का प्रतीक बनकर उभरता है, जो मनुष्य के जीवन को भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर प्रभावित करता है।

14.6 'भेड़िया' कहानी की भाव-प्रवृत्तियाँ

'भेड़िया' कहानी की भाव-प्रवृत्तियाँ भय, असुरक्षा, अनिश्चितता और अस्तित्व-संघर्ष की गहरी अनुभूतियों के इर्द-गिर्द विकसित होती हैं, जो पूरी कथा में निरंतर प्रवाहित होती रहती हैं और पात्रों के जीवन, उनके व्यवहार तथा उनके मानसिक संसार को भीतर तक प्रभावित करती हैं। कहानी का वातावरण ऐसा है जिसमें हर क्षण किसी अदृश्य और अनक हे खतरे की उपस्थिति महसूस होती है, और यही अनुभूति धीरे-धीरे पात्रों के भीतर एक स्थायी मानसिक स्थिति का रूप ले लेती है। यह भय केवल बाहरी रूप में उपस्थित किसी जीव या परिस्थिति से संबंधित नहीं रहता, बल्कि वह उनके भीतर प्रवेश कर उनकी सोच, उनकी प्रतिक्रियाओं और उनके जीवन-दृष्टिकोण को बदलने लगता है। भय यहाँ एक व्यापक अनुभव बन जाता है, जो व्यक्ति के पूरे अस्तित्व को प्रभावित करता है और उसके हर निर्णय में अपनी उपस्थिति बनाए रखता है, जिससे उसकी सहजता और स्वाभाविकता धीरे-धीरे कम होती चली जाती है और जीवन एक निरंतर सतर्कता में बदलने लगता है। कहानी में असुरक्षा की भावना भी उतनी ही गहराई से उभरती है, जो पात्रों के भीतर लगातार एक बेचैनी और मानसिक दबाव की स्थिति बनाए रखती है। यह असुरक्षा किसी एक घटना या परिस्थिति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह उस पूरे वातावरण से उत्पन्न होती है जहाँ स्थायित्व और भरोसे की कमी स्पष्ट रूप से महसूस की जाती है। पात्र स्वयं को ऐसे परिवेश में पाते हैं जहाँ हर क्षण कुछ अप्रत्याशित घटित होने की संभावना बनी रहती है, और यही

अनिश्चितता उनके भीतर एक निरंतर चिंता को जन्म देती है। वे अपने आसपास की परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं और अपने व्यवहार को उसी के अनुसार ढालने लगते हैं, जिससे उनका जीवन अपनी सहज गति खो देता है और एक मानसिक दबाव में चलने लगता है। यह स्थिति उनके भीतर गहरे स्तर पर प्रभाव डालती है, जहाँ वे केवल बाहरी परिस्थितियों से ही नहीं, बल्कि अपने ही विचारों और आशंकाओं से भी प्रभावित होने लगते हैं।

कहानी में संघर्ष की भावना भी अत्यंत तीव्र और बहुआयामी रूप में उपस्थित है, जो केवल बाहरी परिस्थितियों से जुड़ी नहीं रहती, बल्कि व्यक्ति के भीतर भी एक निरंतर द्वंद्व के रूप में सक्रिय रहती है। पात्र अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए लगातार प्रयास करते दिखाई देते हैं और इस प्रयास में उन्हें अनेक ऐसे निर्णय लेने पड़ते हैं जो उनके स्वाभाविक स्वभाव से भिन्न होते हैं। उनके भीतर मानवीय संवेदनाएँ और परिस्थितियों की कठोरता के बीच एक संघर्ष चलता रहता है, जहाँ वे अपने मूल स्वभाव को बचाए रखने और अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करते हैं। यह द्वंद्व उनके भीतर एक गहरी मानसिक हलचल उत्पन्न करता है और उनके व्यक्तित्व को नए रूप में ढालने लगता है, जहाँ वे अपने ही भीतर हो रहे परिवर्तन को पूरी तरह समझ नहीं पाते, लेकिन उसके प्रभाव को लगातार महसूस करते रहते हैं।

इन सभी भाव-प्रवृत्तियों का संयुक्त प्रभाव कहानी को एक गहन और सजीव मानवीय अनुभव में बदल देता है, जहाँ जीवन केवल घटनाओं का क्रम नहीं रह जाता, बल्कि वह मानसिक और भावनात्मक अवस्थाओं का एक जटिल संसार बनकर सामने आता है। पात्रों के भीतर चल रही प्रक्रियाएँ, उनके डर, उनकी आशंकाएँ और उनके संघर्ष मिलकर एक ऐसी स्थिति का निर्माण करते हैं जहाँ पाठक भी उस अनुभव का हिस्सा बनने लगता है और उनके साथ उस वातावरण को महसूस करता है। यही संवेदनात्मक गहराई कहानी को एक विशेष प्रभाव प्रदान करती है, जहाँ हर अनुभूति अपने आप में एक अर्थ रखती है और जीवन की जटिलताओं को बिना किसी कृत्रिमता के प्रस्तुत करती है।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 4. कहानी में भय और असुरक्षा की भावना किस प्रकार प्रस्तुत की गई है?

प्रश्न 5. कहानी का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संदेश क्या है?

14.7 'भेड़िया' कहानी की समीक्षा

'भेड़िया' कहानी की समीक्षा करते समय यह अनुभव होता है कि यह रचना केवल किसी एक घटना या प्रसंग का साधारण विवरण नहीं प्रस्तुत करती, बल्कि यह मानव जीवन की गहरी और जटिल सच्चाइयों को सामने लाने का एक सशक्त माध्यम बन जाती है, जहाँ बाहरी घटनाओं के साथ-साथ उनके भीतर छिपे मानसिक और सामाजिक आयाम भी समान रूप से उभरते हैं। कहानी की विषय-वस्तु में जीवन के यथार्थ का अत्यंत सजीव और प्रभावशाली चित्रण मिलता है, जिसमें भय, असुरक्षा और संघर्ष जैसे तत्व केवल परिस्थिति के रूप में नहीं आते, बल्कि वे मनुष्य के व्यवहार, उसकी सोच और उसके निर्णयों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक के रूप में सामने आते हैं। कथा का विस्तार इस तरह किया गया है कि पाठक केवल घटनाओं को देखता ही नहीं, बल्कि उनके भीतर छिपे अर्थों को भी अनुभव करने लगता है, जिससे कहानी जीवन की व्यापक व्याख्या का रूप धारण कर लेती है और साधारण कथानक से आगे बढ़कर एक गहन अनुभव में बदल जाती है।

कहानी की प्रतीकात्मकता इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में दिखाई देती है, जहाँ 'भेड़िया' केवल एक जंगली जीव के रूप में सीमित नहीं रहता, बल्कि वह एक ऐसे प्रतीक के रूप में उभरता है जो भय, असुरक्षा और निरंतर संघर्ष की भावना को व्यक्त करता है। यह प्रतीक कथा को एक गहरी अर्थवत्ता प्रदान करता है,

क्योंकि इसके माध्यम से यह समझ में आता है कि मनुष्य के जीवन में उपस्थित बाहरी संकट और खतरों का प्रभाव केवल बाहरी स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह व्यक्ति के भीतर भी गहराई से प्रवेश कर उसकी मानसिक स्थिति को परिवर्तित कर देता है। पात्र-चित्रण भी इसी संदर्भ में अत्यंत प्रभावशाली बन जाता है, जहाँ पात्र किसी एक व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि उस सामान्य मानवीय स्थिति के प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं, जिसमें व्यक्ति परिस्थितियों के दबाव में अपने स्वभाव और व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए विवश हो जाता है और उसके भीतर एक निरंतर द्वंद्व चलता रहता है।

भाषा-शैली के स्तर पर यह कहानी अत्यंत सशक्त और प्रभावपूर्ण दिखाई देती है, जहाँ लेखक ने सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हुए गहरी संवेदनाओं को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया है। भाषा में किसी प्रकार की कृत्रिमता या जटिलता नहीं है, बल्कि यह जीवन के निकट होने के कारण पाठक के मन को सीधे स्पर्श करती है और उसे कथा के साथ गहराई से जोड़कर रखती है। कथा का प्रवाह ऐसा है कि पाठक बिना किसी रुकावट के उसमें आगे बढ़ता जाता है और पात्रों की मानसिक स्थिति तथा परिस्थितियों को अनुभव करने लगता है, जिससे कहानी केवल पढ़ी नहीं जाती, बल्कि जी महसूस की जाती है। यही गुण इस रचना को एक विशेष प्रभाव प्रदान करता है, जहाँ पाठक अपने भीतर भी उन भावनाओं और प्रश्नों को अनुभव करता है, जो कथा के भीतर उपस्थित हैं और जो जीवन की वास्तविकताओं से गहराई से जुड़े हुए हैं।

14.8 सारांश

भेड़िया' कहानी मानव जीवन के उस जटिल और गहरे यथार्थ को प्रस्तुत करती है, जहाँ भय, असुरक्षा और संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर उसके मानसिक संसार, उसके व्यवहार और उसके जीवन-दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित करने लगते हैं। कहानी में 'भेड़िया' केवल एक जंगली जीव के रूप में उपस्थित नहीं होता, बल्कि वह एक ऐसे स्थायी खतरे और अनिश्चितता का प्रतीक बनकर उभरता है, जो मनुष्य के जीवन को निरंतर प्रभावित करता रहता है और उसके भीतर एक स्थायी भय की भावना उत्पन्न कर देता है। इस भय का प्रभाव इतना व्यापक होता है कि व्यक्ति के सोचने का तरीका, उसके निर्णय लेने की प्रक्रिया और उसके संबंधों की प्रकृति तक बदलने लगती है, जिससे उसका जीवन अपनी सहजता और स्वाभाविकता खो देता है और एक निरंतर सतर्कता और मानसिक तनाव की स्थिति में परिवर्तित हो जाता है। कहानी के पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि जब मनुष्य ऐसे वातावरण में जीता है जहाँ हर क्षण किसी संभावित संकट की आशंका बनी रहती है, तो उसका व्यवहार परिस्थितियों के अनुसार ढलने लगता है और वह अपने अस्तित्व की रक्षा को सबसे अधिक महत्व देने लगता है, जिसके कारण कई बार उसकी मानवीय संवेदनाएँ और नैतिक मूल्य भी पीछे छूटने लगते हैं। कथा यह भी दर्शाती है कि यह संघर्ष केवल बाहरी नहीं होता, बल्कि व्यक्ति के भीतर भी एक गहरे द्वंद्व के रूप में चलता रहता है, जहाँ वह अपने स्वभाव और परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है, लेकिन अक्सर परिस्थितियों का दबाव उसके निर्णयों को प्रभावित करता है। इस प्रकार कहानी यह अनुभूति कराती है कि मनुष्य का जीवन केवल उसकी इच्छाओं और प्रवृत्तियों से संचालित नहीं होता, बल्कि वह उन सामाजिक और परिस्थितिजन्य प्रभावों से भी गहराई से जुड़ा होता है जिनमें वह जीवन व्यतीत कर रहा होता है, और यही कारण है कि यह कहानी केवल एक कथानक न रहकर एक गहन मानवीय अनुभव का रूप ले लेती है, जो पाठक को जीवन की वास्तविकताओं, मानव स्वभाव की जटिलताओं और परिस्थितियों के प्रभाव को समझने के लिए प्रेरित करती है।

K 14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: 'भेड़िया' कहानी का मुख्य विषय भय, असुरक्षा और जीवन-संघर्ष है, जिसमें यह दिखाया गया है कि कठिन परिस्थितियाँ मनुष्य के व्यवहार और उसकी सोच को

गहराई से प्रभावित करती हैं।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: कहानी में 'भेड़िया' एक प्रतीक है, जो बाहरी खतरे के साथ-साथ मनुष्य के भीतर छिपे भय, असुरक्षा और निरंतर संघर्ष की भावना को दर्शाता है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: कहानी के पात्रों की मनोस्थिति भय, तनाव, अस्थिरता और सतर्कता की विशेषताओं को दर्शाती है, जहाँ वे हर समय संभावित खतरे के प्रति सजग रहते हैं और परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को बदलते हैं।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: कहानी में भय और असुरक्षा की भावना इस प्रकार प्रस्तुत की गई है कि वह केवल बाहरी नहीं रहती, बल्कि धीरे-धीरे पात्रों के भीतर स्थायी मानसिक स्थिति के रूप में विकसित हो जाती है और उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: कहानी का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संदेश यह है कि मनुष्य का व्यवहार केवल उसकी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का परिणाम नहीं होता, बल्कि वह उन सामाजिक परिस्थितियों और मानसिक अवस्थाओं से भी प्रभावित होता है जिनमें वह जीवन व्यतीत करता है।

5 14.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- भुवनेश्वर (2011). भेड़िया. भुवनेश्वर की प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
- भुवनेश्वर (सं.) (2011). भुवनेश्वर की प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत।
- सिंह, नामवर (1960). हिंदी कहानी: उद्भव और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- राय, डॉ. गोपाल (2011). हिंदी कहानी का इतिहास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- मधुरेश (2011). आधुनिक हिंदी कहानी. कानपुर: सुमित प्रकाशन।
- अवस्थी, देवीशंकर (2002). नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- यादव, राजेन्द्र (2000). कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- नगेन्द्र, डॉ. (1998). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा: मयूर पेपर बैक्स।

14.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रशों के उत्तर लिखिए

1. 'भेड़िया' कहानी का मुख्य विषय लिखिए।
2. 'भेड़िया' के प्रतीकात्मक अर्थ की व्याख्या कीजिए।
3. पात्रों की मनोस्थिति का वर्णन कीजिए।
4. कहानी के सामाजिक संदेश पर प्रकाश डालिए।
5. भाषा-शैली की विशेषताएँ लिखिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. 'भेड़िया' कहानी का कथानक विस्तार से लिखिए और यह बताइए कि इसमें भय, असुरक्षा और जीवन-संघर्ष को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।
2. 'भेड़िया' कहानी के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष का वर्णन कीजिए और समझाइए कि परिस्थितियाँ व्यक्ति के व्यवहार को कैसे प्रभावित करती हैं।

3. 'भेड़िया' कहानी की भाव–प्रवृत्तियों पर चर्चा कीजिए तथा यह बताइए कि भय, असुरक्षा और संघर्ष कहानी में किस प्रकार प्रकट होते हैं।
4. 'भेड़िया' कहानी के पात्र–चित्रण का वर्णन कीजिए और बताइए कि पात्रों के स्वभाव में परिस्थितियों के अनुसार क्या परिवर्तन आते हैं।
5. 'भेड़िया' कहानी की भाषा–शैली और शिल्प की विशेषताओं को सरल रूप में समझाइए।

****